भारत का संविधान: एक सरल और संपूर्ण मार्गदर्शिका

लेखक

सय्यद सनाउल्लाह काज़मी

हाफ़िज़, फ़ाज़िल एवं मुफ़्ती (देवबंद)

एम.ए. इस्लामिक अध्ययन (जामिया हमदर्द, दिल्ली)

(सैदपुर कलाँ, ज़िला मुज़फ्फरनगर, उत्तर प्रदेश)

<u>राष्ट्रगान</u>

जन-गण-मन अधिनायक जय हे,

भारत-भाग्य-विधाता।

पंजाब-सिंधु-गुजरात-मराठा,

द्राविड़-उत्कल-बंग।

विंध्य-हिमाचल-यमुना-गंगा,

उच्छल-जलधि-तरंग।

तव शुभ नामे जागे,

तव शुभ आशीष मांगे,

गाहे तव जय गाथा।

जन-गण-मंगलदायक जय हे,

भारत-भाग्य-विधाता।

जय हे, जय हे, जय हे,

जय जय जय जय हे॥

विषय-सूची

अध्याय 2 : संविधान के महत्त्वपूर्ण भाग

2.1 प्रस्तावना (उद्देशिका)

2.2 मौलिक अधिकार

2.3 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत

2.4 मौलिक कर्तव्य

अध्याय 3 : शासन की संरचना

3.1 केंद्रीय सरकार

3.2 राज्य सरकार

3.3 न्यायपालिका

उपसंहार

परिशिष्ट

प्रकाशकीय

अल्लाह तआला की कृपा और अनुकंपा से यह पुस्तक जून 2025 में पूर्ण हुई। प्रारंभ में इच्छा यही थी कि इसे मुद्रित रूप में प्रकाशित किया जाए, ताकि न्यूनतम मूल्य पर यह विद्वानों, विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों तक पहुँच सके, क्योंकि मुद्रित पुस्तक के माध्यम से अध्ययन, चिंतन और लाभ प्राप्त करना सामान्यतः PDF की अपेक्षा अधिक बेहतर और प्रभावी ढंग से संभव होता है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विभिन्न मित्रों और प्रकाशकों से संपर्क किया गया, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों, पुस्तकों के अध्ययन की घटती प्रवृत्ति और वैज्ञानिक तथा शोधपरक पुस्तकों के प्रति सामान्य अरुचि के कारण इस प्रकार के मौलिक और शोधपूर्ण कार्यों का प्रकाशन अत्यंत कठिन हो गया है। आजकल बाजार में प्रायः वही पुस्तकें लोकप्रिय मानी जाती हैं जो पाठ्यक्रम आधारित हों या विभिन्न पुस्तकों की व्याख्याओं पर आधारित हों। इसलिए प्रकाशक भी सामान्यतः उन्हीं पुस्तकों को प्राथमिकता देते हैं जिनके प्रकाशन और बिक्री की संभावनाएँ अधिक हों। परिणामस्वरूप अनेक उपयोगी, मौलिक और शोधपरक कार्य केवल सीमित बाजार और अन्य विवशताओं के कारण प्रकाशन से वंचित रह जाते हैं।

आर्थिक संसाधनों की अनुपलब्धता भी एक महत्त्वपूर्ण कारण रही, जिसके कारण इस पुस्तक का मुद्रण संभव नहीं हो सका। अतः इसे फिलहाल PDF के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, ताकि यह ज्ञान लोगों तक पहुँच सके और अल्लाह के समक्ष यह जवाबदेही न हो कि वर्तमान युग की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता केवल संसाधनों या परिस्थितियों के कारण लोगों तक नहीं पहुँच सकी।

लेखक न तो इस विषय का कोई बड़ा शोधकर्ता है और न ही किसी विद्वत्ता या विधिक विशेषज्ञता का दावा रखता है, बल्कि इस समय विधि की शिक्षा (बी.ए. एल.एल.बी.) प्राप्त कर रहा है। अध्ययनकाल और व्यक्तिगत अध्ययन के दौरान जो कुछ पढ़ने, समझने और संकलित करने का अवसर मिला, उसे यथासंभव शोध, ईमानदारी और सावधानी के साथ इस पुस्तक में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस उद्देश्य के लिए हिंदी और अंग्रेज़ी की पुस्तकों, सरकारी दस्तावेज़ों, न्यायालयों के निर्णयों, शोध-लेखों, विभिन्न विद्वत्तापूर्ण लेखों तथा इंटरनेट पर उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री से लाभ उठाया गया है।

यह पुस्तक यद्यपि पूर्ण शोध और उपलब्ध संसाधनों के आलोक में तैयार की गई है, लेकिन चूँकि विधि एक जीवंत और गतिशील व्यवस्था है, इसलिए संविधान, कानूनों, न्यायिक व्याख्याओं और सरकारी नीतियों में समय-समय पर परिवर्तन, संशोधन और नए निर्णय सामने आते रहते हैं। अतः यह पूर्णतः संभव है कि पुस्तक के प्रकाशन के कुछ समय बाद कुछ कानूनी प्रावधानों या जानकारियों में परिवर्तन हो जाए। ऐसी स्थिति में आदरणीय पाठकों से अनुरोध है कि वे इसे विधि के स्वाभाविक विकास और परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में समझें।

इसी प्रकार, चूँकि यह एक मानवीय प्रयास है, इसलिए इसमें लेखन संबंधी त्रुटि, सूचनात्मक कमी-बेशी अथवा किसी शैक्षणिक या विधिक त्रुटि की संभावना भी बनी रह सकती है। यदि किसी विद्वान, अधिवक्ता, विधिवेत्ता,

शोधकर्ता अथवा पाठक को इस पुस्तक में कोई स्पष्ट त्रुटि दिखाई दे, तो कृपया लेखक से संपर्क करें, ताकि आगामी संस्करण अथवा PDF के नए संस्करण में उसका संशोधन किया जा सके। किसी भी शैक्षणिक कार्य की शुद्धता और पूर्णता सामूहिक सहयोग से ही संभव होती है, और लेखक प्रत्येक रचनात्मक आलोचना तथा सुधारात्मक सुझाव को अपने लिए सौभाग्य का विषय समझेगा।

चूँकि यह पुस्तक पूर्णतः जनहित के लिए लिखी गई है, इसलिए सभी सज्जनों, शैक्षणिक संस्थानों और प्रकाशकों को अनुमति है कि यदि वे इस पुस्तक को बिना किसी विलोपन, वृद्धि, संशोधन अथवा विकृति के, न्यूनतम मूल्य पर अथवा पूर्णतः निःशुल्क वितरित करने के उद्देश्य से प्रकाशित करना चाहें, तो लेखक से पूर्व अनुमति प्राप्त करके ऐसा कर सकते हैं।

अधिक संपर्क और अनुमति के लिए लेखक का ई-मेल निम्नलिखित है :

Email: SAYYEDSANAULLAHKAZMI6692@GMAIL.COM

अल्लाह तआला इस विनम्र प्रयास को अपनी बारगाह में स्वीकार फरमाए, इसमें विद्यमान त्रुटियों को क्षमा फरमाए, इसे जनहित का माध्यम बनाए और इसके माध्यम से सत्य की पहचान, विधिक चेतना और शैक्षणिक जागरूकता को बढ़ावा प्रदान करे। आमीन।

प्रस्तावना

الحمد لله الذي أنزل الكتاب على عبده ليكون للعالمين نذيرًا، والصلاة والسلام على سيدنا محمد الذي بعثه الله هاديًا ومبشِّرًا، وعلى آله وأصحابه أجمعين، ومن تبعهم بإحسان إلى يوم الدين.

अल्लाह तबारक व तआला (जो बरकत और महानता वाला है) की अनंत स्तुति और प्रशंसा के बाद, मैं यह पुस्तक हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस पुस्तक की रचना मैंने सबसे पहले उर्दू भाषा में इस उद्देश्य से की थी कि मदरसों के विद्यार्थियों, उर्दू माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों तथा सामान्य उर्दू पाठकों के लिए भारत के संविधान को सरल, सुबोध और सामान्य भाषा में समझने का एक विश्वसनीय माध्यम उपलब्ध हो सके। हमारे यहाँ धार्मिक और शैक्षिक विषयों पर तो पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है, किन्तु संविधान जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल विषय पर उर्दू में अपेक्षाकृत बहुत कम सामग्री मिलती है।

भारत का संविधान एक ऐसा दस्तावेज़ है, जो विधिक, तकनीकी और पारिभाषिक भाषा में लिखा गया है। इस कारण उसके प्रावधानों, सिद्धांतों और मूल भावना को समझना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहज नहीं होता। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मैंने संविधान के महत्वपूर्ण विषयों को सरल और सामान्य भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया, ताकि विद्यार्थी, शिक्षक और सामान्य पाठक सभी इसके विभिन्न पहलुओं को आसानी से समझ सकें।

अब उसी पुस्तक को मैं हिंदी भाषा में भी प्रस्तुत कर रहा हूँ, ताकि इसका लाभ केवल उर्दू पाठकों तक सीमित न रहे, बल्कि हिंदी भाषी समाज भी संविधान की मूल भावना, उसके सिद्धांतों और उसके महत्व को सरल एवं सहज रूप में समझ सके। मेरी आशा है कि यह प्रयास संविधान की समझ को व्यापक बनाने और अधिक से अधिक लोगों तक उसके ज्ञान को पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा।

संविधान का उद्देश्य और महत्व

संविधान किसी भी देश का सर्वोच्च और मूल कानून होता है, जो राज्य की प्रशासनिक, राजनीतिक तथा विधिक व्यवस्था की आधारशिला प्रदान करता है। यह केवल शासन की शक्तियों और अधिकारों का निर्धारण ही नहीं करता, बल्कि नागरिकों के अधिकारों, स्वतंत्रताओं और उनके संरक्षण की भी गारंटी देता है। संविधान एक प्रकार के सामाजिक अनुबंध के समान है, जिसके अंतर्गत राज्य और नागरिकों के बीच अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया जाता है। इसके माध्यम से शासन की शक्तियों को सीमित किया जाता है तथा कानून की दृष्टि में सभी व्यक्तियों को समान माना जाता है।

संविधान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह राज्य के सभी अंगों और संस्थाओं को एक समान सिद्धांत और निर्धारित नियमों के अंतर्गत कार्य करने की दिशा प्रदान करता है। यह सरकार को अधिकार तो देता है, किन्तु उन अधिकारों के प्रयोग पर आवश्यक सीमाएँ भी निर्धारित करता है, ताकि सत्ता का दुरुपयोग न हो सके। संविधान नागरिकों को यह विश्वास भी प्रदान करता है कि उनके अधिकार सुरक्षित हैं और कोई भी सरकार उन्हें उनके वैधानिक अधिकारों से मनमाने ढंग से वंचित नहीं कर सकती।

संविधान की आवश्यकता

संविधान की आवश्यकता इसलिए भी है कि यह वह मूल व्यवस्था है, जिसके आधार पर राज्य अपनी नीतियों, कानूनों और निर्णयों का निर्माण करता है। यह राज्य की स्थिरता और सुशासन का आधार है तथा पारदर्शी और उत्तरदायी शासन की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संविधान की उपस्थिति राज्य में विधि के शासन को सुनिश्चित करती है, जिसके माध्यम से न्यायालय और अन्य संस्थाएँ न्याय प्रदान करती हैं तथा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती हैं।

संविधान सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता और व्यक्ति के अधिकारों के संरक्षण के लिए एक सुदृढ़ एवं निर्विवाद ढाँचा प्रदान करता है। यह मूलभूत मानवाधिकारों को मान्यता देता है और इस बात की गारंटी देता है कि किसी भी नागरिक को बिना उचित कारण के अत्याचार या अन्याय का सामना न करना पड़े। संविधान की यही विशेषताएँ उसे इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक बनाती हैं कि प्रत्येक नागरिक के लिए उसका सम्मान करना और उसके सिद्धांतों का पालन करना एक आवश्यक दायित्व है।

संविधान और अल्पसंख्यकों के अधिकार

संविधान केवल शासन-व्यवस्था का मार्गदर्शन करने वाला दस्तावेज़ ही नहीं है, बल्कि यह नागरिकों को उनके अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति जागरूक करने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है, ताकि वे अपने वैधानिक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रभावी भूमिका निभा सकें। इसके माध्यम से किसी भी देश में न केवल राजनीतिक स्थिरता स्थापित होती है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय को भी प्रोत्साहन मिलता है।

संविधान का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सामाजिक न्याय की स्थापना करना भी है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी व्यक्तियों को, चाहे वे किसी भी धर्म, जाति, नस्ल या वर्ग से संबंधित हों, समान अधिकार प्राप्त हों। संविधान में निहित मौलिक अधिकार व्यक्तियों की स्वतंत्रता और सुरक्षा की गारंटी प्रदान करते हैं, जिससे एक सुदृढ़ और स्थिर सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है।

संविधान और मुसलमानों के अधिकार

मुसलमानों के लिए संविधान का महत्व इसलिए भी विशेष है, क्योंकि वे भारत में एक अल्पसंख्यक समुदाय हैं और अपने धर्म, संस्कृति तथा परंपराओं के संरक्षण के लिए संविधान से मार्गदर्शन और सुरक्षा प्राप्त करते हैं। भारत में मुसलमान एक बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय हैं और संविधान उन्हें उनके धार्मिक अधिकारों के संरक्षण की पूर्ण गारंटी प्रदान करता है। संविधान ने अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों की इस प्रकार रक्षा की है कि वे अपने धार्मिक विश्वासों और सिद्धांतों के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकें तथा उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव न किया जाए।

संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि अल्पसंख्यक समुदायों को विशेष अधिकार और संरक्षण प्रदान किए गए हैं। इन अधिकारों के अंतर्गत उन्हें अपने धर्म का पालन करने, अपनी संस्कृति और परंपराओं को सुरक्षित रखने तथा अपने शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और संचालन करने का अधिकार प्राप्त है। भारत के संविधान के अनुसार प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय को अपने धर्म और आस्था के अनुसार जीवन जीने तथा अपने धार्मिक और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना एवं प्रबंधन की स्वतंत्रता प्राप्त है।

संविधान में मुसलमानों के अधिकारों का संरक्षण

संविधान का अनुच्छेद 25 सभी नागरिकों को अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से पालन करने, उसका आचरण करने और उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है, जबकि अनुच्छेद 29 और 30 अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी भाषा, संस्कृति और शैक्षणिक संस्थानों के संरक्षण की गारंटी देते हैं। इन संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से मुसलमानों को अपने धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों के संरक्षण का आश्वासन प्राप्त होता है, जिससे वे अपने विश्वासों और सिद्धांतों के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकें। भारत में एक अल्पसंख्यक समुदाय होने के नाते मुसलमान अपने अधिकारों की रक्षा के लिए इन संवैधानिक गारंटियों का लाभ उठा सकते हैं।

संविधान में मुसलमानों के अधिकारों का संरक्षण इसलिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि उन्हें अपने धर्म और आस्था के अनुसार जीवन जीने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त रहे, ताकि वे अपनी धार्मिक शिक्षाओं को आगे बढ़ा सकें और अपने विश्वासों के अनुरूप जीवन व्यतीत कर सकें। संविधान ने अल्पसंख्यक समुदायों को धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक स्वतंत्रता प्रदान करके उन्हें एक सुरक्षित वातावरण और प्रगति के अवसर उपलब्ध कराए हैं। इसके माध्यम से मुसलमान अपने शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना कर सकते हैं, अपने धार्मिक विश्वासों का पालन कर सकते हैं और इस बात का आश्वासन प्राप्त करते हैं कि उनके अधिकार किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं किए जाएँगे।

इस प्रकार मुसलमानों के लिए संविधान एक सुरक्षात्मक कवच के समान है, जो उन्हें न केवल उनके धर्म और संस्कृति के संरक्षण की गारंटी देता है, बल्कि एक न्यायपूर्ण और समतामूलक सामाजिक व्यवस्था में उनके अधिकारों की सुरक्षा भी सुनिश्चित करता है। संविधान की सहायता से मुसलमान अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए एक प्रगतिशील, शांतिपूर्ण और सौहार्दपूर्ण समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सकते हैं।

अल्लाह तबारक व तआला का असीम धन्यवाद है, जो हमें अपनी हिदायत का प्रकाश प्रदान करता है और ज्ञान प्राप्त करने की तौफ़ीक़ देता है। उसी की कृपा से मैं इस पुस्तक के माध्यम से भारत के संविधान की समझ को सरल और सामान्य भाषा में प्रस्तुत करने में सफल हुआ हूँ। यह पुस्तक केवल संविधान की व्याख्या तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य सामाजिक न्याय, अधिकारों और स्वतंत्रताओं के महत्व को भी उजागर करना है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति इन सिद्धांतों से परिचित हो और उन्हें अपने जीवन में अपनाने का प्रयास कर सके।

इस पुस्तक की पूर्णता में जिन व्यक्तियों की मेहनत, सहयोग और मार्गदर्शन शामिल है, मैं उन सभी का हृदय से आभारी हूँ। उनकी दुआओं, प्रोत्साहन और सहयोग के बिना यह कार्य संभव नहीं था। मैं विशेष रूप से अपने शिक्षकों, शोधकर्ताओं और विद्वानों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस विषय पर अपने ज्ञान और अनुभव से मेरा मार्गदर्शन किया।

भारत के संविधान की समझ की इस यात्रा में मुझे पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक प्रत्येक पाठक के लिए एक उपयोगी माध्यम सिद्ध होगी और संविधान के सिद्धांतों को बेहतर ढंग से समझने में सहायक बनेगी। अल्लाह तबारक व तआला हमें अपनी हिदायत का प्रकाश प्रदान करे, ताकि हम इस ज्ञान को अपने जीवन में उतारते हुए एक न्यायप्रिय, शांतिपूर्ण और प्रगतिशील समाज की स्थापना कर सकें। आमीन।

सय्यद सनाउल्लाह काज़मी

<u>प्रारंभिक परिचय</u>

1. संविधान क्या है और यह क्यों महत्वपूर्ण है?
2. भारत के संविधान का इतिहास और पृष्ठभूमि
3. इस पुस्तक को कैसे पढ़ें?

प्रारंभिक परिचय

1. संविधान क्या है और यह क्यों महत्वपूर्ण है?

संविधान एक लिखित दस्तावेज़ है, जो किसी देश की सरकार के मूल सिद्धांतों, कानूनों और नीतियों को व्यवस्थित करता है। यह दस्तावेज़ सरकार के सभी संस्थानों की सीमाओं और अधिकारों को स्पष्ट करता है तथा यह निर्धारित करता है कि राज्य अपने नागरिकों के साथ किस प्रकार संबंध स्थापित करेगा। संविधान में केवल सरकार के अधिकारों की व्याख्या ही नहीं होती, बल्कि इसमें नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का भी विस्तार से उल्लेख किया जाता है, जिनकी रक्षा करना सरकार का दायित्व होता है। इसका उद्देश्य यह है कि देश में सरकार और नागरिकों के बीच एक संतुलित, व्यवस्थित और स्पष्ट संबंध स्थापित किया जाए, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का पूर्ण संरक्षण प्राप्त हो सके और राज्य अपने अधिकारों को सीमाओं में रखते हुए न्याय और समानता के आधार पर निर्णय करे।

संविधान का महत्व इस बात में निहित है कि यह किसी भी देश की कानूनी नींव स्थापित करता है। यह किसी भी देश के सभी सरकारी निर्णयों और प्रशासन की दिशा निर्धारित करता है। संविधान की अनुपस्थिति में सरकार के सभी संस्थानों का कार्य असंगठित और अव्यवस्थित हो सकता है। संविधान ही वह दस्तावेज़ है जो सरकार की शक्ति को सीमित करता है और उसे कानून के दायरे में रखता है। इसके माध्यम से सरकार की सभी नीतियाँ और कदम कानून के अनुरूप बनाए जाते हैं तथा इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि किसी भी संस्था या व्यक्ति को अधिकारों के दुरुपयोग का अवसर न मिले। संविधान सभी नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करता है और यह भी सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्याय और समानता के सिद्धांतों के अनुसार व्यवहार किया जाए।

संविधान केवल सरकारी ढाँचे की व्याख्या नहीं करता, बल्कि इसके माध्यम से जनता को यह समझने का अवसर भी मिलता है कि उनके अधिकार क्या हैं और सरकारी संस्थाएँ उनके लिए किस प्रकार कार्य करती हैं। संविधान नागरिकों को इस बात का बोध कराता है कि उनके पास कौन-कौन से अधिकार हैं और सरकार उनके अधिकारों की रक्षा किस प्रकार करेगी। जब लोग अपने संवैधानिक अधिकारों से परिचित होते हैं, तब वे अपने जीवन के विभिन्न निर्णय बेहतर ढंग से ले सकते हैं और अपने सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं का प्रभावी रूप से समाधान कर सकते हैं। इससे देश में एक सामाजिक चेतना उत्पन्न होती है और जनता में अपने संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ती है।

संविधान का महत्व इस बात में भी है कि यह देश के सामूहिक सिद्धांतों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है और उन मूल्यों को बढ़ावा देता है, जो राष्ट्र को एकजुट और सशक्त बनाते हैं। संविधान के माध्यम से सरकार और जनता के बीच एक मजबूत संबंध स्थापित होता है, जो न्याय, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित

होता है। संविधान में यह भी वर्णित है कि विभिन्न वर्गों के अधिकारों की रक्षा किस प्रकार की जाएगी और उनके बीच समानता तथा न्याय की व्यवस्था कैसे बनाए रखी जाएगी। इसके माध्यम से देश के आंतरिक और बाहरी मामलों में न्याय की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और यह संविधान की भावना के अनुरूप ही संभव होता है।

इस बात को भी समझना आवश्यक है कि संविधान एक कानूनी और नैतिक समझौता है, जो सरकार, नागरिकों और राज्य के सभी संस्थानों के बीच संबंधों को निर्धारित करता है। इस समझौते के बिना किसी भी देश की कानूनी और राजनीतिक संरचना को सही प्रकार से संचालित करना संभव नहीं है। संविधान एक ऐसी आधारशिला प्रदान करता है, जिस पर राज्य का प्रशासन संचालित होता है, और इसी आधार पर सरकार अपने नागरिकों की सेवा करती है। यही कारण है कि संविधान केवल कानून का संरक्षक ही नहीं होता, बल्कि नैतिक मूल्यों का भी वाहक होता है, जो किसी भी राष्ट्र की सफलता और प्रगति के लिए आवश्यक हैं।

2. भारत के संविधान का इतिहास और पृष्ठभूमि

भारत का संविधान विश्व के सबसे लंबे लिखित संविधानों में गिना जाता है। यह संविधान भारत के स्वतंत्रता संग्राम, लोकतांत्रिक मूल्यों और विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक अनुभवों का परिणाम है। संविधान न केवल देश की शासन-व्यवस्था की आधारशिला प्रदान करता है, बल्कि जनता के अधिकारों, कर्तव्यों और राज्य के सिद्धांतों का भी निर्धारण करता है।

संविधान निर्माण की प्रक्रिया वर्ष 1946 में ब्रिटिश सरकार की कैबिनेट मिशन योजना (Cabinet Mission Plan) के अंतर्गत स्थापित संविधान सभा (Constituent Assembly) से प्रारंभ हुई। प्रारंभ में सभा के 389 सदस्य थे, लेकिन 1947 में भारत के विभाजन और पाकिस्तान के गठन के बाद सदस्यों की संख्या घटकर 299 रह गई।

स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा एक स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करने लगी। इसमें विभिन्न धर्मों, भाषाओं, वर्गों और क्षेत्रों के प्रतिनिधि शामिल थे, जो भारत की विविधता को प्रतिबिंबित करते थे। सभा ने देश के लिए ऐसा संविधान तैयार करने का प्रयास किया, जो लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित हो।

संविधान के निर्माण में 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिन लगे। इस दौरान विभिन्न समितियों ने मौलिक अधिकारों, संघीय व्यवस्था, न्यायपालिका, विधि-निर्माण और सामाजिक न्याय जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विस्तृत विचार-विमर्श किया। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे, जबकि डॉ. भीमराव अम्बेडकर प्रारूप समिति (Drafting Committee) के अध्यक्ष थे। संविधान के निर्माण में उनके असाधारण योगदान के कारण उन्हें “भारतीय संविधान का शिल्पकार” कहा जाता है।

संविधान सभा ने 26 नवंबर 1949 को संविधान को अंगीकृत किया, जबकि यह 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। उसी दिन भारत एक संप्रभु गणराज्य (Republic) बना और प्रत्येक वर्ष 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस (Republic Day) मनाया जाता है।

भारत का संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक सामाजिक और राजनीतिक घोषणापत्र भी है। यह सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय की गारंटी देता है तथा अल्पसंख्यकों, दलितों, महिलाओं और अन्य कमजोर वर्गों के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

इस प्रकार भारत के संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह दर्शाती है कि यह केवल कानूनों का संग्रह नहीं, बल्कि राष्ट्र की सामूहिक आकांक्षाओं, लोकतांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रीय एकता का प्रतिबिंब है, जो आज भी देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की आधारशिला है।

3. इस पुस्तक को कैसे पढ़ें?

“भारत का संविधान: एक सरल और संपूर्ण मार्गदर्शिका” एक व्यापक और विस्तृत पुस्तक है, जो भारत के संविधान के विभिन्न पहलुओं को सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक को प्रभावी ढंग से समझने और इससे पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

1. **तार्किक क्रम के साथ अध्ययन करें:** पुस्तक को एक व्यवस्थित और चरणबद्ध तरीके से पढ़ें। यदि आप संविधान से बिल्कुल परिचित नहीं हैं, तो सबसे पहले “संविधान क्या है और यह क्यों महत्वपूर्ण है?” तथा “भारत के संविधान का इतिहास और पृष्ठभूमि” जैसे प्रारंभिक अध्यायों का अध्ययन करें। ये अध्याय आपको संविधान की पृष्ठभूमि और उसकी आधारभूत अवधारणाओं से परिचित कराएँगे। इसके बाद “संविधान की मूल बातों का परिचय” और “संविधान के प्रमुख भाग” वाले अध्याय पढ़ें, ताकि संविधान की संरचना को बेहतर ढंग से समझा जा सके।
2. **संवैधानिक प्रावधानों और उनके व्यावहारिक पहलुओं को समझें:** संविधान को केवल एक सैद्धांतिक दस्तावेज़ के रूप में न पढ़ें, बल्कि उसके व्यावहारिक अनुप्रयोग पर भी विचार करें। उदाहरण के लिए, “मौलिक अधिकार” और “राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत” वाले अध्यायों में वर्णित सिद्धांतों को वास्तविक जीवन के संदर्भ में समझने का प्रयास करें। जब आप “संविधान और सामान्य नागरिक” वाला अध्याय पढ़ें, तो यह विचार करें कि मौलिक अधिकार और नागरिक कर्तव्य आपके दैनिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।
3. **प्रश्न और सारांश तैयार करें:** प्रत्येक अध्याय के बाद महत्वपूर्ण बिंदुओं को नोट करें और स्वयं से प्रश्न तैयार करें। उदाहरण के लिए, “लोकतंत्र की अवधारणा” या “संविधान की मूल विशेषताएँ” पढ़ने के बाद स्वयं से पूछें कि “भारतीय लोकतंत्र अन्य लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है?” या “धर्मनिरपेक्षता की क्या व्याख्या दी गई है?” इस प्रकार का अध्ययन संवैधानिक विषयों को याद रखने और समझने में सहायता करेगा।
4. **आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाएँ:** जब आप “संविधान के संशोधन” या “संविधान की लचीलापन और कठोरता” जैसे अध्याय पढ़ें, तो यह भी विचार करें कि संविधान में संशोधन क्यों आवश्यक हैं और किस सीमा तक उन्हें बदला जा सकता है। इसी प्रकार, “संविधान की रक्षा” वाले अध्याय में न्यायपालिका और नागरिकों की भूमिका पर विचार करें कि संविधान को प्रभावी रूप से लागू और सुरक्षित कैसे रखा जाता है।
5. **प्रत्येक अध्याय को उसके विषय के अनुसार गहराई से पढ़ें:** पुस्तक के विभिन्न अध्याय संविधान को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने में सहायता करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप “केंद्रीय सरकार” और “राज्य सरकार” वाले अध्याय पढ़ रहे हैं, तो उनमें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल और मुख्यमंत्री के

अधिकारों का तुलनात्मक अध्ययन करें। इसी प्रकार, “न्यायपालिका” वाले अध्याय में न्यायपालिका की स्वतंत्रता और विभिन्न न्यायालयों की भूमिका को समझने का प्रयास करें।

6. **संविधान के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर ध्यान दें:** संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक जीवंत वास्तविकता है। इसका व्यावहारिक अनुप्रयोग “संविधान और उसका व्यावहारिक अनुप्रयोग” तथा “केंद्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग” जैसे अध्यायों में विस्तार से वर्णित किया गया है। जब आप इन अध्यायों को पढ़ें, तो वास्तविक जीवन में संवैधानिक प्रावधानों के प्रभावों पर भी विचार करें, जैसे कि किसी न्यायालय के निर्णय या सरकारी नीति में इन सिद्धांतों को किस प्रकार लागू किया गया है।
7. **अतिरिक्त सामग्री का लाभ उठाएँ:** पुस्तक के अंत में “परिशिष्ट” के अंतर्गत संविधान के अध्यायों, अनुच्छेदों, अनुसूचियों और संवैधानिक शब्दावली का शब्दकोश दिया गया है, जिसे पढ़कर आप अपनी जानकारी को और अधिक समृद्ध कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, “अधिक अध्ययन के लिए पुस्तकें और संसाधन” वाला अध्याय आपको संविधान के विषय में और अधिक शोध करने में सहायता करेगा। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और वक्फ बोर्ड जैसे विषयों को विशेष रूप से मुस्लिम समुदाय के लिए शामिल किया गया है, ताकि उन्हें संविधान द्वारा प्राप्त अधिकारों के व्यावहारिक अनुप्रयोग को समझने का अवसर मिल सके।
8. **समूह चर्चा और वाद-विवाद में भाग लें:** यदि संभव हो, तो इस पुस्तक का अध्ययन समूह में करें या इस पर चर्चा करें। “संविधान और नागरिकों के अधिकार”, “संविधान और सामाजिक न्याय” तथा “संविधान और पर्यावरण” जैसे अध्यायों पर विचार-विमर्श संविधान की गहन समझ विकसित करने में सहायक हो सकते हैं और आपको विभिन्न दृष्टिकोणों से परिचित करा सकते हैं।

यह पुस्तक केवल भारतीय संविधान के सिद्धांतों और प्रावधानों का वर्णन नहीं करती, बल्कि उनके व्यावहारिक अनुप्रयोग, सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों तथा नागरिकों की जिम्मेदारियों पर भी प्रकाश डालती है। यदि आप इन बातों को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का अध्ययन करेंगे, तो आप न केवल संविधान को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे, बल्कि उसके व्यावहारिक पहलुओं को भी अनुभव कर सकेंगे।

अध्याय 1 : संविधान की मूल बातों का परिचय

1.1 संविधान का परिचय

- संविधान का अर्थ और उद्देश्य
- भारत के संविधान का निर्माण कैसे हुआ?
- संविधान सभा की भूमिका

1.2 संविधान की प्रमुख विशेषताएँ

- विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान
- संविधान की मूल संरचना : भाग, अनुच्छेद, अनुसूचियाँ और संशोधन
- संविधान की आत्मा : लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय

1.3 संविधान के मूल सिद्धांत

- लोकतंत्र की अवधारणा
- धर्मनिरपेक्षता का अर्थ
- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय

अध्याय 1 : संविधान की मूल बातों का परिचय

1.1 संविधान का परिचय

- ### संविधान का अर्थ और उद्देश्य

संविधान एक लिखित दस्तावेज़ है, जो किसी देश या राज्य की व्यवस्था को संगठित करने के लिए मूल सिद्धांतों और नियमों का निर्धारण करता है। यह एक कानूनी ढाँचा प्रदान करता है, जो सरकारी संस्थाओं की संरचना, उनके अधिकारों और दायित्वों, नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्यों तथा राज्य के विभिन्न अंगों के कार्य-निष्पादन को स्पष्ट करता है। संविधान किसी देश की राजनीतिक, कानूनी और सामाजिक व्यवस्था का सार होता है और यही वह आधार है, जिस पर राज्य की सभी गतिविधियाँ और सरकारी निर्णय आधारित होते हैं।

संविधान का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य राज्य व्यवस्था को स्थिर बनाना और विभिन्न संस्थाओं के बीच संतुलन स्थापित करना है। यह सरकारी शक्तियों को सीमाओं और प्रतिबंधों के भीतर रखता है तथा उन्हें कानून और न्याय के अनुसार प्रयोग करने का मार्गदर्शन प्रदान करता है। संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों, जैसे कार्यपालिका (राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद), विधायिका (संसद) और न्यायपालिका के अधिकारों और दायित्वों को स्पष्ट किया जाता है, ताकि कोई भी संस्था अपनी सीमाओं का अतिक्रमण न करे और राज्य व्यवस्था संतुलित रूप से संचालित होती रहे।

संविधान सरकार को जनहित में कार्य करने का अधिकार प्रदान करता है और साथ ही नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करता है। यह स्पष्ट करता है कि नागरिकों को कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं, उन अधिकारों की रक्षा किस प्रकार की जाएगी, और यदि उनका उल्लंघन हो तो न्याय कैसे प्रदान किया जाएगा। इसी कारण संविधान को नागरिक स्वतंत्रताओं और मानवीय गरिमा की गारंटी माना जाता है।

संविधान का उद्देश्य केवल राज्य की आंतरिक व्यवस्था और कार्यप्रणाली को बेहतर बनाना ही नहीं, बल्कि बाह्य स्तर पर भी राज्य को स्थिरता प्रदान करना है। यह वैश्विक स्तर पर देश की स्थिति और उसकी आंतरिक व्यवस्था को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में सहायता करता है। संविधान के माध्यम से विदेश नीति, अंतरराष्ट्रीय संबंधों और वैश्विक मामलों में राज्य की भागीदारी के सिद्धांत भी निर्धारित किए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, संविधान राज्य की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए भी महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह सरकार को जनकल्याणकारी योजनाओं को लागू करने और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को बढ़ावा देने का मार्ग दिखाता है। संविधान के माध्यम से नागरिकों के बीच समानता, समता और न्याय सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है, ताकि एक संतुलित और विकसित समाज का निर्माण हो सके।

संविधान का महत्व इस बात में भी निहित है कि यह राज्य की स्थिरता और निरंतरता का आधार प्रदान करता है। यदि संविधान सुदृढ़ और प्रभावी हो, तो सरकारें बेहतर ढंग से कार्य करती हैं, जनसेवाओं में सुधार होता है और कल्याणकारी योजनाओं का विकास संभव होता है। संविधान ऐसी व्यवस्था का मार्गदर्शन करता है, जिसमें जनहित और कानून के शासन को सर्वोच्च प्राथमिकता प्राप्त होती है।

संविधान की उपस्थिति और उसका प्रभावी क्रियान्वयन ही किसी भी देश की प्रगति और समृद्धि का आधार होता है। यह वह मूल दस्तावेज़ है, जिसके अनुसार राज्य की सभी संस्थाएँ और नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझते हैं तथा उनका पालन करते हैं।

▪ भारत के संविधान का निर्माण कैसे हुआ?

भारत के संविधान का निर्माण एक लंबी, जटिल और ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिस पर विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारकों का गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के बाद भारत को एक ऐसी सुदृढ़, स्थिर और लोकतांत्रिक व्यवस्था की आवश्यकता थी, जिसके अंतर्गत सरकार को प्रभावी ढंग से चलाया जा सके और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। इसी उद्देश्य से एक व्यापक संविधान के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। यह प्रक्रिया 1946 में संविधान सभा की स्थापना से शुरू हुई और लगभग 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन की लंबी अवधि के बाद 26 नवम्बर 1949 को संविधान को स्वीकार कर लिया गया, जबकि 26 जनवरी 1950 को इसे औपचारिक रूप से लागू कर दिया गया।

संविधान सभा की स्थापना 1946 में हुई। इस सभा का मुख्य उद्देश्य भारत के लिए एक स्थायी संविधान तैयार करना था, जो देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को संगठित करे तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करे। सभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष जनमत के द्वारा नहीं, बल्कि प्रतिनिधिक प्रणाली के अंतर्गत किया गया था। इन सदस्यों में विभिन्न राजनीतिक दलों, धर्मों, वर्गों और क्षेत्रों के प्रतिनिधि शामिल थे, ताकि संविधान में सभी समूहों और अल्पसंख्यकों के हितों का समुचित ध्यान रखा जा सके।

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को नई दिल्ली के कॉन्स्टिट्यूशन हॉल में आयोजित हुई। इस बैठक की अस्थायी अध्यक्षता डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने की, जो सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य थे। इसके बाद 11 दिसम्बर 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया। प्रारम्भ में सभा में कुल 389 सदस्य थे, जिनमें ब्रिटिश भारत के प्रान्तों और रियासतों के प्रतिनिधि शामिल थे। इन सदस्यों का उद्देश्य ऐसा संविधान तैयार करना था, जो लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित हो और देश के सभी वर्गों के अधिकारों और हितों की रक्षा कर सके।

15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा एक स्वायत्त विधायी संस्था बन गई। भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना के बाद मुस्लिम लीग के अनेक सदस्य पाकिस्तान चले गए, जिसके परिणामस्वरूप सभा के सदस्यों की संख्या 389 से घटकर 299 रह गई।

संविधान के निर्माण के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया, जिन्होंने संविधान के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण "ड्राफ्टिंग कमेटी" थी, जिसकी अध्यक्षता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने की। इस समिति का मुख्य कार्य संविधान का प्रारूप तैयार करना था। डॉ. अम्बेडकर ने अत्यन्त दूरदर्शिता और विधिक दक्षता के साथ ऐसा प्रारूप तैयार किया, जिसमें भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक

विविधता को ध्यान में रखा गया। इसी कारण डॉ. अम्बेडकर को भारतीय संविधान का शिल्पकार भी कहा जाता है।

संविधान सभा ने संविधान के प्रारूप पर विस्तृत चर्चा और बहस की तथा विभिन्न सुझावों और संशोधनों के माध्यम से इसे और अधिक व्यापक बनाया। संविधान में यह निर्धारित किया गया कि भारत एक संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित देश होगा, जिसमें केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन स्पष्ट होगा। इसके साथ ही नागरिकों के मौलिक अधिकार, स्वतंत्रता, समानता और न्याय को भी संविधान का महत्वपूर्ण भाग बनाया गया। इसके अतिरिक्त, दलितों, जनजातीय वर्गों और अन्य पिछड़े समूहों के संरक्षण और विकास के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए गए, ताकि सामाजिक न्याय को बढ़ावा दिया जा सके।

26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा ने भारत के संविधान को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया, जबकि 26 जनवरी 1950 को इसे लागू किया गया। इसी दिन को प्रत्येक वर्ष “गणतंत्र दिवस” के रूप में मनाया जाता है। संविधान के लागू होने के साथ ही भारत एक संप्रभु, लोकतांत्रिक और संवैधानिक गणराज्य बन गया। इस संविधान ने न केवल देश की आंतरिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया, बल्कि लोकतंत्र, मानवाधिकार, समानता और न्याय के सिद्धांतों के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को भी विश्व के समक्ष स्पष्ट किया।

▪ संविधान सभा की भूमिका

संविधान सभा ने भारत के संविधान के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक भूमिका निभाई। इस सभा ने न केवल संविधान-निर्माण की प्रक्रिया का आरम्भ किया, बल्कि संविधान के विभिन्न भागों पर विस्तृत चर्चा और बहस की, महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए और आवश्यक संशोधनों के माध्यम से इसे एक व्यापक और संतुलित दस्तावेज़ का स्वरूप प्रदान किया। सभा का मुख्य उद्देश्य ऐसा संविधान तैयार करना था, जो देश के सभी नागरिकों के अधिकारों और हितों का प्रतिनिधित्व करे तथा भारत की विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए एक सुदृढ़ कानूनी और लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करे।

संविधान सभा की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी संविधान के प्रारूप की तैयारी तथा उस पर विचार-विमर्श करना थी। सभा के सदस्यों ने अपने राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभवों के आधार पर विभिन्न विषयों पर विस्तृत चर्चा की। इन बहसों के परिणामस्वरूप संविधान के विभिन्न सिद्धांतों और अनुच्छेदों का निर्माण किया गया। सभा ने यह सुनिश्चित किया कि भारत का संविधान लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित हो, ताकि प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित की जा सके।

संविधान सभा के अंतर्गत विभिन्न समितियों का गठन किया गया, जिन्होंने संविधान के अलग-अलग क्षेत्रों पर कार्य किया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण "ड्राफ्टिंग कमेटी" थी, जिसकी अध्यक्षता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने की। इस समिति का मुख्य कार्य संविधान का प्रारूप तैयार करना था। डॉ. अम्बेडकर और उनकी समिति ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता और विधिक दक्षता के साथ ऐसा प्रारूप तैयार किया, जिसमें भारत के विभिन्न धर्मों, राष्ट्रीयताओं, संस्कृतियों और वर्गों के हितों का ध्यान रखा गया। इस प्रारूप में मौलिक अधिकार, शासन की संरचना, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, संघीय व्यवस्था तथा अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया।

संविधान सभा ने देश के विभिन्न धर्मों, वर्गों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए संविधान में ऐसे प्रावधान शामिल किए, जो सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देते हैं। सभा ने यह भी निर्धारित किया कि दलितों, महिलाओं, जनजातीय वर्गों और अन्य पिछड़े समूहों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष उपाय किए जाएँ। इन्हीं निर्णयों के परिणामस्वरूप भारत का संविधान एक व्यापक, संतुलित और कल्याणकारी दस्तावेज़ बन सका, जो न केवल शासन-व्यवस्था को संगठित करता है, बल्कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों की गारंटी भी प्रदान करता है।

दीर्घकालीन चर्चा, बहस और गहन विचार-विमर्श के पश्चात संविधान सभा ने 26 नवम्बर 1949 को भारत के संविधान को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया। यह भारत के इतिहास का एक महान और स्मरणीय क्षण था, क्योंकि इसके माध्यम से देश को एक संप्रभु, लोकतांत्रिक और संवैधानिक राज्य की आधारशिला प्राप्त हुई।

संविधान के लागू होने के साथ ही भारत ने लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समानता और मानवाधिकारों के सिद्धांतों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा की।

संविधान सभा की भूमिका केवल एक संवैधानिक दस्तावेज़ तैयार करने तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसने भारत में लोकतांत्रिक मूल्यों, विधि के शासन और मानवाधिकारों की सुरक्षा की सुदृढ़ नींव स्थापित की। यही कारण है कि संविधान सभा को भारत के राजनीतिक और संवैधानिक इतिहास में एक असाधारण स्थान प्राप्त है।

1.2 संविधान की प्रमुख विशेषताएँ

- ### विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान

भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान माना जाता है, और यही विशेषता इसकी व्यापकता, विस्तार और महत्त्व को उजागर करती है। इस संविधान में 448 अनुच्छेद, 12 अनुसूचियाँ तथा अब तक 106 संशोधन सम्मिलित हैं, जो इसके विशाल स्वरूप, जटिलता और गहराई को प्रदर्शित करते हैं। विश्व के अन्य संविधानों की तुलना में भारत का संविधान अपनी प्रकृति के अनुसार सबसे अधिक विस्तृत और व्यापक संविधान है। इसका विशाल आकार इस बात का प्रमाण है कि इसे अत्यन्त विचार-विमर्श और सावधानी के साथ तैयार किया गया है।

भारत का संविधान देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषायी और सामाजिक विविधता को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया, ताकि एक बहुसांस्कृतिक और विविधतापूर्ण समाज को प्रभावी ढंग से संगठित किया जा सके। संविधान में विभिन्न वर्गों, धर्मों और क्षेत्रों के अधिकारों और हितों का विशेष ध्यान रखा गया है, जिसके कारण यह केवल एक कानूनी दस्तावेज़ ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रतीक भी माना जाता है।

सबसे पहले, यह संविधान पूर्णतः लिखित है, जिसका अर्थ है कि इसके सभी सिद्धांत, अनुच्छेद, अधिकार और शासन की सभी प्रक्रियाएँ एक ही दस्तावेज़ में सम्मिलित की गई हैं। इसके विपरीत, कुछ अन्य देशों में अलिखित संविधान होते हैं, जहाँ परम्पराएँ, न्यायिक निर्णय और राजनीतिक समझौते संविधान का भाग होते हैं। भारत का संविधान एक पूर्ण लिखित दस्तावेज़ है, जिसमें प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलू को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है, ताकि किसी भी समस्या की स्थिति में सभी पक्षों के लिए एक स्पष्ट और सर्वमान्य मार्गदर्शन उपलब्ध हो सके।

भारत के संविधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल शासन-व्यवस्था को ही संगठित नहीं करता, बल्कि यह नागरिकों के अधिकारों, राज्य के दायित्वों और लोकनीतियों के सभी पहलुओं को भी समाहित करता है। संविधान की शुरुआत उसकी प्रस्तावना (Preamble) से होती है, जिसमें उसके मूल उद्देश्य और आदर्शों का वर्णन किया गया है। इसमें भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला रखी गई है, जहाँ जनता की इच्छा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इसमें स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय के महत्त्व को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

संविधान में 448 अनुच्छेदों की संख्या इस बात का संकेत है कि इसमें सभी महत्वपूर्ण विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इन अनुच्छेदों में प्रत्येक राज्य, सरकार, न्यायपालिका और प्रशासन के कार्यक्षेत्र को निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह संविधान शासन के विभिन्न स्तरों के बीच शक्तियों के विभाजन

को भी स्पष्ट करता है, चाहे वह केन्द्रीय सरकार हो या राज्य सरकार। इसमें केन्द्रीय सरकार की संरचना, मंत्रालयों की भूमिका, संसद की कार्यप्रणाली और न्यायपालिका की स्वतंत्रता जैसे विषय सम्मिलित हैं। इसके साथ ही संविधान में वे सभी कानून, सिद्धांत और नियम भी वर्णित हैं, जो प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा करते हैं।

संविधान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह एक लचीला दस्तावेज़ है, जो समय के साथ बदलती परिस्थितियों के अनुसार संशोधन की अनुमति देता है। संविधान में संशोधन की प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि यह एक जीवंत दस्तावेज़ बना रहे, जो बदलती हुई सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल सके। इसके बावजूद, संविधान की यह लचीलापन किसी भी राज्य या व्यक्ति को यह अनुमति नहीं देता कि वह इसके मूल सिद्धांतों, जैसे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समानता में परिवर्तन करे।

भारत के संविधान की विशेषता यह भी है कि यह विश्व के किसी भी संविधान की तुलना में सबसे अधिक विस्तृत है और इसे भारत की विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। संविधान में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और भाषाओं के लोगों के अधिकारों की रक्षा किस प्रकार की जाएगी, ताकि उनमें एकता और सौहार्द का वातावरण स्थापित हो सके।

समग्र रूप से, भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान होने के कारण यह दर्शाता है कि भारत ने अपनी जटिल और विविध राज्य-व्यवस्था को अत्यन्त सावधानी के साथ दस्तावेज़ी स्वरूप प्रदान किया है। इसमें न केवल शासन-व्यवस्था और शक्तियों के विभाजन का वर्णन किया गया है, बल्कि नागरिकों के अधिकारों और राज्य के दायित्वों की भी पूर्ण सुरक्षा सुनिश्चित की गई है। संविधान की यह विशेषता इसे एक अद्वितीय और सम्पूर्ण दस्तावेज़ बनाती है, जो भारत के लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की आधारशिला है।

▪ संविधान की मूल संरचना : भाग, अनुच्छेद, अनुसूचियाँ और संशोधन

भारत का संविधान अपनी व्यापकता, विस्तार और विशिष्टता के कारण विश्वभर में एक अद्वितीय स्थान रखता है। इसकी मूल संरचना में चार प्रमुख घटक सम्मिलित हैं : भाग (Parts), अनुच्छेद (Articles), अनुसूचियाँ (Schedules) और संशोधन (Amendments)। ये सभी घटक संविधान की पूर्णता और उसके प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा संविधान के विभिन्न भागों को एक संगठित और सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करते हैं। संविधान की यही व्यापक संरचना भारत की शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाती है और सरकार तथा जनता के बीच संबंधों को स्पष्ट और व्यवस्थित बनाए रखने में सहायता करती है।

भाग (Parts): भारतीय संविधान को विभिन्न भागों (Parts) में विभाजित किया गया है, ताकि संविधान के विषयों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जा सके। मूल संविधान में 22 भाग सम्मिलित थे, किन्तु बाद में संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से इनमें वृद्धि की गई और वर्तमान समय में संविधान 25 भागों से युक्त है।

प्रत्येक भाग संविधान के किसी विशिष्ट विषय से संबंधित है। उदाहरण के लिए, कुछ भागों में नागरिकों के मौलिक अधिकार, राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व, केन्द्र और राज्य सरकारों की शक्तियाँ, न्यायपालिका, चुनाव तथा आपातकाल से संबंधित प्रावधान सम्मिलित हैं। भागों का यह विभाजन संविधान को समझने तथा उसके विभिन्न विषयों तक सरल पहुँच प्रदान करने में सहायक है।

अनुच्छेद (Articles): भारत के मूल संविधान में 395 अनुच्छेद (Articles) सम्मिलित थे, किन्तु समय-समय पर विभिन्न संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से इनमें वृद्धि की गई, जिसके परिणामस्वरूप अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 448 हो गई। ये अनुच्छेद संविधान का मूल भाग हैं और इन्हीं के माध्यम से राज्य के सिद्धांतों, कानूनों और शासन-व्यवस्था का वर्णन किया जाता है।

इन अनुच्छेदों में सरकार की संरचना, नागरिकों के मौलिक अधिकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, संघीय व्यवस्था, चुनाव, आपातकाल तथा अन्य महत्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रत्येक अनुच्छेद किसी विशिष्ट विषय अथवा विधिक पक्ष को स्पष्ट करता है, जबकि उसके अंतर्गत विद्यमान उपबंध संबंधित विषयों का और अधिक विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं। यही अनुच्छेद भारतीय संविधान की मूल संरचना का निर्माण करते हैं और देश की राजनीतिक, विधिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था को व्यवस्थित रूप से संचालित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनुसूचियाँ (Schedules): भारत के संविधान में वर्तमान समय में 12 अनुसूचियाँ (Schedules) सम्मिलित हैं। मूल संविधान में इनकी संख्या 8 थी, किन्तु बाद में विभिन्न संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से और अधिक अनुसूचियाँ जोड़ी गईं। अनुसूचियों का उद्देश्य संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों से संबंधित विवरणों, सूचियों और प्रशासनिक विषयों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना है।

प्रत्येक अनुसूची का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है और वह संविधान के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करती है। ये अनुसूचियाँ संविधान के अनुच्छेदों से संबद्ध होती हैं और उनकी व्याख्या तथा व्यावहारिक अनुप्रयोग में सहायता प्रदान करती हैं।

अनुसूचियों का महत्त्व इस बात में निहित है कि वे संविधान के जटिल विषयों को व्यवस्थित और सरल रूप में प्रस्तुत करती हैं, ताकि जनता और सरकारी संस्थाओं के लिए उन्हें समझना और उनका पालन करना आसान हो सके। इन अनुसूचियों में राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की सूची, संवैधानिक पदों की शक्तियाँ, चुनावों से संबंधित विषय, भाषाओं की सूची तथा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन जैसे महत्वपूर्ण विषय सम्मिलित हैं।

संशोधन (Amendments): भारत का संविधान एक लचीला दस्तावेज़ है, जो समय के साथ बदलती परिस्थितियों के अनुसार संशोधन की अनुमति देता है। संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जो इसे एक जीवंत और गतिशील दस्तावेज़ बनाती है। संशोधनों के माध्यम से सरकार और राज्य की संस्थाओं की आवश्यकताओं तथा जन-अपेक्षाओं के अनुसार संविधान में परिवर्तन किए जा सकते हैं।

संवैधानिक संशोधनों की प्रक्रिया मुख्य रूप से संसद के माध्यम से संपन्न की जाती है, जबकि कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधनों के लिए राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। यह प्रक्रिया इस बात को सुनिश्चित करती है कि संविधान में परिवर्तन सोच-समझकर और व्यापक विचार-विमर्श के बाद किया जाए।

भारतीय संविधान का पहला संशोधन वर्ष 1951 में किया गया था और इसके बाद संविधान में 106 संशोधन किए जा चुके हैं। इन संशोधनों के माध्यम से चुनाव प्रणाली, राज्यों की शक्तियों, मौलिक अधिकारों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों में समय की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन किए गए हैं।

समग्र रूप से, भारत का संविधान भागों, अनुच्छेदों, अनुसूचियों और संशोधनों के माध्यम से एक व्यापक और प्रभावी व्यवस्था प्रदान करता है, जिसमें शासन-व्यवस्था के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। भाग संविधान के विभिन्न विषयों को व्यवस्थित रूप से विभाजित करते हैं, अनुच्छेद संविधान के मूल

सिद्धांतों को स्पष्ट करते हैं, अनुसूचियाँ उन सिद्धांतों से संबंधित विवरण और प्रशासनिक स्पष्टीकरण प्रदान करती हैं, जबकि संशोधन संविधान को समय के अनुरूप प्रभावी और आधुनिक बनाए रखने का साधन बनते हैं।

इन सभी घटकों के माध्यम से भारत का संविधान न केवल एक सुदृढ़ और स्थिर शासन-व्यवस्था की स्थापना करता है, बल्कि जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा, समानता, न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों के संवर्धन को भी सुनिश्चित करता है।

▪ संविधान की आत्मा : लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय

भारत का संविधान अपनी आत्मा में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय को मूल सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करता है, जो न केवल उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन का मार्गदर्शन करते हैं, बल्कि पूरे देश की राजनीति और सामाजिक जीवन की आधारशिला भी प्रदान करते हैं। ये तीनों विशेषताएँ भारत के संविधान की आत्मा का निर्माण करती हैं और इनके क्रियान्वयन के माध्यम से भारत एक संतुलित, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील राज्य के रूप में अपनी पहचान स्थापित करता है।

लोकतंत्र: संविधान की आत्मा में लोकतंत्र का अर्थ यह है कि देश का शासन जनता की इच्छा और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से संचालित हो। किसी भी शासन-व्यवस्था में यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि सरकार की वास्तविक शक्ति जनता में निहित हो और सरकारी निर्णय जनता के कल्याण के लिए लिए जाएँ। भारत में लोकतंत्र की यह भावना संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है कि भारत एक गणराज्य है, जहाँ जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन करती है और इसके अंतर्गत सरकार की प्रत्येक नीति जनहित के अनुरूप होती है।

धर्मनिरपेक्षता: धर्मनिरपेक्षता का अर्थ यह है कि राज्य किसी भी धर्म का समर्थन नहीं करता, बल्कि सभी धर्मों को समान सम्मान प्रदान करता है और सभी नागरिकों को अपने धर्म का पालन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। संविधान की आत्मा में धर्मनिरपेक्षता का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि भारत एक विविध धार्मिक, सांस्कृतिक और जातीय समाज है, जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ निवास करते हैं। संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप यह सुनिश्चित करता है कि सरकार किसी एक धर्म को प्राथमिकता नहीं देती और प्रत्येक नागरिक को अपने विश्वासों के अनुसार जीवन जीने का पूर्ण अधिकार प्रदान करती है।

सामाजिक न्याय: सामाजिक न्याय भारत के संविधान की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जिसका उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करना है। सामाजिक न्याय के आधार पर संविधान समाज के प्रत्येक वर्ग को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करता है और यह सुनिश्चित करता है कि समाज में गरीबी, बेरोज़गारी, जातिगत भेदभाव तथा अन्य आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को कम किया जाए। संविधान में सामाजिक न्याय की अवधारणा को व्यवहार में लाने के लिए अनेक मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों को सम्मिलित किया गया है, जिनमें अल्पसंख्यकों, महिलाओं, दलितों और पिछड़े वर्गों

के अधिकारों की सुरक्षा भी शामिल है। यह सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार और संरक्षण प्राप्त हों।

समग्र रूप से, संविधान की आत्मा में निहित लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय की ये तीन विशेषताएँ भारत की राजनीति और सामाजिक जीवन में केन्द्रीय स्थान रखती हैं। इन विशेषताओं के कारण भारत एक ऐसा देश बन गया है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों के अंतर्गत जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है, और उसके सभी नागरिकों को एक-दूसरे के अधिकारों का सम्मान करने का दायित्व भी सौंपा गया है। इन सिद्धांतों का पालन करते हुए भारत अपने संविधान के अनुरूप एक शांतिपूर्ण, स्थिर और प्रगतिशील राज्य बनने की दिशा में निरन्तर अग्रसर है।

1.3 संविधान के मूल सिद्धांत

▪ लोकतंत्र की अवधारणा

लोकतंत्र एक ऐसी शासन-व्यवस्था है, जिसमें जनता की इच्छाओं, हितों और अधिकारों को केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है। इस व्यवस्था में शासन की शक्ति जनता की इच्छा पर निर्भर करती है और जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन-कार्य में भाग लेती है। लोकतंत्र का मूल उद्देश्य यह है कि सरकारी निर्णय जनता के हित में लिए जाएँ और प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो।

लोकतंत्र की प्रारम्भिक अवधारणाएँ प्राचीन यूनान में विकसित हुईं, जहाँ "डेमोक्रेसी" (Democracy) शब्द का प्रयोग किया गया, जिसका अर्थ "जनता का शासन" है। प्राचीन यूनान की इस अवधारणा को आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की आधारशिला माना जाता है। लोकतंत्र का मूल सिद्धांत यह है कि सभी व्यक्तियों को समान अधिकार प्राप्त हों, चाहे उनका संबंध किसी भी धर्म, जाति, नस्ल या भाषा से हो। इस व्यवस्था के अंतर्गत नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने, अपनी राय व्यक्त करने तथा शासन के निर्णयों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त होता है।

आज विश्व के अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था प्रचलित है, जहाँ जनता को अपने शासन-संबंधी मामलों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाता है। लोकतंत्र का अर्थ केवल जनता द्वारा सरकार का चुनाव करना ही नहीं है, बल्कि यह भी आवश्यक है कि सरकारी निर्णय पारदर्शी हों, जनता की आवाज़ सुनी जाए और उनके मौलिक अधिकारों की पूर्ण रक्षा की जाए।

भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था संविधान के आधार पर स्थापित है। 26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ, जिसमें लोकतंत्र के सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक "गणराज्य" घोषित किया गया है, जिसका अर्थ है कि देश की सरकार जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से संचालित होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत जनता को स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों में भाग लेने तथा अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिनिधियों का चयन करने का अधिकार प्राप्त है।

भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए विभिन्न संस्थाओं की स्थापना की गई है, जिनमें संसद, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और न्यायपालिका सम्मिलित हैं। संसद के माध्यम से जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि विधि-निर्माण और शासन-संबंधी निर्णयों में भाग लेते हैं। यह व्यवस्था सुनिश्चित करती है कि सरकार के निर्णय जनहित के अनुरूप हों और नागरिकों के अधिकारों का सम्मान किया जाए।

लोकतंत्र में नागरिक स्वतंत्रताओं की सुरक्षा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति तथा शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके साथ ही लोकतंत्र सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है, जिनमें महिलाओं, अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों के अधिकार भी सम्मिलित हैं।

लोकतंत्र में विधि के शासन को मूलभूत स्थान प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि सरकार के सभी कार्य संविधान और कानून के अनुरूप होने चाहिए तथा किसी भी व्यक्ति या संस्था को अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। इसी सिद्धांत के अंतर्गत सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए बाध्य मानी जाती है।

वर्तमान समय में लोकतंत्र के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हैं, जिनमें राजनीतिक और जन-जागरूकता की कमी, भ्रष्टाचार, राजनीतिक स्वार्थपरता तथा संस्थाओं की कमजोरी सम्मिलित हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि जनता में अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की जाए तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं को और अधिक सुदृढ़ बनाया जाए।

अंत में यह कहा जा सकता है कि लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता, न्याय और विधि के शासन को केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है। यह व्यवस्था न केवल सरकार को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाती है, बल्कि प्रत्येक नागरिक के अधिकारों और मानवीय गरिमा की रक्षा की गारंटी भी प्रदान करती है। लोकतंत्र का वास्तविक उद्देश्य जनता को सशक्त बनाना और एक शांतिपूर्ण, न्यायपूर्ण तथा विकसित समाज की स्थापना करना है।

▪ धर्मनिरपेक्षता का अर्थ

धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा सिद्धांत है, जिसका उद्देश्य धर्म और राज्य के बीच पृथक्करण स्थापित करना है, ताकि राज्य के मामलों में किसी विशेष धर्म का प्रभाव या प्रभुत्व न हो। इस सिद्धांत का मूल उद्देश्य यह है कि सरकार अपने निर्णय जनकल्याण, न्याय, समानता और विधि के आधार पर करे, न कि किसी विशिष्ट धार्मिक विश्वास या विचारधारा के अनुसार। धर्मनिरपेक्षता इस बात को स्वीकार करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म, विश्वास और उपासना का पालन करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए तथा राज्य को सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

धर्मनिरपेक्षता की प्रारम्भिक अवधारणाएँ यूरोप में धार्मिक संघर्षों और रक्तरंजित युद्धों के पश्चात सामने आईं। विभिन्न धर्मों के बीच गहरे मतभेदों ने सरकारों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि धर्म और राजनीति को अलग रखा जाए, ताकि समाज में शांति, सहिष्णुता और स्थिरता स्थापित की जा सके। इसी पृष्ठभूमि में धर्मनिरपेक्षता एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत के रूप में उभरी, जिसका उद्देश्य सभी धर्मों के अनुयायियों के बीच समानता और सौहार्द स्थापित करना था।

भारत में धर्मनिरपेक्षता को संवैधानिक महत्त्व प्राप्त है। भारत का संविधान एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा प्रस्तुत करता है, जहाँ सभी धर्मों को समान सम्मान और स्वतंत्रता प्राप्त है। भारतीय राज्य किसी एक धर्म को राजधर्म घोषित नहीं करता, बल्कि सभी धर्मों के अनुयायियों के अधिकारों का समान रूप से सम्मान करता है।

हालाँकि, यह उल्लेखनीय है कि भारत के संविधान की मूल प्रस्तावना में "धर्मनिरपेक्ष" (Secular) शब्द सम्मिलित नहीं था। यह शब्द बाद में वर्ष 1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से प्रस्तावना में जोड़ा गया। इस संशोधन के बाद भारत को औपचारिक रूप से एक "समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य" घोषित किया गया। इस कदम का उद्देश्य देश की धार्मिक सहिष्णुता, समानता और सभी धर्मों के प्रति सम्मान के सिद्धांत को और अधिक स्पष्ट करना था।

धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि राज्य धर्म का विरोध करता है या धर्म की उपेक्षा करता है, बल्कि इसका उद्देश्य यह है कि सरकार सभी धर्मों के प्रति निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाए और किसी एक धर्म को दूसरे पर प्राथमिकता न दे। राज्य का दायित्व है कि वह सभी नागरिकों के धार्मिक अधिकारों के साथ-साथ उनके मूल मानवाधिकारों की भी रक्षा करे।

धर्मनिरपेक्षता ऐसा वातावरण निर्मित करती है, जहाँ सभी नागरिक धार्मिक भेदभाव के बिना अपने अधिकारों का लाभ उठा सकते हैं और अपने विश्वासों का स्वतंत्र रूप से पालन कर सकते हैं। यह सिद्धांत न केवल धार्मिक सौहार्द को बढ़ावा देता है, बल्कि एक शांतिपूर्ण, संतुलित और न्यायपूर्ण समाज की आधारशिला भी प्रदान करता है।

धर्मनिरपेक्षता का महत्त्व इस बात में निहित है कि यह राज्य की संस्थाओं और सरकारी निर्णयों को किसी विशेष धार्मिक विचारधारा के प्रभाव से मुक्त रखती है, ताकि सरकार सभी नागरिकों के अधिकारों, हितों और कल्याण को समान रूप से सुनिश्चित कर सके। यही सिद्धांत एक सुदृढ़, लोकतांत्रिक और एकीकृत समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्षता भारतीय लोकतंत्र का एक मूल स्तंभ है। यह सिद्धांत सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता, समानता और न्याय की गारंटी प्रदान करता है तथा ऐसे समाज की स्थापना में सहायता करता है, जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग पारस्परिक सम्मान, सहिष्णुता और बंधुत्व के साथ जीवन व्यतीत कर सकें। यही सिद्धांत एक सुदृढ़, एकीकृत और लोकतांत्रिक भारत की आधारशिला प्रदान करता है।

▪ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय भारत के संविधान के मूल सिद्धांतों में सम्मिलित हैं। इन तीनों प्रकार के न्याय का उद्देश्य समाज में समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा को बढ़ावा देना है, ताकि प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के उन्नति और समृद्ध जीवन व्यतीत करने के समान अवसर प्राप्त हो सकें। भारत के संविधान की प्रस्तावना में भी न्याय के इन तीनों रूपों को विशेष महत्त्व दिया गया है, ताकि देश में एक न्यायपूर्ण और संतुलित समाज की स्थापना की जा सके।

सामाजिक न्याय: सामाजिक न्याय का उद्देश्य ऐसे समाज की स्थापना करना है, जहाँ सभी व्यक्तियों को धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, भाषा या सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव का सामना न करना पड़े। इस सिद्धांत के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त होता है।

सामाजिक न्याय यह सुनिश्चित करता है कि अल्पसंख्यकों, दलितों, महिलाओं, श्रमिकों और अन्य पिछड़े वर्गों के अधिकारों की रक्षा की जाए तथा उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय या शोषण न हो। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न उपाय किए गए हैं, जैसे शिक्षा में आरक्षण, समान अवसर, स्वास्थ्य सुविधाएँ और सामाजिक कल्याण कार्यक्रम।

सरकार की ओर से विभिन्न योजनाएँ और कार्यक्रम भी लागू किए गए हैं, ताकि समाज के कमजोर वर्गों को उन्नति के समान अवसर प्रदान किए जा सकें और उन्हें राष्ट्रीय विकास में सहभागी बनाया जा सके।

आर्थिक न्याय: आर्थिक न्याय का उद्देश्य धन और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण को सुनिश्चित करना है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मेहनत के अनुसार उचित रोजगार, पारिश्रमिक और बेहतर जीवन-स्तर प्राप्त हो सके। इस सिद्धांत के अंतर्गत सरकार का दायित्व होता है कि वह गरीबी, बेरोज़गारी और आर्थिक असमानता को कम करने के लिए प्रभावी कदम उठाए।

भारतीय संविधान में आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिए विभिन्न राज्य नीतियों और विकास योजनाओं का मार्गदर्शन प्रदान किया गया है। इनमें गरीबों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ, निःशुल्क या सस्ती शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, श्रमिकों के अधिकार तथा मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सम्मिलित है।

आर्थिक न्याय का मूल उद्देश्य यह है कि देश के सभी नागरिकों को विकास के समान अवसर प्राप्त हों और संपत्ति केवल कुछ व्यक्तियों तक सीमित न रहे, बल्कि समाज के सभी वर्ग उससे लाभान्वित हो सकें।

राजनीतिक न्याय: राजनीतिक न्याय का अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के समान अधिकार प्राप्त हों। इसमें मतदान करने, चुनावों में भाग लेने, राजनीतिक दल बनाने, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा शासन के निर्णयों में अपनी आवाज़ शामिल करने का अधिकार सम्मिलित है।

भारत के संविधान के अंतर्गत सभी वयस्क नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के मताधिकार प्राप्त है। राजनीतिक न्याय यह सुनिश्चित करता है कि चुनाव स्वतंत्र, पारदर्शी और निष्पक्ष हों तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रतिनिधियों का चयन करने का समान अधिकार प्राप्त हो।

राजनीतिक न्याय का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी रहे और नागरिकों को अपने विचार, आपत्तियाँ और माँगें प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो।

अंत में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय एक सुदृढ़ और न्यायपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला हैं। भारतीय संविधान इन तीनों सिद्धांतों के माध्यम से ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है, जहाँ सभी नागरिकों को समान अधिकार, स्वतंत्रता और उन्नति के अवसर प्राप्त हों। ये सिद्धांत न केवल जनता के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं, बल्कि देश में एकता, स्थिरता और सामाजिक समरसता को भी बढ़ावा देते हैं।

अध्याय 2 : संविधान के महत्वपूर्ण भाग

2.1 प्रस्तावना (उद्देशिका)

- प्रस्तावना का अर्थ और महत्व
- प्रस्तावना में वर्णित मूल्य : न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व

2.2 मौलिक अधिकार

- मौलिक अधिकारों का परिचय
- प्रमुख अधिकार :

- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)
- सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

2.3 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत

- नीति-निर्देशक सिद्धांतों का परिचय
- प्रमुख निर्देश :

- सामाजिक और आर्थिक न्याय

- जनकल्याण

- पर्यावरण का संरक्षण

- अंतरराष्ट्रीय शांति

2.4 मौलिक कर्तव्य

- नागरिकों के कर्तव्यों का परिचय
- प्रमुख कर्तव्य :

- संविधान का पालन करना

- राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करना

- पर्यावरण का संरक्षण करना

अध्याय 2 : संविधान के महत्वपूर्ण भाग

2.1 प्रस्तावना (उद्देशिका)

▪ प्रस्तावना का अर्थ और महत्व

प्रस्तावना भारत के संविधान की उद्देशिका अथवा प्रारंभिक वक्तव्य है, जिसमें संविधान की आधारशिला और उसके उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। यह संविधान के उद्देश्य और सिद्धांतों का संक्षिप्त तथा व्यापक विवरण प्रस्तुत करती है। प्रस्तावना में उन मूल्यों का उल्लेख किया गया है जो संविधान की आत्मा हैं और जो भारत के लोगों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

प्रस्तावना में भारत के लोगों का यह संकल्प और अभिप्राय व्यक्त किया गया है कि वे अपने संविधान को एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित करेंगे, जहाँ सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व प्राप्त होगा। यह उद्देशिका न केवल संविधान की आधारभूमि प्रदान करती है, बल्कि यह संविधान की आत्मा का भी वर्णन करती है, जो लोकतंत्र, अधिकारों और न्याय पर केंद्रित है।

संविधान के अन्य भागों के विवरण में जाने से पहले, प्रस्तावना यह बताती है कि भारत का संविधान जनता की इच्छा और उनके मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए निर्मित किया गया है। इसमें भारत के लोगों की आकांक्षाओं तथा उनके मानवाधिकारों की रक्षा करने के दृढ़ संकल्प का भी उल्लेख किया गया है।

प्रस्तावना का महत्व इस बात में निहित है कि यह संविधान की व्याख्या में मार्गदर्शन प्रदान करती है। न्यायपालिका और अन्य संस्थाएँ जब संविधान के प्रावधानों पर विचार करती हैं, तब वे इस उद्देशिका को ध्यान में रखती हैं, ताकि संविधान के उद्देश्यों को समझा जा सके। प्रस्तावना केवल एक प्रारंभिक वक्तव्य ही नहीं है, बल्कि एक मार्गदर्शक सिद्धांत भी है, जो संविधान की व्याख्या और उसके क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके माध्यम से संविधान में निहित विभिन्न प्रावधानों की वास्तविकता और उद्देश्य को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है, और यह भी स्पष्ट होता है कि भारत का संविधान एक जीवंत दस्तावेज है, जिसका निर्माण जनता के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिए किया गया है।

समग्र रूप से, प्रस्तावना भारत के संविधान का केवल परिचयात्मक भाग ही नहीं है, बल्कि यह संविधान के मूल्यों, सिद्धांतों और उद्देश्यों की व्याख्या करती है, जो संपूर्ण संविधान की आधारशिला हैं।

▪ प्रस्तावना में वर्णित मूल्य : न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व

प्रस्तावना में भारत के संविधान के महत्वपूर्ण मूल्यों का उल्लेख किया गया है : न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। ये सभी मूल्य संविधान के मूल सिद्धांतों की आधारशिला हैं और भारत के लोकतंत्र, राजनीति तथा सामाजिक जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं। इन मूल्यों का उद्देश्य भारत के लोगों के अधिकारों की रक्षा करना और ऐसे समाज की स्थापना करना है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और अवसर प्राप्त हों।

न्याय : न्याय का अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान किया जाए। संविधान यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि समाज में किसी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो और सभी लोगों को उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों। सामाजिक न्याय जाति-प्रथा और अन्य भेदभावों के उन्मूलन पर बल देता है, आर्थिक न्याय संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण का समर्थन करता है, जबकि राजनीतिक न्याय प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक प्रक्रिया में समान भागीदारी का अधिकार प्रदान करता है।

स्वतंत्रता : स्वतंत्रता का महत्व भारत के स्वतंत्रता संग्राम में विशेष रूप से दिखाई देता है और यही कारण है कि प्रस्तावना में स्वतंत्रता को एक मूल मूल्य के रूप में सम्मिलित किया गया है। स्वतंत्रता का अर्थ केवल सरकारी प्रतिबंधों से मुक्ति नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं में स्वायत्तता प्राप्त होना भी है। संविधान के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों, विश्वासों और जीवन के संबंध में स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने का अधिकार दिया गया है, बशर्ते कि वह दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन न करे।

समानता : समानता का सिद्धांत भारत के संविधान में एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में स्थापित है। यह अवधारणा ऐसे समाज की स्थापना का प्रयास करती है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार प्राप्त हों, चाहे वह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक या भाषाई पृष्ठभूमि से संबंध रखता हो। समानता का उद्देश्य प्रत्येक नागरिक को समान व्यवहार, अवसर और न्याय प्रदान करना है। संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 तक यह सुनिश्चित किया गया है कि राज्य किसी भी व्यक्ति या समूह के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा।

बंधुत्व : बंधुत्व का सिद्धांत भारत के संविधान में मानवता के उच्च मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है। यह अवधारणा पूरे देश में एकता, सद्भाव और पारस्परिक सम्मान को बढ़ावा देती है। विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं और राष्ट्रीयताओं के बीच सम्मान और सहयोग का वातावरण स्थापित करना इस सिद्धांत का उद्देश्य है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में बंधुत्व यह सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिक अपने मतभेदों के बावजूद शांति और सौहार्द के साथ जीवन व्यतीत कर सकें।

समग्र रूप से, ये सभी मूल्य – न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व – भारत के संविधान की आत्मा हैं और इन्हीं के आधार पर देश की संवैधानिक व्यवस्था स्थापित है। इन मूल्यों का उद्देश्य ऐसे समाज का निर्माण करना है जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित हो। संविधान-निर्माताओं ने इन सिद्धांतों को प्रस्तावना में सम्मिलित करके यह स्पष्ट संदेश दिया कि भारत का संविधान केवल एक विधिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि जनता के कल्याण, अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा का आधार भी है।

2.2 मौलिक अधिकार

▪ मौलिक अधिकारों का परिचय

भारत के संविधान में मौलिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा, समानता और मानवीय सम्मान की रक्षा के लिए प्रदान किए गए हैं। ये अधिकार नागरिकों और व्यक्तियों को राज्य के शोषण, अन्याय और अलोकतांत्रिक कार्यों के विरुद्ध विधिक संरक्षण प्रदान करते हैं। भारतीय संविधान के भाग III (Part III) में अनुच्छेद 12 से 35 तक मौलिक अधिकारों से संबंधित प्रावधानों का उल्लेख किया गया है, जिनका उद्देश्य ऐसे लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता और समानता के साथ जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्राप्त हो।

मौलिक अधिकारों का महत्व इस बात में निहित है कि वे व्यक्ति और राज्य के बीच एक संवैधानिक संतुलन स्थापित करते हैं। संविधान यह सुनिश्चित करता है कि सरकार अथवा कोई भी राज्य संस्था नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न करे। यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकार प्रभावित होते हैं, तो वह न्यायालय की शरण ले सकता है, और न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह इन अधिकारों की रक्षा के लिए उचित आदेश जारी करे।

मौलिक अधिकारों में समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार सम्मिलित हैं। ये अधिकार न केवल नागरिकों की मूल स्वतंत्रताओं की रक्षा करते हैं, बल्कि मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों को भी सुदृढ़ बनाते हैं।

समग्र रूप से, भारत के संविधान में सम्मिलित मौलिक अधिकार एक सुदृढ़ विधिक और संवैधानिक ढाँचे का हिस्सा हैं। यदि राज्य अथवा कोई संस्था इन अधिकारों का उल्लंघन करती है, तो उस कार्यवाही को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। न्यायालय संविधान के आलोक में इन अधिकारों की व्याख्या करते हैं और उनके संरक्षण को सुनिश्चित करते हैं, जिससे लोकतांत्रिक व्यवस्था और विधि के शासन को मजबूती प्राप्त होती है।

(टिप्पणी : यद्यपि मौलिक अधिकार नागरिकों और व्यक्तियों को महत्वपूर्ण स्वतंत्रता और संरक्षण प्रदान करते हैं, तथापि ये अधिकार पूर्णतः असीमित नहीं हैं। भारतीय संविधान राज्य को कुछ परिस्थितियों में जनहित, राष्ट्रीय सुरक्षा, लोक व्यवस्था, नैतिकता तथा देश की अखंडता की रक्षा के लिए इन अधिकारों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाने की अनुमति देता है। तथापि, ऐसे प्रतिबंधों की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है, ताकि नागरिकों के अधिकारों का अनुचित शोषण न हो।)

▪ प्रमुख अधिकार :

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)

अनुच्छेद 14 से 18 तक भारत के संविधान में समानता के अधिकार (Right to Equality) की व्याख्या की गई है, जिनका उद्देश्य प्रत्येक नागरिक के साथ समान व्यवहार सुनिश्चित करना तथा किसी भी प्रकार के भेदभाव को रोकना है। ये प्रावधान इस बात पर बल देते हैं कि सभी व्यक्ति कानून की दृष्टि में समान हैं और राज्य किसी भी व्यक्ति के साथ अन्यायपूर्ण भेदभाव नहीं करेगा। समानता का अधिकार भारतीय लोकतंत्र की एक मूल विशेषता है, जो सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के सिद्धांतों को सुदृढ़ करता है।

अनुच्छेद 14 सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समानता (Equality before Law) तथा विधियों के समान संरक्षण (Equal Protection of Laws) का अधिकार प्रदान करता है। इसके अनुसार, राज्य किसी भी व्यक्ति के साथ बिना उचित कारण के भेदभाव नहीं करेगा और प्रत्येक व्यक्ति को कानून के अंतर्गत समान व्यवहार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 15 धर्म, जाति, वंश, लिंग अथवा जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध करता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य किसी नागरिक के साथ इन आधारों पर भेदभाव नहीं कर सकता। तथापि, संविधान राज्य को यह अधिकार देता है कि वह महिलाओं, बच्चों, दलितों, जनजातीय वर्गों तथा सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के संरक्षण और उन्नति के लिए विशेष उपाय कर सके।

अनुच्छेद 16 सरकारी सेवाओं में समान अवसरों की गारंटी देता है। इसके अनुसार, प्रत्येक नागरिक को राज्य की सेवाओं में नियुक्ति प्राप्त करने का समान अधिकार है और किसी व्यक्ति को धर्म, जाति, लिंग, वंश, जन्मस्थान अथवा अन्य अन्यायपूर्ण आधारों पर रोजगार से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 17 में "अस्पृश्यता" (Untouchability) के उन्मूलन की घोषणा की गई है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत अस्पृश्यता के प्रत्येक रूप को अवैध घोषित किया गया है और उसका पालन करना दंडनीय अपराध है। इसका उद्देश्य दलितों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को सामाजिक समानता प्रदान करना और जाति-आधारित भेदभाव का अंत करना है।

अनुच्छेद 18 राज्य द्वारा उपाधियाँ (Titles) प्रदान करने पर प्रतिबंध लगाता है, ताकि समाज में समानता के सिद्धांत को बनाए रखा जा सके। इसके अंतर्गत सरकार किसी नागरिक को ऐसी मानद उपाधि नहीं दे सकती, जो सामाजिक अथवा विधिक श्रेष्ठता का संकेत देती हो। तथापि, शैक्षिक उपाधियाँ और सैन्य सम्मान इस प्रतिबंध के अंतर्गत शामिल नहीं हैं। इस अनुच्छेद का उद्देश्य सामाजिक समानता को बढ़ावा देना और वर्गगत भेदभाव को कम करना है।

समग्र रूप से, अनुच्छेद 14 से 18 तक के प्रावधान भारत के संविधान में समानता के अधिकार की आधारशिला प्रदान करते हैं। ये प्रावधान यह सुनिश्चित करते हैं कि प्रत्येक नागरिक को कानून और न्यायपालिका के समक्ष समान स्थिति प्राप्त हो तथा राज्य किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार न करे। ये सिद्धांत एक न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक और समानतापूर्ण समाज की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(टिप्पणी : समानता के अधिकार का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ हर परिस्थिति में बिल्कुल एक जैसा व्यवहार किया जाए, बल्कि संविधान व्यावहारिक और सामाजिक समानता को भी महत्व देता है। इसी कारण संविधान राज्य को यह अधिकार देता है कि वह ऐतिहासिक रूप से वंचित और पिछड़े वर्गों, जैसे दलितों, जनजातीय वर्गों तथा अन्य सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े समूहों के लिए आरक्षण और विशेष सुविधाओं की व्यवस्था कर सके, ताकि उन्हें उन्नति और प्रतिनिधित्व के समान अवसर प्राप्त हो सकें।)

स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

अनुच्छेद 19 से 22 तक भारत के संविधान में स्वतंत्रता के अधिकार (Right to Freedom) की व्याख्या की गई है, जो नागरिकों और व्यक्तियों को विभिन्न मूल स्वतंत्रताओं तथा विधिक संरक्षणों की गारंटी प्रदान करता है। इन प्रावधानों का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मानवीय गरिमा तथा विधिक संरक्षण को सुनिश्चित करना है, ताकि वह एक स्वतंत्र और सुरक्षित वातावरण में जीवन व्यतीत कर सके। तथापि, इन स्वतंत्रताओं के प्रयोग पर कुछ युक्तियुक्त सीमाएँ भी निर्धारित की गई हैं, जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा, लोक व्यवस्था, नैतिकता तथा जनहित की रक्षा सुनिश्चित की जा सके।

अनुच्छेद 19 भारतीय नागरिकों को छह मूल स्वतंत्रताओं का अधिकार प्रदान करता है। इनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक सभा करने की स्वतंत्रता, संघ या संगठन बनाने की स्वतंत्रता, देश के किसी भी भाग में स्वतंत्र रूप से आवागमन करने की स्वतंत्रता, निवास और बसने की स्वतंत्रता तथा किसी भी व्यवसाय, व्यापार या पेशे को अपनाने की स्वतंत्रता शामिल है। इन स्वतंत्रताओं का उद्देश्य नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर प्रदान करना है, ताकि वे अपने अधिकारों और हितों की रक्षा कर सकें। तथापि, ये स्वतंत्रताएँ निरपेक्ष नहीं हैं और राज्य राष्ट्रीय सुरक्षा, लोक व्यवस्था, नैतिकता अथवा देश की अखंडता की रक्षा के लिए इन पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है।

अनुच्छेद 20 आपराधिक मामलों में व्यक्तियों को महत्वपूर्ण विधिक संरक्षण प्रदान करता है। इसके अंतर्गत किसी व्यक्ति को ऐसे कार्य के लिए दंडित नहीं किया जा सकता, जो उसके किए जाने के समय कानून के अधीन अपराध न हो। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए दोबारा दंडित नहीं किया जा सकता और किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इस अनुच्छेद का उद्देश्य न्यायिक न्याय, निष्पक्ष विधिक प्रक्रिया तथा व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करना है।

अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। इसके अनुसार, किसी भी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त वंचित नहीं किया जा सकता। भारतीय न्यायालयों ने समय के साथ इस अनुच्छेद की व्याख्या का विस्तार किया है, जिसके परिणामस्वरूप गरिमापूर्ण जीवन, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ पर्यावरण, आवास तथा मानवीय गरिमा के साथ जीवन व्यतीत करने जैसे अधिकारों को भी इसके अंतर्गत सम्मिलित माना गया है।

अनुच्छेद 22 व्यक्तियों को अवैध गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण प्रदान करता है। इसके अंतर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराना, उसे अधिवक्ता से परामर्श करने का अधिकार देना तथा 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है। यह अनुच्छेद राज्य की शक्ति के संभावित दुरुपयोग के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता है। तथापि, कुछ परिस्थितियों में निवारक निरोध (Preventive Detention) के अंतर्गत निर्धारित विधिक प्रक्रिया के अनुसार किसी व्यक्ति को सीमित अवधि के लिए निरुद्ध रखा जा सकता है।

समग्र रूप से, अनुच्छेद 19 से 22 तक के प्रावधान भारतीय संविधान में व्यक्ति की स्वतंत्रता, विधिक संरक्षण तथा व्यक्तिगत सुरक्षा की आधारशिला प्रदान करते हैं। इनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रताओं का लाभ उठा सके, जबकि समाज में व्यवस्था, न्याय तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान भी बना रहे।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

अनुच्छेद 23 और 24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation) की गारंटी दी गई है, जो भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों का एक महत्वपूर्ण भाग है। इन प्रावधानों का उद्देश्य व्यक्तियों को मानव शोषण, बंधुआ या जबरन श्रम तथा बच्चों से खतरनाक कार्य कराने जैसे अमानवीय कृत्यों से संरक्षण

प्रदान करना है। ये अधिकार मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को सुदृढ़ करते हैं, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार प्राप्त हो।

अनुच्छेद 23 मानव तस्करी (Human Trafficking), जबरन श्रम (Forced Labour) तथा बेगार (Begar) पर प्रतिबंध लगाता है। इसके अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को बलपूर्वक श्रम करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, चाहे यह दबाव शारीरिक बल, धमकी अथवा आर्थिक दबाव के माध्यम से ही क्यों न डाला गया हो। यह अनुच्छेद सभी व्यक्तियों पर लागू होता है, केवल नागरिकों पर नहीं। संविधान राज्य को यह अधिकार देता है कि वह ऐसे शोषणकारी कृत्यों के विरुद्ध कानून बनाए तथा उनकी रोकथाम के लिए प्रभावी उपाय अपनाए। तथापि, लोक सेवाओं के लिए राज्य कुछ परिस्थितियों में अनिवार्य सेवाएँ लागू कर सकता है, बशर्ते कि उसमें धर्म, जाति, वर्ग अथवा अन्य किसी आधार पर भेदभाव न किया जाए।

अनुच्छेद 24 बच्चों के शोषण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। इसके अनुसार, 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को कारखानों, खानों अथवा अन्य खतरनाक उद्योगों और कार्यों में नियोजित नहीं किया जा सकता। इस अनुच्छेद का उद्देश्य बच्चों को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक शोषण से सुरक्षित रखना तथा उन्हें स्वस्थ वातावरण, शिक्षा और उचित विकास के अवसर प्रदान करना है। यह प्रावधान बच्चों के कल्याण और उनके मौलिक मानवाधिकारों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

समग्र रूप से, अनुच्छेद 23 और 24 भारतीय संविधान में शोषण के विरुद्ध संरक्षण के मूल प्रावधान हैं। ये प्रावधान मानवीय गरिमा, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को जबरन श्रम, मानव तस्करी अथवा अमानवीय परिस्थितियों का शिकार न बनाया जाए। इसी प्रकार, ये प्रावधान बच्चों को खतरनाक और शोषणकारी श्रम से सुरक्षित रखकर एक न्यायपूर्ण और मानवीय समाज की स्थापना को बढ़ावा देते हैं।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

अनुच्छेद 25 से 28 तक भारत के संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार (Right to Freedom of Religion) की व्याख्या की गई है। इन प्रावधानों का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने, उसका प्रचार करने तथा अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता प्रदान करना है। भारत एक बहुधार्मिक देश है, इसलिए संविधान धार्मिक विविधता, सहिष्णुता और विभिन्न आस्थाओं के सम्मान को सुनिश्चित करता है। ये प्रावधान इस बात की गारंटी देते हैं कि राज्य किसी विशेष धर्म को प्राथमिकता नहीं देगा और सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा।

अनुच्छेद 25 प्रत्येक व्यक्ति को अंतरात्मा की स्वतंत्रता (Freedom of Conscience) तथा अपने धर्म को मानने, उसका पालन करने और उसका प्रचार करने का अधिकार प्रदान करता है। इसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार पूजा-अर्चना और धार्मिक अनुष्ठानों का पालन कर सकता है। तथापि, यह स्वतंत्रता पूर्णतः असीमित नहीं है, बल्कि लोक व्यवस्था, स्वास्थ्य, नैतिकता तथा अन्य मौलिक अधिकारों की रक्षा के अधीन इस पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

अनुच्छेद 26 प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय अथवा धार्मिक संस्था को अपने धार्मिक मामलों का स्वयं प्रबंधन करने का अधिकार देता है। इसके अंतर्गत धार्मिक समूह अपने पूजा-स्थल स्थापित कर सकते हैं, धार्मिक और परोपकारी संस्थाएँ संचालित कर सकते हैं तथा अपने धार्मिक मामलों का संचालन अपने सिद्धांतों के अनुसार कर सकते हैं, बशर्ते कि उनकी गतिविधियाँ लोक व्यवस्था, नैतिकता और कानून के विरुद्ध न हों।

अनुच्छेद 27 इस बात की गारंटी देता है कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा, जिनका उपयोग किसी विशेष धर्म के प्रचार अथवा उसकी धार्मिक गतिविधियों के लिए किया जाए। इस प्रावधान का उद्देश्य राज्य को धार्मिक मामलों में तटस्थ बनाए रखना और सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार सुनिश्चित करना है।

अनुच्छेद 28 शैक्षिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा से संबंधित प्रावधान प्रदान करता है। इसके अनुसार, ऐसे शैक्षिक संस्थानों में, जो पूर्णतः सरकारी निधि से संचालित होते हैं, धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। तथापि, ऐसे संस्थान जो किसी धार्मिक न्यास या वक्फ के अंतर्गत स्थापित किए गए हों, वहाँ धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। इसी प्रकार, किसी विद्यार्थी को उसकी इच्छा अथवा उसके अभिभावक की अनुमति के बिना धार्मिक शिक्षा या उपासना में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

समग्र रूप से, अनुच्छेद 25 से 28 तक के प्रावधान भारत में धार्मिक स्वतंत्रता, सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के सिद्धांतों को सुदृढ़ करते हैं। ये प्रावधान प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने और अपने विश्वासों के अनुसार जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्रदान करते हैं, साथ ही विभिन्न धार्मिक समूहों के बीच शांति, सम्मान और सद्भाव बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

अनुच्छेद 29 और 30 भारत के संविधान में सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों (Cultural and Educational Rights) की गारंटी प्रदान करते हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य देश की भाषाई, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता

की रक्षा करना तथा अल्पसंख्यक समूहों को अपनी पहचान बनाए रखने के लिए संवैधानिक संरक्षण प्रदान करना है। ये अधिकार इस बात को सुनिश्चित करते हैं कि विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों से संबंधित व्यक्ति अपनी परंपराओं और शैक्षिक संस्थाओं को सुरक्षित रखते हुए प्रगति कर सकें।

अनुच्छेद 29 नागरिकों के किसी भी ऐसे वर्ग को संरक्षण प्रदान करता है, जिसकी अपनी पृथक भाषा, लिपि अथवा संस्कृति हो। इसके अनुसार, ऐसे समूहों को अपनी भाषा, संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने तथा उसका संवर्धन करने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रावधान का उद्देश्य भारत की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता का संरक्षण करना तथा किसी भी समूह की पहचान को समाप्त होने से बचाना है। अनुच्छेद 29 यह भी सुनिश्चित करता है कि राज्य द्वारा संचालित अथवा राज्य की सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के मामले में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, वंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसका उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में समानता और न्याय को बढ़ावा देना है।

अनुच्छेद 30 धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को यह अधिकार प्रदान करता है कि वे अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थानों की स्थापना करें और उनका प्रबंधन स्वयं संचालित करें। इस प्रावधान का उद्देश्य अल्पसंख्यक समूहों को अपनी भाषा, संस्कृति और शैक्षिक मूल्यों के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए स्वायत्तता प्रदान करना है, ताकि वे अपनी पहचान को बनाए रखते हुए शैक्षिक उन्नति प्राप्त कर सकें। अनुच्छेद 30 यह भी स्पष्ट करता है कि राज्य अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों के साथ वित्तीय सहायता अथवा अन्य सुविधाओं की उपलब्धता में भेदभाव नहीं करेगा। यदि सरकार अन्य शैक्षिक संस्थानों को सहायता प्रदान करती है, तो अल्पसंख्यक संस्थानों को भी समान आधार पर सहायता प्राप्त करने का अधिकार होगा। तथापि, राज्य को यह अधिकार प्राप्त है कि वह शिक्षा के मानकों, प्रशासनिक व्यवस्था तथा जनहित के लिए उचित नियम और विनियम लागू करे।

समग्र रूप से, अनुच्छेद 29 और 30 भारत के संविधान में सांस्कृतिक, भाषाई और शैक्षिक अधिकारों के संरक्षण से संबंधित महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। ये अधिकार अल्पसंख्यक समूहों को अपनी पहचान, भाषा और संस्कृति को बनाए रखने के साथ-साथ शैक्षिक उन्नति के समान अवसर प्रदान करते हैं और भारत की बहुसांस्कृतिक तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाते हैं।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

अनुच्छेद 32 भारत के संविधान में एक अत्यंत महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार का वर्णन करता है, जिसे “संवैधानिक उपचारों का अधिकार” (Right to Constitutional Remedies) कहा जाता है। यह अधिकार नागरिकों को इस बात की गारंटी देता है कि यदि उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो, तो वे सीधे सर्वोच्च

न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं। इस अनुच्छेद का मूल उद्देश्य मौलिक अधिकारों के संरक्षण को प्रभावी बनाना तथा नागरिकों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करना है।

अनुच्छेद 32 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में उपयुक्त आदेश, निर्देश अथवा रिट (Writs) जारी करे, ताकि प्रभावित व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की जा सके। ये रिट नागरिकों को अवैध कार्यों, राज्य की ज्यादतियों तथा शक्तियों के दुरुपयोग से बचाने का एक प्रभावी संवैधानिक साधन मानी जाती हैं।

भारतीय संविधान के अंतर्गत पाँच प्रमुख रिट निम्नलिखित हैं :

1. **हेबियस कॉर्पस (Habeas Corpus):** इस रिट का अर्थ है, "शरीर को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करो।" यह उस समय जारी की जाती है जब किसी व्यक्ति को अवैध रूप से गिरफ्तार या निरुद्ध किया गया हो। न्यायालय संबंधित अधिकारियों को आदेश देता है कि गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए तथा निरोध की वैधानिकता स्पष्ट की जाए। यदि गिरफ्तारी अवैध सिद्ध हो जाए, तो न्यायालय उस व्यक्ति की रिहाई का आदेश दे सकता है।
2. **मैंडेमस (Mandamus):** इस रिट के माध्यम से न्यायालय किसी सरकारी अधिकारी, संस्था अथवा लोक प्राधिकरण को अपने वैधानिक कर्तव्यों का पालन करने का आदेश देता है। यदि कोई संस्था अपनी संवैधानिक अथवा कानूनी जिम्मेदारी पूरी नहीं करती, तो न्यायालय मैंडेमस जारी कर सकता है।
3. **प्रोहिबिशन (Prohibition):** यह रिट उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी अधीनस्थ न्यायालय या अधिकरण को उस समय जारी की जाती है, जब वह अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य कर रहा हो या ऐसे मामले की सुनवाई कर रहा हो, जो उसके अधिकार-क्षेत्र में न आता हो। इसका उद्देश्य अवैध न्यायिक कार्यवाही को रोकना है।
4. **सर्टियोरारी (Certiorari):** इस रिट के माध्यम से उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय किसी अधीनस्थ न्यायालय या अधिकरण के निर्णय अथवा कार्यवाही को निरस्त कर सकता है, यदि वह अवैध हो, अधिकार-क्षेत्र के अतिक्रमण पर आधारित हो या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध हो। यह रिट गलत न्यायिक निर्णयों को सुधारने के लिए प्रयोग की जाती है।
5. **क्वो वारंटो (Quo Warranto):** इस रिट का अर्थ है, "किस अधिकार से?" इसके माध्यम से न्यायालय किसी व्यक्ति से यह पूछ सकता है कि वह किस वैधानिक अधिकार के आधार पर किसी सार्वजनिक पद पर आसीन है। यदि वह व्यक्ति उस पद के लिए कानूनी रूप से पात्र न हो, तो न्यायालय उसे उस पद से हटाने का आदेश दे सकता है।

अनुच्छेद 32 यह सुनिश्चित करता है कि यदि सरकार, कोई सरकारी संस्था अथवा कोई अधिकार-संपन्न निकाय मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करे, तो नागरिक तुरंत न्यायपालिका से न्याय प्राप्त कर सकें। यह अधिकार मौलिक अधिकारों के व्यावहारिक प्रवर्तन का आधार माना जाता है, क्योंकि केवल अधिकारों का उल्लेख पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उनके संरक्षण के लिए प्रभावी कानूनी उपायों का होना भी आवश्यक है।

यद्यपि मूलतः अनुच्छेद 32 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय का सहारा लिया जाता है, तथापि उच्च न्यायालयों को भी अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इसी प्रकार के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं, जिनके माध्यम से वे मौलिक अधिकारों सहित अन्य विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए भी रिट जारी कर सकते हैं।

अनुच्छेद 32 के महत्व को देखते हुए, ने इसे भारतीय संविधान का "हृदय और आत्मा" (Heart and Soul) कहा था, क्योंकि यह नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रत्यक्ष न्यायिक सहायता प्राप्त करने का प्रभावी माध्यम प्रदान करता है।

समग्र रूप से, अनुच्छेद 32 भारतीय लोकतंत्र और विधि के शासन की एक मूलभूत गारंटी है। यह न केवल नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों के संरक्षण का कानूनी मार्ग प्रदान करता है, बल्कि राज्य की शक्तियों को संवैधानिक सीमाओं के भीतर रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2.3 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत

▪ नीति-निर्देशक सिद्धांतों का परिचय

भारत के संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) एक अत्यंत महत्वपूर्ण संवैधानिक भाग हैं, जो सरकार को जनकल्याण, सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता की प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। ये सिद्धांत संविधान के भाग IV (Part IV) में अनुच्छेद 36 से 51 तक समाविष्ट हैं। इनका मूल उद्देश्य ऐसे कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना का मार्गदर्शन करना है, जहाँ सभी नागरिकों को सम्मानजनक जीवन, समान अवसर तथा सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त हो।

राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत सरकार की सामूहिक जिम्मेदारियों को स्पष्ट करते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि राज्य अपनी नीतियों और कानूनों का निर्माण जनता के कल्याण के अनुरूप करे। इन सिद्धांतों के अंतर्गत सरकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक अन्याय और आर्थिक असमानता को कम करने के लिए प्रभावी उपाय करे, ताकि एक न्यायपूर्ण और संतुलित समाज की स्थापना की जा सके।

यद्यपि इन सिद्धांतों को न्यायालयों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं कराया जा सकता, अर्थात् ये विधिक रूप से न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (Non-Justiciable) नहीं हैं, तथापि इसके बावजूद ये सरकार के लिए मूल मार्गदर्शक सिद्धांतों का स्थान रखते हैं। विधि-निर्माण, सरकारी नीतियाँ तथा राज्य की योजनाएँ सामान्यतः इन्हीं सिद्धांतों के आलोक में बनाई जाती हैं।

राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत मौलिक अधिकारों के साथ मिलकर भारतीय संविधान के सामाजिक दर्शन को पूर्णता प्रदान करते हैं। जहाँ मौलिक अधिकार व्यक्ति की स्वतंत्रता और विधिक संरक्षण को सुनिश्चित करते हैं, वहीं नीति-निर्देशक सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना पर बल देते हैं। इस प्रकार, ये दोनों मिलकर ऐसे लोकतांत्रिक और कल्याणकारी तंत्र की आधारशिला प्रदान करते हैं, जिसका उद्देश्य जनता की समग्र उन्नति और कल्याण है।

समग्र रूप से, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत भारतीय संविधान में एक न्यायपूर्ण, समानतापूर्ण और कल्याणकारी समाज की स्थापना की दिशा निर्धारित करते हैं। ये सिद्धांत सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करते हैं कि वह अपनी नीतियों और कार्यों के माध्यम से जनहित, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा दे।

- **प्रमुख निर्देश :**

सामाजिक और आर्थिक न्याय

भारत के संविधान में सामाजिक और आर्थिक न्याय (Social and Economic Justice) को राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) का एक मूल उद्देश्य माना गया है। इन सिद्धांतों का उद्देश्य सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करना है कि वह अपनी नीतियों और कार्यों के माध्यम से ऐसे समाज की स्थापना करे, जहाँ सभी नागरिकों को समान अवसर, मूलभूत सुविधाएँ तथा सम्मानजनक जीवन व्यतीत करने की संभावनाएँ प्राप्त हों।

सामाजिक और आर्थिक न्याय से संबंधित ये सिद्धांत इस बात पर बल देते हैं कि राज्य जनकल्याण को अपनी नीतियों का केंद्र बनाए और समाज में विद्यमान आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए प्रभावी उपाय करे। इनका उद्देश्य ऐसी कल्याणकारी व्यवस्था की स्थापना करना है, जहाँ धन और संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण हो, प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका का उपयुक्त साधन उपलब्ध हो तथा किसी भी वर्ग के साथ अन्याय या शोषण न हो।

सामाजिक न्याय के अंतर्गत महिलाओं, दलितों, जनजातीय वर्गों, अल्पसंख्यकों तथा अन्य सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों के अधिकारों और हितों के संरक्षण पर बल दिया गया है, ताकि उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा अन्य मूलभूत सुविधाओं तक समान पहुँच प्राप्त हो सके। इसी प्रकार, आर्थिक न्याय का उद्देश्य गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक शोषण को कम करना तथा श्रमिकों के लिए उचित वेतन, बेहतर जीवन-स्तर और मानवीय कार्य-परिस्थितियों को सुनिश्चित करना है।

ये सिद्धांत सरकार को इस बात का भी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं कि वह लोक सहायता, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा से संबंधित उपाय करे, ताकि समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को सम्मानजनक जीवन व्यतीत करने के अवसर प्राप्त हो सकें। इसके साथ ही पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अवसर तथा समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को भी महत्व दिया गया है।

सामाजिक और आर्थिक न्याय से संबंधित ये निर्देश इस बात को प्रतिबिंबित करते हैं कि भारतीय संविधान केवल राजनीतिक लोकतंत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना का भी आकांक्षी है। इसी कारण संविधान ऐसे कल्याणकारी समाज का समर्थन करता है, जहाँ जनकल्याण, सामाजिक समानता और आर्थिक न्याय को मूलभूत महत्व प्राप्त हो।

समग्र रूप से, सामाजिक और आर्थिक न्याय से संबंधित नीति-निर्देशक सिद्धांत भारतीय संविधान के कल्याणकारी और लोकतांत्रिक स्वरूप को सुदृढ़ बनाते हैं तथा सरकार को एक न्यायपूर्ण, समानतापूर्ण और जनोन्मुखी समाज की स्थापना की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

जनकल्याण

भारत के संविधान में जनकल्याण (Public Welfare) को राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) का एक मूल उद्देश्य माना गया है। इन सिद्धांतों का उद्देश्य सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करना है कि वह अपनी नीतियों और कार्यों को जनता के कल्याण, सामाजिक न्याय और बेहतर जीवन-स्तर की स्थापना के लिए केंद्रित रखे। संविधान ऐसे कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना पर बल देता है, जहाँ प्रत्येक नागरिक को सम्मानजनक जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक सुविधाएँ और अवसर प्राप्त हों।

राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में अनुच्छेद 38 विशेष रूप से राज्य को निर्देश देता है कि वह जनकल्याण को बढ़ावा दे और ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करे, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में विद्यमान हो। इसी प्रकार अनुच्छेद 39 राज्य को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करता है कि देश के संसाधनों और संपत्ति का वितरण इस प्रकार हो कि जनहित की रक्षा हो तथा आर्थिक शक्ति कुछ व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित न होने पाए।

जनकल्याण से संबंधित ये सिद्धांत सरकार को इस बात का निर्देश देते हैं कि वह ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था स्थापित करे, जिसमें जनता की आवश्यकताओं, कल्याण और विकास को प्राथमिकता प्राप्त हो। इन सिद्धांतों का उद्देश्य सामाजिक असमानताओं को कम करना, संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण को सुनिश्चित करना तथा सभी नागरिकों को बेहतर जीवन व्यतीत करने के समान अवसर प्रदान करना है।

जनकल्याण के अंतर्गत राज्य पर यह दायित्व आरोपित किया गया है कि वह जनता को स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, रोजगार तथा अन्य मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करने के लिए प्रभावी उपाय करे। अनुच्छेद 41 राज्य को कार्य, शिक्षा तथा कुछ परिस्थितियों में लोक सहायता की व्यवस्था करने के लिए प्रयास करने का निर्देश देता है, जबकि अनुच्छेद 45 बच्चों की प्रारंभिक देखभाल और शिक्षा के संवर्धन पर बल देता है।

इसी प्रकार, श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा, उचित वेतन, मानवीय कार्य-परिस्थितियों तथा कमजोर वर्गों की सहायता को भी महत्व दिया गया है, ताकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानजनक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हो सके। अनुच्छेद 43 श्रमिकों के लिए उचित वेतन और बेहतर जीवन-स्तर का समर्थन करता है।

ये सिद्धांत सरकार को इस बात का भी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं कि वह गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी तथा सामाजिक अन्याय के उन्मूलन के लिए कल्याणकारी योजनाएँ और लोक सहायता कार्यक्रम लागू करे। इसके साथ ही अनुच्छेद 47 जनता के पोषण स्तर, जीवन-स्तर और लोक स्वास्थ्य में सुधार पर बल देता है, ताकि एक स्वस्थ और समृद्ध समाज की स्थापना की जा सके।

जनकल्याण से संबंधित ये सिद्धांत इस बात को प्रतिबिंबित करते हैं कि भारतीय संविधान केवल राजनीतिक लोकतंत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना का भी आकांक्षी है, जहाँ जनता के कल्याण, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा को मूलभूत महत्व प्राप्त हो।

समग्र रूप से, जनकल्याण से संबंधित नीति-निर्देशक सिद्धांत भारतीय संविधान के कल्याणकारी और लोकतांत्रिक स्वरूप को सुदृढ़ बनाते हैं तथा सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करते हैं कि वह जनता के हित, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय विकास को अपनी नीतियों का मूल उद्देश्य बनाए। इन सिद्धांतों का अंतिम उद्देश्य ऐसे समाज की स्थापना करना है, जहाँ प्रत्येक नागरिक को उन्नति, संरक्षण और सम्मानजनक जीवन के समान अवसर प्राप्त हों।

पर्यावरण का संरक्षण

भारत के संविधान में पर्यावरण के संरक्षण (Protection of Environment) को एक महत्वपूर्ण संवैधानिक सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका उद्देश्य सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करना है कि वह प्राकृतिक संसाधनों, वनों, वन्यजीवों, वायु, जल और पर्यावरण को प्रदूषण तथा विनाश से सुरक्षित रखने के लिए प्रभावी उपाय करे। संविधान इस बात पर बल देता है कि विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखा जाए, ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ियों को एक स्वस्थ और सुरक्षित पर्यावरण उपलब्ध हो सके।

पर्यावरण के संरक्षण से संबंधित महत्वपूर्ण निर्देश अनुच्छेद 48A में दिया गया है, जिसे 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से संविधान में जोड़ा गया था। इस अनुच्छेद के अनुसार, राज्य का यह दायित्व है कि वह पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन के लिए उपाय करे तथा देश के वनों और वन्यजीवों की रक्षा सुनिश्चित करे।

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित ये सिद्धांत सरकार को इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि वह सतत (Sustainable) और पर्यावरण-अनुकूल नीतियाँ अपनाए, प्राकृतिक संसाधनों के अनावश्यक और अनुचित उपयोग को रोके तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए उपयुक्त कानून और उपाय लागू करे। इन सिद्धांतों का उद्देश्य भूमि, वायु, जल, वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना है, ताकि उनका उपयोग भविष्य में भी संभव हो सके।

इस संदर्भ में सरकार की जिम्मेदारियों में प्रदूषण पर नियंत्रण, वनों और वन्यजीवों का संरक्षण, वृक्षों की अनावश्यक कटाई की रोकथाम तथा प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करना शामिल है। इसी प्रकार, जनता में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना और नागरिकों को पर्यावरण-अनुकूल जीवन-शैली अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

भारतीय संविधान पर्यावरण संरक्षण को केवल सरकार की जिम्मेदारी ही नहीं, बल्कि नागरिकों का एक मौलिक कर्तव्य भी मानता है। अनुच्छेद 51A(g) के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, झीलें, नदियाँ, वन्यजीव तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन शामिल हैं, की रक्षा करे तथा सभी जीवों के प्रति करुणा और दया का भाव रखे।

इसके अतिरिक्त, भारतीय न्यायालयों, विशेषकर ने अनुच्छेद 21 (जीवन के अधिकार) की व्याख्या करते हुए यह घोषित किया है कि स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण में जीवन व्यतीत करना भी जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य अंग है। इसी कारण पर्यावरण संरक्षण को मौलिक मानवाधिकारों से भी जोड़ा जाता है।

समग्र रूप से, पर्यावरण संरक्षण से संबंधित संवैधानिक सिद्धांत भारतीय संविधान के प्रगतिशील और कल्याणकारी स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हैं। ये सिद्धांत सरकार और नागरिकों, दोनों को इस बात की याद दिलाते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन की रक्षा तथा स्वच्छ और सुरक्षित पर्यावरण की उपलब्धता एक राष्ट्रीय दायित्व है। पर्यावरण के संरक्षण के माध्यम से न केवल वर्तमान पीढ़ी का कल्याण संभव है, बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए भी एक सुरक्षित और सतत भविष्य सुनिश्चित किया जा सकता है।

अंतरराष्ट्रीय शांति

भारत के संविधान में अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा (International Peace and Security) के संवर्धन को एक महत्वपूर्ण संवैधानिक सिद्धांत के रूप में सम्मिलित किया गया है। यह सिद्धांत राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) का एक भाग है और अनुच्छेद 51 में वर्णित है। इसका

उद्देश्य सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करना है कि वह वैश्विक स्तर पर शांति, सद्भाव, न्याय और मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना में सक्रिय भूमिका निभाए। संविधान इस बात पर बल देता है कि भारत वैश्विक समुदाय के साथ सहयोग, सम्मान और न्याय पर आधारित संबंध बनाए रखे तथा अंतरराष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए शांतिपूर्ण उपायों को अपनाए।

अंतरराष्ट्रीय शांति का मूल उद्देश्य यह है कि विश्व के विभिन्न देशों के बीच युद्ध, तनाव और संघर्ष के स्थान पर वार्ता, पारस्परिक सहयोग और राजनयिक संबंधों के माध्यम से समस्याओं का समाधान किया जाए। इसी कारण भारतीय संविधान वैश्विक स्तर पर शांति, मैत्री और पारस्परिक सम्मान के सिद्धांतों को बढ़ावा देने का समर्थन करता है, ताकि विश्व में स्थिरता और सद्भाव बनाए रखा जा सके।

अनुच्छेद 51 के अनुसार राज्य का यह दायित्व है कि वह–

- अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा दे;
- राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण और सम्मानजनक संबंध स्थापित करे;
- अंतरराष्ट्रीय विधि और संधियों के सम्मान को प्रोत्साहित करे; तथा
- अंतरराष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए मध्यस्थता (Arbitration) और अन्य शांतिपूर्ण उपायों को प्रोत्साहित करे।

यह संवैधानिक निर्देश सरकार को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह वैश्विक संस्थाओं, विशेष रूप से (United Nations), के साथ सहयोग करे और विश्व शांति, मानवाधिकारों, स्वतंत्रता तथा न्याय के सिद्धांतों का समर्थन करे। इसी प्रकार, अंतरराष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए शांतिपूर्ण वार्ता, मध्यस्थता और राजनयिक उपायों को प्राथमिकता देने पर भी बल दिया गया है।

अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा से संबंधित ये सिद्धांत भारत की विदेश नीति में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, जहाँ पड़ोसी देशों और अन्य वैश्विक शक्तियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, राजनयिक सहयोग तथा वैश्विक साझेदारी को महत्व दिया जाता है।

यद्यपि इन सिद्धांतों को न्यायालयों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं कराया जा सकता, तथापि ये सरकार की विदेश नीति और विधि-निर्माण के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांतों का स्थान रखते हैं। इनके माध्यम से संविधान ऐसी विश्व व्यवस्था का समर्थन करता है, जो शांति, न्याय और अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर आधारित हो।

समग्र रूप से, अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा से संबंधित संवैधानिक निर्देश भारतीय संविधान के शांतिप्रिय और प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। ये सिद्धांत सरकार को इस बात का मार्गदर्शन प्रदान करते हैं कि वह न केवल आंतरिक स्तर पर न्याय, स्थिरता और विकास को बढ़ावा दे, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी शांति, मैत्री और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की स्थापना में सकारात्मक भूमिका निभाए। इस प्रकार, अनुच्छेद 51 भारत की उस प्रतिबद्धता को व्यक्त करता है कि वह विश्व शांति और अंतरराष्ट्रीय सद्भाव के संवर्धन में सक्रिय भूमिका निभाएगा।

2.4 मौलिक कर्तव्य

▪ मौलिक कर्तव्यों का परिचय

भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों (Fundamental Duties) का उद्देश्य नागरिकों को उनकी संवैधानिक, नैतिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करना है, ताकि वे अपने अधिकारों के साथ-साथ देश और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को भी समझें और उनका पालन करें। मौलिक कर्तव्य संविधान के भाग IV-क (Part IV-A) में सम्मिलित हैं और उनका उल्लेख अनुच्छेद 51A में किया गया है। ये कर्तव्य वर्ष 1976 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से संविधान में जोड़े गए थे, जबकि बाद में वर्ष 2002 के 86वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा एक अतिरिक्त कर्तव्य भी सम्मिलित किया गया।

मौलिक कर्तव्य नागरिकों को इस बात की याद दिलाते हैं कि अधिकारों के साथ जिम्मेदारियाँ भी जुड़ी होती हैं। इनका उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति, सामाजिक सद्भाव, संवैधानिक मूल्यों के सम्मान तथा एक संगठित और कल्याणकारी समाज की स्थापना को बढ़ावा देना है। ये कर्तव्य संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में निहित मूल्यों, जैसे स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय, के अनुरूप हैं तथा नागरिकों को संवैधानिक सिद्धांतों के अनुसार उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं।

अनुच्छेद 51A के अंतर्गत नागरिकों के मौलिक कर्तव्य निम्नलिखित हैं :

प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह–

1. संविधान का पालन करे तथा उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज (National Flag) और राष्ट्रीय गान (National Anthem) का सम्मान करे।
2. स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन से प्रेरित महान आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे तथा उसे अक्षुण्ण बनाए रखे।
4. देश की रक्षा करे और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय सेवा प्रदान करे।
5. धर्म, भाषा, क्षेत्र अथवा जाति-भेद से ऊपर उठकर भारत के सभी लोगों में सद्भाव, बंधुत्व और समान भ्रातृत्व की भावना को बढ़ावा दे तथा महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध प्रचलित प्रथाओं का त्याग करे।
6. भारत की समन्वित सांस्कृतिक विरासत का सम्मान करे और उसके संरक्षण में अपना योगदान दे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, झीलें, नदियाँ और वन्यजीव सम्मिलित हैं, का संरक्षण और संवर्धन करे तथा सभी जीवों के प्रति करुणा का भाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद तथा ज्ञानार्जन और सुधार की भावना का विकास करे।

9. सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करे और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता प्राप्त करने का प्रयास करे, ताकि राष्ट्र निरंतर प्रगति और उपलब्धियों की ओर अग्रसर रहे।
11. माता-पिता या अभिभावक का यह कर्तव्य है कि वे अपने छह से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करें। (86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया।)

यद्यपि मौलिक कर्तव्यों को प्रत्यक्ष रूप से न्यायालय के माध्यम से लागू नहीं कराया जा सकता, फिर भी वे सरकार, न्यायपालिका और नागरिकों के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांतों का स्थान रखते हैं। ये कर्तव्य इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि एक सशक्त, संगठित और कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए केवल अधिकार ही पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि नागरिकों का जिम्मेदार, नैतिक और संविधान का पालन करने वाला होना भी आवश्यक है।

समग्र रूप से, मौलिक कर्तव्य भारतीय संविधान में नागरिक दायित्वों की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति हैं। ये न केवल राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सद्भाव और देशभक्ति को बढ़ावा देते हैं, बल्कि एक जिम्मेदार, जागरूक और सक्रिय नागरिक समाज की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

▪ प्रमुख कर्तव्य :

संविधान का पालन करना

संविधान का पालन करना प्रत्येक नागरिक का एक महत्वपूर्ण मौलिक कर्तव्य है, जिसका महत्व भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। संविधान का पालन करने का अर्थ केवल संविधान के प्रावधानों और कानूनों का सम्मान करना नहीं है, बल्कि उन सिद्धांतों, मूल्यों और लोकतांत्रिक आदर्शों को अपने व्यावहारिक जीवन में अपनाना भी है, जो संविधान की आधारशिला हैं। भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित राष्ट्रीय संविधान माना जाता है, जो न केवल राज्य-व्यवस्था और शासन-संरचना की व्याख्या करता है, बल्कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों, कर्तव्यों तथा राज्य की जिम्मेदारियों को भी निर्धारित करता है।

संविधान के पालन की अपेक्षा यह है कि नागरिक राज्य की संस्थाओं, न्यायपालिका, कानून तथा संवैधानिक सिद्धांतों का सम्मान करें और अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहें। जब नागरिक संविधान के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं, तब वे न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में न्याय, समानता और अनुशासन को बढ़ावा देते हैं, बल्कि देश की स्थिरता, एकता और लोकतांत्रिक व्यवस्था की सुदृढ़ता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संविधान के पालन का यह अर्थ भी है कि नागरिक किसी भी असंवैधानिक, अवैध अथवा अन्यायपूर्ण कार्यवाही के विरुद्ध संवैधानिक और कानूनी माध्यमों से अपनी आवाज उठाएँ, ताकि संविधान की सर्वोच्चता बनी रहे।

भारतीय संविधान में इस दायित्व को मौलिक कर्तव्य के रूप में अनुच्छेद 51A(a) में सम्मिलित किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे तथा उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान करे। इसका उद्देश्य नागरिकों में संवैधानिक चेतना, राष्ट्रीय दायित्व और देशभक्ति की भावना को बढ़ावा देना है।

संविधान का पालन एक सुदृढ़ लोकतांत्रिक और कल्याणकारी राज्य की आधारशिला है। यदि नागरिक संवैधानिक सिद्धांतों का सम्मान करें और अपने कर्तव्यों का जिम्मेदारीपूर्वक निर्वहन करें, तो समाज में शांति, न्याय, समानता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार, संविधान का पालन केवल एक संवैधानिक और नैतिक दायित्व ही नहीं, बल्कि एक जिम्मेदार नागरिक होने की भी अपेक्षा है, जो देश की प्रगति और स्थिरता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

समग्र रूप से, संविधान का पालन एक सभ्य, संगठित और लोकतांत्रिक समाज की स्थापना की आधारशिला है। यह नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करता है तथा देश में विधि के शासन, राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों के संवर्धन को सुनिश्चित करता है।

राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान

भारत के संविधान में नागरिकों पर यह मौलिक दायित्व आरोपित किया गया है कि वे राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान करें। यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51A(a) के अंतर्गत मौलिक कर्तव्यों में सम्मिलित है, जिसके अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह संविधान, उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज (National Flag) और राष्ट्रीय गान (National Anthem) का सम्मान करे। यह सम्मान केवल एक औपचारिक या प्रतीकात्मक कार्य नहीं है, बल्कि देश की संप्रभुता, एकता, लोकतांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रीय गौरव के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति भी है।

राष्ट्रीय ध्वज, जिसे "तिरंगा" कहा जाता है, भारत की राष्ट्रीय पहचान, स्वतंत्रता और एकता का प्रतीक है। इसके तीन रंग–केसरिया, श्वेत और हरा–विभिन्न राष्ट्रीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि मध्य में स्थित अशोक चक्र (Ashoka Chakra) विधि के शासन, न्याय, धर्म तथा निरंतर प्रगति और गतिशीलता का प्रतीक माना जाता है। राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करना प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक और नैतिक कर्तव्य है, और उसका अपमान या दुरुपयोग विधि द्वारा निषिद्ध है।

इसी प्रकार, भारत का राष्ट्रीय गान "जन गण मन" देश की राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक विविधता और स्वतंत्रता की भावना को प्रतिबिंबित करता है। राष्ट्रीय गान का सम्मान करना, उसके दौरान सम्मानपूर्वक खड़ा होना तथा उसे गरिमा और आदर के साथ प्रस्तुत करना प्रत्येक नागरिक का दायित्व माना जाता है। यह न केवल संवैधानिक चेतना की अभिव्यक्ति है, बल्कि राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति की भावना को भी सुदृढ़ करता है।

राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान वास्तव में भारत के लोकतांत्रिक मूल्यों, राष्ट्रीय एकता और संवैधानिक सिद्धांतों के सम्मान का प्रतीक है। जब नागरिक इन राष्ट्रीय प्रतीकों का आदर करते हैं, तब वे अपने देश की स्वतंत्रता, बलिदानों और साझा राष्ट्रीय पहचान के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं।

समग्र रूप से, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान प्रत्येक भारतीय नागरिक का एक महत्वपूर्ण संवैधानिक, नैतिक और राष्ट्रीय कर्तव्य है। यह राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति, अनुशासन और संवैधानिक चेतना को

बढ़ावा देता है तथा देश की संप्रभुता, गौरव और लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पर्यावरण का संरक्षण करना

भारत के संविधान में पर्यावरण संरक्षण को एक महत्वपूर्ण मौलिक कर्तव्य माना गया है, ताकि नागरिकों में प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी और जागरूकता उत्पन्न हो। पर्यावरण का संरक्षण न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए आवश्यक है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक स्वच्छ, सुरक्षित और स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य है। इसी कारण संविधान नागरिकों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे अपने अधिकारों के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी सक्रिय भूमिका निभाएँ।

संविधान के अनुच्छेद 51A(g) के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, झीलें, नदियाँ, वन्यजीव तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन सम्मिलित हैं, का संरक्षण करे और उनके संवर्धन के लिए प्रयास करे तथा सभी जीवों के प्रति करुणा का भाव रखे। इस संवैधानिक निर्देश का उद्देश्य पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखना और प्राकृतिक संसाधनों के उत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देना है।

पर्यावरण संरक्षण का अर्थ केवल प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखना नहीं है, बल्कि उनके उपयोग में संतुलन बनाए रखना भी है, ताकि पृथ्वी पर जीवन के सभी रूपों के लिए अनुकूल पर्यावरण बना रहे। इसी उद्देश्य से सरकार ने विभिन्न कानूनों और नीतियों को लागू किया है, जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, वनों की कटाई और पर्यावरणीय क्षति को रोकने के लिए विभिन्न उपाय। ये कानून और सरकारी कदम देश की पारिस्थितिक व्यवस्था और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण को केवल मौलिक कर्तव्यों तक सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों में भी इस पर बल दिया गया है। अनुच्छेद 48A राज्य को निर्देश देता है कि वह पर्यावरण, वनों और वन्यजीवों के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए आवश्यक कदम उठाए। इस प्रकार संविधान सरकार और नागरिकों, दोनों को पर्यावरण संरक्षण की साझा जिम्मेदारी सौंपता है।

नागरिकों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने और उनकी भूमिका को सुदृढ़ बनाने के लिए विभिन्न शैक्षिक, सामाजिक और सरकारी संस्थाएँ भी कार्य करती हैं। प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह अपने दैनिक जीवन में ऐसे उपाय अपनाए जो पर्यावरण संरक्षण में सहायक हों, जैसे वृक्षारोपण करना, जल और ऊर्जा का सावधानीपूर्वक उपयोग करना, स्वच्छता बनाए रखना तथा प्रदूषण को कम करने का प्रयास करना।

समग्र रूप से, पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक नागरिक का एक महत्वपूर्ण संवैधानिक, नैतिक और सामाजिक कर्तव्य है। प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करके और पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखकर हम न केवल अपने वर्तमान जीवन को बेहतर बना सकते हैं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक सुरक्षित, स्वस्थ और सतत् पर्यावरण उपलब्ध करा सकते हैं। इसलिए, पर्यावरण संरक्षण एक जिम्मेदार नागरिक और एक विकसित समाज की महत्वपूर्ण पहचान है।

अध्याय 3 : शासन की संरचना

3.1 केंद्रीय सरकार

- राष्ट्रपति की भूमिका
- प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद
- संसद : लोकसभा और राज्यसभा

3.2 राज्य सरकार

- राज्यपाल की भूमिका
- मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद
- राज्य विधानसभा

3.3 न्यायपालिका

- सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका
- उच्च न्यायालयों की भूमिका
- अधीनस्थ न्यायालयों की भूमिका
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता

3.4 निर्वाचन प्रणाली

- मताधिकार

- **निर्वाचन प्रक्रिया**
- **निर्वाचन आयोग की भूमिका**

अध्याय 3 : शासन की संरचना

3.1 केंद्रीय सरकार

- ### राष्ट्रपति की भूमिका

भारत में राष्ट्रपति संविधान के अंतर्गत राज्य का औपचारिक प्रमुख होता है, जो मूलतः एक संवैधानिक पद है। भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति देश के सर्वोच्च पद पर आसीन होता है, किंतु उसकी भूमिका मुख्यतः औपचारिक होती है, क्योंकि वास्तविक कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती हैं।

भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन संविधान के अनुच्छेद 54 और 55 के अंतर्गत किया जाता है। राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचन मंडल (Electoral College) द्वारा किया जाता है, जिसमें लोक सभा और राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य, सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य तथा दिल्ली और पुडुचेरी की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं। राष्ट्रपति का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है, किंतु वह पुनः निर्वाचित हो सकता है। राष्ट्रपति को पद से हटाने की प्रक्रिया का प्रावधान अनुच्छेद 61 में किया गया है, जिसे "महाभियोग" (Impeachment) कहा जाता है। यह केवल संविधान के उल्लंघन की स्थिति में ही संभव है।

राष्ट्रपति का मूल दायित्व संविधान के अंतर्गत सरकार के संचालन के लिए अपने औपचारिक अधिकारों का प्रयोग करना है। संवैधानिक रूप से राष्ट्रपति संसद का एक अंग होता है और अनुच्छेद 79 के अंतर्गत लोक सभा तथा राज्य सभा के साथ मिलकर संसद का गठन करता है। राष्ट्रपति के अधिकारों में अनेक महत्वपूर्ण दायित्व सम्मिलित हैं, जिनमें विधायी, कार्यपालिका, न्यायिक तथा राजनयिक विषय शामिल हैं।

राष्ट्रपति के पास अनुच्छेद 53 के अंतर्गत समस्त कार्यपालिका (Executive) संबंधी शक्तियाँ निहित होती हैं, किंतु वह इन शक्तियों का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग नहीं करता, बल्कि प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, जैसा कि अनुच्छेद 74 के अंतर्गत अनिवार्य है। प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना राष्ट्रपति सामान्यतः कोई कार्यपालिका संबंधी निर्णय नहीं ले सकता।

विधायी क्षेत्र में राष्ट्रपति की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति संसद के अधिवेशन बुलाना तथा लोक सभा को भंग करना है, जिसका प्रावधान अनुच्छेद 85 में किया गया है। राष्ट्रपति के पास यह अधिकार भी होता है कि वह लोक सभा के चुनाव के बाद सबसे बड़े दल अथवा बहुमत सिद्ध करने में सक्षम गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करे। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 111 के अंतर्गत राष्ट्रपति किसी भी विधेयक को अपनी स्वीकृति देकर उसे कानून बना सकता है अथवा उसे पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है। किंतु यदि संसद उसी विधेयक को पुनः पारित करके भेज दे, तो राष्ट्रपति के लिए उस पर स्वीकृति देना अनिवार्य होता है।

राष्ट्रपति के पास कुछ विशेष शक्तियाँ भी होती हैं, जैसे कि अनुच्छेद 123 के अंतर्गत अध्यादेश (Ordinance) जारी करने की शक्ति। यदि संसद का अधिवेशन न चल रहा हो और किसी तत्काल कानून की आवश्यकता हो, तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है। यह अध्यादेश संसद के पुनः अधिवेशन प्रारंभ होने के बाद छह सप्ताह तक प्रभावी रहता है, जिसके पश्चात उसका संसद द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक होता है।

राष्ट्रपति के पास न्यायिक शक्तियाँ भी होती हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण क्षमा प्रदान करना, दंड में कमी करना, दंड को स्थगित करना अथवा दंड का रूपांतरण करने की शक्ति है, जो अनुच्छेद 72 के अंतर्गत प्रदान की गई है। इस शक्ति का प्रयोग विशेष रूप से मृत्युदंड के मामलों में किया जा सकता है।

सैन्य मामलों में राष्ट्रपति भारतीय सशस्त्र बलों का सर्वोच्च सेनापति (Supreme Commander) होता है, किंतु व्यवहार में सभी रक्षा संबंधी विषय प्रधानमंत्री और रक्षा मंत्रालय की देखरेख में संचालित किए जाते हैं। राजनयिक स्तर पर भी राष्ट्रपति की भूमिका औपचारिक होती है, क्योंकि सभी अंतरराष्ट्रीय संधियाँ और वार्ताएँ सरकार द्वारा की जाती हैं, जबकि राष्ट्रपति राज्य की ओर से उनकी औपचारिक पुष्टि करता है।

राष्ट्रपति की एक अन्य महत्वपूर्ण शक्ति आपातकाल की घोषणा से संबंधित है, जिसका प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 352, 356 और 360 में किया गया है। राष्ट्रीय आपातकाल, राष्ट्रपति शासन तथा वित्तीय आपातकाल लागू करने की शक्ति राष्ट्रपति के पास होती है, किंतु इसका प्रयोग केवल मंत्रिपरिषद की अनुशंसा पर ही किया जाता है।

समग्र रूप से, भारत में राष्ट्रपति का पद एक संवैधानिक प्रमुख का है, जिसका मुख्य दायित्व संवैधानिक व्यवस्था को सुनिश्चित करना तथा सरकार के निर्णयों को औपचारिक स्वीकृति प्रदान करना है। वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती हैं, जबकि राष्ट्रपति संविधान के अनुसार राज्य के प्रमुख के रूप में अपने दायित्वों का निर्वहन करता है।

▪ प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद

प्रधानमंत्री

भारत में प्रधानमंत्री सरकार का वास्तविक प्रमुख होता है और समस्त कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ उसी के पास होती हैं। भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति औपचारिक प्रमुख होता है, किंतु वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद के पास होती हैं। अनुच्छेद 75 के अंतर्गत राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है। सामान्यतः वही व्यक्ति प्रधानमंत्री बनता है जो लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल अथवा गठबंधन का नेता हो।

प्रधानमंत्री के दायित्व और अधिकार व्यापक होते हैं तथा वह सरकार की नीतियों और निर्णयों में केंद्रीय भूमिका निभाता है। मंत्रिपरिषद के प्रमुख के रूप में वह सभी मंत्रालयों के कार्यों की समीक्षा करता है और संसद में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है। अनुच्छेद 78 के अंतर्गत प्रधानमंत्री का दायित्व है कि वह राष्ट्रपति को सरकार के कार्यों से अवगत कराए तथा आवश्यक जानकारी प्रदान करे। अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति सामान्यतः प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है। तथापि, राष्ट्रपति किसी सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है। यदि मंत्रिपरिषद पुनः वही सलाह दे, तो राष्ट्रपति उसके अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होता है।

प्रधानमंत्री संसद में सदन का नेता भी होता है और संसद में सरकार की नीतियों का समर्थन एवं प्रतिपादन करता है। यदि लोक सभा में प्रधानमंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए, तो पूरी मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है, क्योंकि प्रधानमंत्री का पद छोड़ना पूरी मंत्रिपरिषद के इस्तीफे के समान माना जाता है।

मंत्रिपरिषद

भारत में मंत्रिपरिषद सरकार का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, जो प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्य करती है। मंत्रिपरिषद की नियुक्ति अनुच्छेद 75 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, किंतु सभी मंत्रियों का चयन प्रधानमंत्री की सलाह पर होता है।

मंत्रिपरिषद तीन स्तरों में विभाजित होती है–

1. **कैबिनेट मंत्री (Cabinet Ministers):** ये सरकार के सबसे महत्वपूर्ण मंत्री होते हैं, जो गृह मंत्रालय, विदेश मंत्रालय, वित्त मंत्रालय तथा रक्षा मंत्रालय जैसे बड़े और प्रमुख विभागों का दायित्व संभालते हैं।

2. **राज्य मंत्री (Ministers of State):** ये मंत्री सामान्यतः किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करते हैं और उसकी सहायता करते हैं। कुछ परिस्थितियों में इन्हें किसी विशेष विभाग की जिम्मेदारी भी दी जा सकती है, किंतु सामान्यतः ये वरिष्ठ मंत्री के पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं।
3. **राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) [Ministers of State - Independent Charge]:** ये ऐसे मंत्री होते हैं जिनके पास किसी मंत्रालय का पूर्ण प्रभार होता है और वे किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य नहीं करते, किंतु उनका पद कैबिनेट मंत्रियों से निम्न होता है।

मंत्रिपरिषद नीति-निर्माण, विधि-निर्माण तथा शासन संबंधी निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सभी प्रमुख निर्णय मंत्रिपरिषद की स्वीकृति के पश्चात लिए जाते हैं और प्रधानमंत्री इसका प्रमुख होता है। मंत्रिपरिषद की बैठक सामान्यतः प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में होती है, जहाँ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय विषयों पर निर्णय लिए जाते हैं।

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद की शक्तियाँ

1. **कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ:** प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद देश की आंतरिक तथा बाह्य नीतियों का निर्धारण करते हैं, सभी मंत्रालयों की निगरानी करते हैं तथा शासन के दैनिक कार्यों का संचालन करते हैं।
2. **विधायी शक्तियाँ:** मंत्रिपरिषद संसद में विधेयक प्रस्तुत करती है, बजट पेश करती है तथा विभिन्न नीतियों पर चर्चा और मार्गदर्शन प्रदान करती है।
3. **वित्तीय शक्तियाँ:** मंत्रिपरिषद वित्तीय नीतियों का निर्धारण करती है, वार्षिक बजट तैयार करती है तथा आर्थिक योजना-निर्माण की निगरानी करती है।
4. **राजनयिक शक्तियाँ:** प्रधानमंत्री अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश का प्रतिनिधित्व करता है, संधियों तथा वार्ताओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और विदेश नीति की निगरानी करता है।
5. **आपातकालीन शक्तियाँ:** प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद आपातकाल की स्थिति में राष्ट्रीय सुरक्षा, युद्ध, प्राकृतिक आपदाओं अथवा आर्थिक संकट से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं तथा राष्ट्रपति को उपयुक्त अनुशंसाएँ प्रस्तुत करते हैं।

प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद की उत्तरदायित्व

संवैधानिक रूप से प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद संसद, विशेष रूप से लोक सभा, के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। यदि लोक सभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो प्रधानमंत्री और संपूर्ण मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है।

समग्र रूप से, भारत में शासन की वास्तविक शक्ति प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद के पास होती है, जो देश के कार्यपालिका, विधायी, वित्तीय तथा राजनयिक कार्यों का संचालन करती है। यह व्यवस्था संसदीय लोकतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित है, जिसमें प्रधानमंत्री के लिए लोक सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक होता है, ताकि वह प्रभावी ढंग से शासन का संचालन कर सके।

▪ संसद: लोकसभा और राज्यसभा

भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू है, जहाँ संसद विधायिका (Legislature) की सर्वोच्च संस्था है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अंतर्गत संसद तीन भागों से मिलकर बनी होती है–राष्ट्रपति, लोक सभा और राज्य सभा। राष्ट्रपति औपचारिक रूप से संसद का एक अंग होता है, किंतु वास्तविक विधायी शक्ति दोनों सदनों (लोक सभा और राज्य सभा) में निहित होती है। संसद देश के सभी महत्वपूर्ण कानून बनाती है, सरकार के कार्यों की निगरानी करती है तथा वित्तीय मामलों को स्वीकृति प्रदान करती है।

लोकसभा

लोक सभा को निम्न सदन (Lower House) अथवा जनप्रतिनिधि सदन कहा जाता है, क्योंकि इसके सदस्य सीधे जनता द्वारा मतदान के माध्यम से चुने जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 81 के अनुसार लोक सभा की अधिकतम सदस्य संख्या 550 हो सकती है (पूर्व में यह संख्या 552 थी, किंतु एंग्लो-इंडियन समुदाय के लिए आरक्षित दो सीटें समाप्त कर दी गईं), जिनमें–

- 530 सीटें राज्यों से निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए निर्धारित हैं।

- 20 सीटें संघ राज्य क्षेत्रों (Union Territories) के लिए निर्धारित हैं।

- 2 सीटें राष्ट्रपति द्वारा एंग्लो-इंडियन समुदाय के लिए नामित की जा सकती थीं, किंतु 104वें संविधान संशोधन (2020) द्वारा यह प्रावधान समाप्त कर दिया गया।

लोक सभा के चुनाव प्रत्येक पाँच वर्ष में होते हैं, किंतु यदि सरकार बहुमत खो दे अथवा राष्ट्रपति लोक सभा को भंग कर दे, तो समय से पहले भी चुनाव कराए जा सकते हैं।

शक्तियाँ और दायित्व

1. **विधायी शक्ति:** लोक सभा नए कानून प्रस्तावित कर सकती है, उन पर चर्चा कर सकती है तथा उन्हें पारित कर सकती है।
2. **वित्तीय शक्तियाँ:** अनुच्छेद 110 के अंतर्गत धन विधेयक (Money Bill) केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। राज्य सभा धन विधेयक में संशोधन नहीं कर सकती, बल्कि केवल अपनी सिफारिशें दे सकती है।

3. **सरकार पर नियंत्रण:** प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि लोक सभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो सरकार को इस्तीफा देना पड़ता है।
4. **संवैधानिक पदाधिकारियों को पद से हटाने की प्रक्रिया में भूमिका:** लोक सभा, राज्य सभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने, उपराष्ट्रपति को पद से हटाने की प्रक्रिया तथा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया में भाग लेती है।
5. **आपातकालीन शक्तियाँ:** यदि देश में राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352) लागू किया जाता है, तो उसकी पुष्टि संसद के दोनों सदनों द्वारा किया जाना आवश्यक होता है।

राज्यसभा

राज्य सभा को उच्च सदन (Upper House) कहा जाता है। यह एक स्थायी सदन है, जिसे भंग नहीं किया जा सकता, किंतु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के बाद सेवानिवृत्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्यों का निर्वाचन किया जाता है।

अनुच्छेद 80 के अंतर्गत राज्य सभा की अधिकतम सदस्य संख्या 250 हो सकती है, जिनमें–

- 238 सदस्य राज्यों तथा उन संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें संसदीय प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

- 12 सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा नामित किया जाता है, जो साहित्य, विज्ञान, कला तथा समाज सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान रखते हों।

राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा नहीं किया जाता, बल्कि राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य (MLAs) उनका निर्वाचन करते हैं। राज्य सभा के सदस्यों का कार्यकाल छह वर्ष का होता है, किंतु प्रत्येक दो वर्ष बाद सदन का एक-तिहाई भाग बदल जाता है।

शक्तियाँ और दायित्व

1. **विधायी शक्ति:** राज्य सभा सामान्य विधेयकों में संशोधन का प्रस्ताव कर सकती है तथा उन्हें पारित कर सकती है।
2. **धन विधेयकों पर सीमित अधिकार:** राज्य सभा धन विधेयक में संशोधन नहीं कर सकती, किंतु उस पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर सकती है।

3. **सरकार पर निगरानी और विचार-विमर्श:** यद्यपि राज्य सभा सरकार को प्रत्यक्ष रूप से पद से नहीं हटा सकती, फिर भी वह बहस, प्रश्नों तथा समितियों के माध्यम से सरकारी नीतियों को प्रभावित कर सकती है।
4. **संवैधानिक पदाधिकारियों को पद से हटाने की प्रक्रिया में भूमिका:** राज्य सभा राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने, उपराष्ट्रपति को पद से हटाने तथा उच्च न्यायपालिका के न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया में भाग लेती है।
5. **राष्ट्रीय हित में विशेष शक्तियाँ:** अनुच्छेद 249 के अंतर्गत यदि राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि राष्ट्रीय हित में राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बनाना आवश्यक है, तो संसद को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यह अधिकार एक वर्ष तक प्रभावी रहता है तथा आवश्यकता होने पर इसे पुनः बढ़ाया जा सकता है।

लोक सभा और राज्य सभा के बीच अंतर

1. प्रकृति

लोक सभा: जनप्रतिनिधि सदन (Lower House)

राज्य सभा: उच्च सदन (Upper House)

2. सदस्यों की संख्या

लोक सभा: अधिकतम 550 सदस्य

राज्य सभा: अधिकतम 250 सदस्य

3. निर्वाचन की प्रक्रिया

लोक सभा: प्रत्यक्ष रूप से जनता के मतदान द्वारा निर्वाचित

राज्य सभा: राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन

4. कार्यकाल

लोक सभा: 5 वर्ष (समय से पूर्व भंग की जा सकती है)

राज्य सभा: स्थायी सदन; प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष

5. धन विधेयक पर अधिकार

लोक सभा: पूर्ण अधिकार; धन विधेयक केवल इसी सदन में प्रस्तुत किया जाता है।

राज्य सभा: केवल सिफारिशें दे सकती है।

6. सरकार की उत्तरदायित्व

लोक सभा: प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद इसके प्रति उत्तरदायी होते हैं।

राज्य सभा: सरकार को प्रत्यक्ष रूप से पद से नहीं हटा सकती।

7. विशेष स्थिति

लोक सभा: सरकार का अस्तित्व इसी सदन के विश्वास पर आधारित होता है।

राज्य सभा: यह एक स्थायी सदन है तथा अनुच्छेद 249 के अंतर्गत विशेष शक्तियाँ रखती है।

संसद का महत्व

भारतीय लोकतंत्र में संसद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह कानून बनाती है, बजट को स्वीकृति प्रदान करती है, सरकार के कार्यों की निगरानी करती है तथा राष्ट्रीय नीतियों की दिशा निर्धारित करती है। संसदीय शासन प्रणाली में लोक सभा की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली मानी जाती है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि शामिल होते हैं और सरकार इसी सदन के विश्वास पर आधारित रहती है। दूसरी ओर, राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है तथा विधायी प्रक्रिया में संतुलन और निरंतरता प्रदान करती है। दोनों सदन मिलकर भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ और प्रभावी बनाते हैं।

3.2 राज्य सरकार

▪ राज्यपाल की भूमिका

भारत में राज्यपाल किसी राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है। भारतीय संविधान के अनुसार राज्यपाल राज्य में भारत के राष्ट्रपति का प्रतिनिधि होता है और राज्य का प्रशासन संवैधानिक रूप से उसके नाम से संचालित किया जाता है। यद्यपि राज्यपाल राज्य का औपचारिक प्रमुख होता है, किंतु राज्य सरकार की वास्तविक कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती हैं। राज्यपाल के पद तथा उसकी शक्तियों का उल्लेख मुख्यतः संविधान के अनुच्छेद 153 से 162 तथा अन्य संबंधित प्रावधानों में किया गया है।

राज्यपाल की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संविधान के अनुच्छेद 156 के अनुसार राज्यपाल का सामान्य कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है, तथापि वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (Pleasure of the President) अपने पद पर बना रहता है और राष्ट्रपति उसे किसी भी समय पद से हटा सकता है। राज्यपाल बनने के लिए आवश्यक है कि वह भारत का नागरिक हो तथा उसकी आयु कम-से-कम 35 वर्ष हो।

राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख होता है। संविधान के अनुच्छेद 154 के अंतर्गत राज्य की समस्त कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित होती हैं, किंतु वह इन शक्तियों का प्रयोग मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद की सलाह पर करता है। राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है तथा मुख्यमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। राज्य सरकार के सभी प्रशासनिक कार्य संवैधानिक रूप से राज्यपाल के नाम से जारी किए जाते हैं।

विधायी क्षेत्र में भी राज्यपाल को महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। राज्यपाल राज्य विधानमंडल का एक अंग होता है और राज्य विधानसभा का अधिवेशन बुला (Summon), स्थगित (Prorogue) तथा कुछ परिस्थितियों में भंग (Dissolve) कर सकता है। राज्यपाल विधानसभा द्वारा पारित विधेयकों को स्वीकृति दे सकता है, उन्हें पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है अथवा कुछ विशेष परिस्थितियों में उन्हें राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है। जब राज्य विधानमंडल का अधिवेशन न चल रहा हो और तत्काल कानून बनाने की आवश्यकता हो, तब अनुच्छेद 213 के अंतर्गत राज्यपाल अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकता है।

वित्तीय मामलों में भी राज्यपाल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राज्य का वार्षिक बजट तथा वित्तीय विधेयक केवल राज्यपाल की अनुशंसा पर ही विधानसभा में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। किसी भी धन विधेयक (Money Bill) को राज्यपाल की पूर्व अनुशंसा के बिना विधानसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इस प्रकार राज्यपाल राज्य की वित्तीय व्यवस्था में एक संवैधानिक भूमिका निभाता है।

राज्यपाल के पास कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी होती हैं। अनुच्छेद 161 के अंतर्गत राज्यपाल राज्य के कानूनों के अधीन दी गई सजाओं में क्षमा, दंड में कमी, स्थगन अथवा दंड का रूपांतरण कर सकता है। वह कुछ मामलों में मृत्युदंड को स्थगित, कम या परिवर्तित भी कर सकता है, किंतु पूर्ण क्षमादान (Pardon) देने का अधिकार केवल भारत के राष्ट्रपति को प्राप्त है।

आपातकालीन परिस्थितियों में राज्यपाल की भूमिका विशेष महत्व प्राप्त कर लेती है। यदि राज्यपाल की राय में राज्य में संवैधानिक व्यवस्था विफल हो गई हो, तो वह अनुच्छेद 356 के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकता है और राष्ट्रपति शासन लागू करने की अनुशंसा कर सकता है। राष्ट्रपति शासन लागू होने की स्थिति में राज्य का प्रशासन राष्ट्रपति के अधीन आ जाता है और राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्य के कार्यों का निर्वहन करता है।

कुछ राज्यों में राज्यपाल को विशेष संवैधानिक दायित्व भी सौंपे गए हैं। उदाहरण के लिए, नागालैंड, मिज़ोरम, असम तथा कुछ जनजातीय क्षेत्रों से संबंधित विशेष मामलों में राज्यपाल को विशेष शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिनका उद्देश्य स्थानीय हितों तथा संवैधानिक व्यवस्थाओं का संरक्षण करना होता है।

समग्र रूप से राज्यपाल राज्य का संवैधानिक तथा औपचारिक प्रमुख होता है, जिसका मुख्य दायित्व संवैधानिक व्यवस्था को सुनिश्चित करना तथा राज्य सरकार के निर्णयों को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करना है। वास्तविक कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती हैं, जबकि राज्यपाल सामान्यतः उनकी सलाह पर कार्य करता है, सिवाय उन कुछ मामलों के जहाँ संविधान उसे विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करने की अनुमति देता है

▪ मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद

मुख्यमंत्री

भारत में मुख्यमंत्री राज्य सरकार का वास्तविक प्रमुख होता है और राज्य की समस्त कार्यपालिका संबंधी शक्तियों का प्रयोग व्यवहारतः उसी तथा उसकी मंत्रिपरिषद के माध्यम से किया जाता है। भारतीय संविधान के अनुसार राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है, किंतु राज्य प्रशासन की वास्तविक जिम्मेदारी मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद पर होती है। मुख्यमंत्री के पद, नियुक्ति तथा शक्तियों से संबंधित प्रावधान मुख्यतः संविधान के अनुच्छेद 163 से 167 में वर्णित हैं।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। सामान्यतः राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल अथवा गठबंधन के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाता है। यदि किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, तो राज्यपाल उस व्यक्ति को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है जो विधानसभा का विश्वास प्राप्त करने की क्षमता रखता हो। मुख्यमंत्री का कोई निश्चित संवैधानिक कार्यकाल नहीं होता, बल्कि वह तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक उसे राज्य विधानसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है। यदि वह बहुमत खो देता है, तो उसे इस्तीफा देना पड़ता है।

मुख्यमंत्री राज्य सरकार का वास्तविक कार्यपालिका प्रमुख होता है। सरकार की सभी महत्वपूर्ण नीतियाँ, प्रशासनिक निर्णय तथा राज्य के कार्य उसके नेतृत्व में संपन्न होते हैं। मुख्यमंत्री विभिन्न मंत्रालयों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है, राज्य प्रशासन की निगरानी करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि सरकार की नीतियों का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन हो। राज्य की नौकरशाही के वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति एवं स्थानांतरण से संबंधित निर्णयों में भी मुख्यमंत्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

राज्य विधानमंडल में मुख्यमंत्री सरकार का नेता होता है। वह विधानसभा में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है, सरकारी नीतियों तथा विधायी कार्यक्रमों की व्याख्या करता है और महत्वपूर्ण विधेयकों को पारित कराने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से राज्य विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो मुख्यमंत्री और संपूर्ण मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है।

वित्तीय मामलों में भी मुख्यमंत्री की भूमिका केंद्रीय होती है। राज्य के बजट की तैयारी, वित्तीय प्राथमिकताओं के निर्धारण तथा विकास योजनाओं की निगरानी में मुख्यमंत्री महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि बजट औपचारिक रूप से वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, किंतु समग्र वित्तीय नीति तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद के स्तर पर किया जाता है। सभी महत्वपूर्ण वित्तीय विधेयक तथा योजनाएँ मंत्रिपरिषद की स्वीकृति के पश्चात विधानसभा में प्रस्तुत की जाती हैं।

मुख्यमंत्री राज्य सरकार और राज्यपाल के बीच संपर्क का भी प्रमुख माध्यम होता है। अनुच्छेद 167 के अंतर्गत मुख्यमंत्री का दायित्व है कि वह राज्यपाल को राज्य सरकार के सभी महत्वपूर्ण मामलों से अवगत कराए तथा जब राज्यपाल जानकारी माँगे, तो उसे उपलब्ध कराए। इसी प्रकार मंत्रिपरिषद के निर्णयों तथा राज्य प्रशासन से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों की जानकारी देना भी मुख्यमंत्री का संवैधानिक दायित्व है।

विधि-व्यवस्था तथा न्यायिक प्रशासन से संबंधित मामलों में भी मुख्यमंत्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यद्यपि न्यायपालिका एक स्वतंत्र संस्था है, फिर भी राज्य में विधि-व्यवस्था बनाए रखने, न्यायालयों के निर्णयों के क्रियान्वयन तथा विधिक व्यवस्था के प्रभावी संचालन को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारियाँ राज्य सरकार द्वारा मुख्यमंत्री के नेतृत्व में निभाई जाती हैं। राज्य के महाधिवक्ता (Advocate General) की नियुक्ति भी राज्यपाल, मुख्यमंत्री और राज्य सरकार की सलाह पर करता है।

आपातकालीन अथवा असाधारण परिस्थितियों में मुख्यमंत्री राज्य सरकार का नेतृत्व करता है तथा प्राकृतिक आपदाओं, विधि-व्यवस्था की समस्याओं अथवा अन्य संकटों से निपटने के लिए आवश्यक उपायों की निगरानी करता है। ऐसी परिस्थितियों में वह राज्य प्रशासन, पुलिस तथा अन्य संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करता है, ताकि जनता के जीवन एवं संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

समग्र रूप से मुख्यमंत्री राज्य सरकार का सबसे महत्वपूर्ण और सर्वाधिक अधिकार-संपन्न पद होता है। वह राज्य प्रशासन, विधि-निर्माण, वित्तीय योजना-निर्माण तथा सरकारी नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में केंद्रीय भूमिका निभाता है। यद्यपि राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है, किंतु राज्य सरकार की वास्तविक शक्तियाँ मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद के पास होती हैं।

मंत्रिपरिषद

भारत की राज्य सरकार में मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) मुख्यमंत्री के नेतृत्व में कार्य करती है और राज्य प्रशासन की वास्तविक निर्णय लेने वाली संस्था मानी जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 163 और 164 के अंतर्गत राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होती है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री होता है। राज्य सरकार की नीतियाँ, प्रशासनिक निर्णय तथा विधायी कार्यों का अधिकांश भाग मंत्रिपरिषद के माध्यम से संपन्न होता है।

मंत्रिपरिषद का गठन मुख्यमंत्री की सलाह पर किया जाता है। राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह से विभिन्न मंत्रियों की नियुक्ति करता है और उन्हें गृह, वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तथा अन्य विभागों की जिम्मेदारियाँ सौंपी जाती हैं। प्रत्येक मंत्री अपने विभाग का प्रशासन संभालता है, किंतु महत्वपूर्ण निर्णय सामूहिक रूप से मंत्रिपरिषद के स्तर पर लिए जाते हैं।

संवैधानिक रूप से मंत्रिपरिषद सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility) के सिद्धांत पर कार्य करती है। इसका अर्थ यह है कि सभी मंत्री राज्य विधानसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। यदि विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो मुख्यमंत्री सहित संपूर्ण मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है।

विधायी क्षेत्र में मंत्रिपरिषद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। राज्य सरकार की ओर से प्रस्तुत किए जाने वाले अधिकांश विधेयक, नीतियाँ तथा सुधार पहले मंत्रिपरिषद में विचाराधीन आते हैं। मंत्रिपरिषद की स्वीकृति के पश्चात ही महत्वपूर्ण विधेयक और प्रस्ताव राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। इस प्रकार राज्य की विधि-निर्माण प्रक्रिया में मंत्रिपरिषद की मूलभूत भूमिका होती है।

प्रशासनिक मामलों में मंत्रिपरिषद राज्य सरकार के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करती है तथा जनकल्याण योजनाओं, विकास कार्यक्रमों और सरकारी नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है। राज्य के प्रशासन, विकास योजना-निर्माण तथा सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता में मंत्रिपरिषद की केंद्रीय भूमिका होती है।

वित्तीय मामलों में भी मंत्रिपरिषद महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राज्य का बजट, वित्तीय योजनाओं तथा विकास व्यय से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय मंत्रिपरिषद की स्वीकृति से लिए जाते हैं। राज्य की आर्थिक नीतियों तथा विकास संबंधी प्राथमिकताओं के निर्धारण में भी मंत्रिपरिषद की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है।

समग्र रूप से मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद राज्य सरकार की वास्तविक कार्यपालिका का गठन करते हैं। राज्य के प्रशासनिक, विधायी तथा वित्तीय कार्यों की निगरानी और नीति-निर्माण का कार्य मुख्यतः मंत्रिपरिषद के माध्यम से संपन्न होता है, जबकि राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख के रूप में इन निर्णयों को औपचारिक तथा संवैधानिक स्वरूप प्रदान करता है।

▪ राज्य विधानसभा

भारत में राज्य विधानमंडल (State Legislature) राज्य में कानून बनाने वाली संस्था है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 168 से 212 तक राज्य विधानमंडल की संरचना, शक्तियों तथा कार्यप्रणाली का वर्णन किया गया है। कुछ राज्यों में एकसदनीय (Unicameral) तथा कुछ राज्यों में द्विसदनीय (Bicameral) विधानमंडल की व्यवस्था है। राज्य विधानमंडल राज्य के लिए कानून बनाता है, सरकार के कार्यों की निगरानी करता है तथा जनहित के मुद्दों के समाधान के लिए विधि-निर्माण की प्रक्रिया का संचालन करता है।

राज्य विधानमंडल की संरचना

अधिकांश राज्यों में केवल एक सदन होता है, जिसे राज्य विधानसभा (विधान सभा / Legislative Assembly) कहा जाता है। किंतु कुछ राज्यों में दो सदन होते हैं–

- **राज्य विधानसभा (विधान सभा / Legislative Assembly) – निम्न सदन**

- **राज्य विधान परिषद (विधान परिषद / Legislative Council) – उच्च सदन**

राज्य विधानसभा (विधान सभा)

राज्य विधानसभा राज्य की प्रमुख विधायी संस्था है। इसके सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा मतदान के माध्यम से चुने जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 170 के अनुसार राज्य विधानसभा के सदस्यों की संख्या राज्य की जनसंख्या के अनुसार निर्धारित की जाती है और यह सामान्यतः 60 से 500 के बीच होती है।

राज्य विधानसभा का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है, किंतु कुछ असाधारण परिस्थितियों में इसे समय से पूर्व भंग किया जा सकता है। राज्य सरकार का गठन राज्य विधानसभा में बहुमत के आधार पर होता है और मुख्यमंत्री तथा मंत्रिपरिषद इसी सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

राज्य विधान परिषद (विधान परिषद)

राज्य विधान परिषद केवल कुछ राज्यों में विद्यमान है, जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना। यह एक स्थायी सदन है, जिसे भंग नहीं किया जा सकता। इसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के बाद सेवानिवृत्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य चुने जाते हैं।

इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता है, जिसमें कुछ सदस्यों का चुनाव राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य (MLAs), स्थानीय निकाय, स्नातक तथा शिक्षक करते हैं, जबकि शेष सदस्यों को राज्यपाल नामित करता है। राज्य विधान परिषद मुख्यतः एक परामर्शदात्री संस्था है और इसकी शक्तियाँ राज्य विधानसभा की तुलना में सीमित होती हैं।

शक्तियाँ और दायित्व

1. **विधि-निर्माण:** राज्य विधानसभा राज्य सूची (State List) के विषयों पर कानून बनाती है, जिनमें पुलिस, स्वास्थ्य, कृषि, भूमि, स्थानीय शासन तथा लोक व्यवस्था जैसे विषय शामिल हैं।
2. **वित्तीय शक्तियाँ:** राज्य का वार्षिक बजट तथा वित्तीय विधेयक राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्तीय मामलों में राज्य विधानसभा को निर्णायक अधिकार प्राप्त होता है, जबकि राज्य विधान परिषद केवल अपनी सिफारिशें दे सकती है।
3. **सरकार की निगरानी:** मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद राज्य विधानसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। विधानसभा सरकार से प्रश्न पूछ सकती है, उसकी नीतियों पर चर्चा कर सकती है तथा अविश्वास प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर सकती है।
4. **अन्य शक्तियाँ:** कुछ संवैधानिक संशोधनों के लिए राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति आवश्यक होती है। राज्य विधानसभा जनहित के विभिन्न विषयों पर चर्चा करती है तथा सरकार को सिफारिशें प्रस्तुत कर सकती है।
5. **विधानसभा का विघटन:** यदि सरकार अपना बहुमत खो दे अथवा राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए, तो राज्य विधानसभा को भंग किया जा सकता है। राष्ट्रपति शासन (President’s Rule) लागू होने की स्थिति में भी विधानसभा को निलंबित अथवा भंग किया जा सकता है।

राज्य विधानसभा का महत्व

राज्य विधानसभा राज्य के लोकतंत्र का मूल स्तंभ है। यह राज्य के लिए कानून बनाती है, सरकार को उत्तरदायी बनाती है, वित्तीय मामलों की निगरानी करती है तथा जनकल्याण के लिए नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राज्य विधानसभा जनता और सरकार के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है तथा राज्य स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में मूलभूत भूमिका निभाती है।

3.3 न्यायपालिका

▪ सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका

भारत में सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) देश का सर्वोच्च न्यायालय तथा न्यायिक व्यवस्था का सर्वोच्च संस्थान है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 से 147 तक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना, संरचना, शक्तियों तथा कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय न केवल देश का अंतिम अपीलीय न्यायालय है, बल्कि संविधान का संरक्षक, मौलिक अधिकारों का रक्षक तथा संवैधानिक व्याख्या का सर्वोच्च प्राधिकरण भी है।

सर्वोच्च न्यायालय नई दिल्ली में स्थित है। इसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice of India) तथा अन्य न्यायाधीश शामिल होते हैं। न्यायाधीशों की संख्या संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के माध्यम से निर्धारित की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वे 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बने रहते हैं। न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया संविधान में निर्धारित है और उन्हें केवल संसद द्वारा महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया के माध्यम से ही पद से हटाया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय को विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैं। सबसे पहले, उसे मूल अधिकारिता (Original Jurisdiction) प्राप्त है। अनुच्छेद 131 के अंतर्गत केंद्र और राज्यों के बीच अथवा विभिन्न राज्यों के बीच उत्पन्न कुछ विवादों में वाद सीधे सर्वोच्च न्यायालय में दायर किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय अधिकारिता (Appellate Jurisdiction) भी प्राप्त है। उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध दीवानी, आपराधिक तथा संवैधानिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय देश का अंतिम अपीलीय न्यायालय है।

सर्वोच्च न्यायालय को परामर्शदात्री अधिकारिता (Advisory Jurisdiction) भी प्राप्त है। अनुच्छेद 143 के अंतर्गत भारत का राष्ट्रपति किसी महत्वपूर्ण संवैधानिक अथवा विधिक प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांग सकता है। न्यायालय अपनी राय राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है, किंतु उस राय का पालन करना अनिवार्य नहीं होता।

सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों का संरक्षक भी है। अनुच्छेद 32 के अंतर्गत यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो वह सीधे सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। इस उद्देश्य के लिए सर्वोच्च न्यायालय विभिन्न प्रकार की रिट (Writs) जारी कर सकता है, जिनमें हेबियस कॉर्पस

(Habeas Corpus), मैन्डेमस (Mandamus), प्रोहीबिशन (Prohibition), सर्टियोरारी (Certiorari) तथा क्वो वारंटो (Quo Warranto) शामिल हैं।

सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) का अधिकार भी प्राप्त है। इस अधिकार के अंतर्गत वह संसद, राज्य विधानमंडलों अथवा सरकार द्वारा बनाए गए ऐसे कानूनों और किए गए कार्यों की समीक्षा कर सकता है, जो संविधान के विपरीत हों। यदि कोई कानून अथवा सरकारी कार्य संविधान के विरुद्ध पाया जाता है, तो सर्वोच्च न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। यही अधिकार संविधान की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करता है।

सर्वोच्च न्यायालय को कुछ विशेष शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। न्यायालय जनहित के महत्वपूर्ण मामलों में स्वप्रेरणा से संज्ञान (Suo Motu Cognizance) ले सकता है तथा जनहित याचिकाओं (Public Interest Litigations) की सुनवाई कर सकता है। इसके अतिरिक्त संवैधानिक प्रकृति के महत्वपूर्ण विवाद तथा राष्ट्रीय महत्व के मामलों की सुनवाई भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की जाती है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पूरे देश में अंतिम तथा बाध्यकारी होते हैं। अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सभी अधीनस्थ न्यायालयों के लिए नज़ीर (Precedent) का दर्जा रखते हैं और उनका पालन करना अनिवार्य होता है। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों की पुनर्विचार याचिका (Review) के माध्यम से समीक्षा कर सकता है, किंतु उसके निर्णयों के विरुद्ध किसी उच्चतर न्यायिक मंच पर अपील नहीं की जा सकती।

भारत के मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice of India) सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख होते हैं और न्यायिक व्यवस्था में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। वे न्यायालय की प्रशासनिक एवं न्यायिक गतिविधियों की निगरानी करते हैं, विभिन्न पीठों (Benches) का गठन करते हैं तथा महत्वपूर्ण संवैधानिक मामलों को उपयुक्त पीठों को सौंपते हैं। मुख्य न्यायाधीश न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित कॉलेजियम प्रणाली (Collegium System) में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसके माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण की अनुशंसा की जाती है।

समग्र रूप से सर्वोच्च न्यायालय भारत की न्यायिक व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण संस्थान है, जो संविधान की व्याख्या, मौलिक अधिकारों की रक्षा, कानूनों की संवैधानिक समीक्षा तथा न्याय प्रदान करने में मूलभूत भूमिका निभाता है। यह संस्था संविधान की सर्वोच्चता तथा विधि के शासन (Rule of Law) को बनाए रखने की गारंटी मानी जाती है।

▪ उच्च न्यायालयों की भूमिका

भारत में उच्च न्यायालय (High Court) किसी राज्य अथवा कुछ मामलों में एक से अधिक राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के लिए सर्वोच्च न्यायिक संस्था होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 214 से 231 तक उच्च न्यायालयों की स्थापना, संरचना, शक्तियों तथा कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उच्च न्यायालय राज्य की न्यायिक व्यवस्था का सर्वोच्च न्यायालय है और अपने अधिकार क्षेत्र में न्याय प्रदान करने, संविधान की व्याख्या करने तथा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice) तथा अन्य न्यायाधीश होते हैं। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इस प्रक्रिया में भारत के मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice of India), संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श किया जाता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बने रह सकते हैं।

उच्च न्यायालय को विभिन्न प्रकार की न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण मूल अधिकारिता (Original Jurisdiction) है। कुछ मामलों में वाद सीधे उच्च न्यायालय में दायर किया जा सकता है, विशेषकर जब मौलिक अधिकारों के उल्लंघन अथवा महत्वपूर्ण संवैधानिक एवं विधिक प्रश्नों का मामला हो। कुछ उच्च न्यायालयों को विशेष प्रकार के दीवानी तथा वाणिज्यिक मामलों में भी मूल अधिकारिता प्राप्त होती है।

उच्च न्यायालय को अपीलीय अधिकारिता (Appellate Jurisdiction) भी प्राप्त है। जिला एवं सत्र न्यायालयों सहित अन्य अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें उच्च न्यायालय में दायर की जा सकती हैं। दीवानी, आपराधिक तथा कुछ संवैधानिक मामलों में उच्च न्यायालय अपीलों की सुनवाई करता है और आवश्यकता पड़ने पर अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों में संशोधन कर सकता है अथवा उन्हें निरस्त कर सकता है।

उच्च न्यायालय को पर्यवेक्षण संबंधी अधिकारिता (Supervisory Jurisdiction) भी प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले सभी अधीनस्थ न्यायालयों तथा अधिकरणों (Tribunals) का पर्यवेक्षण करता है। यदि कोई अधीनस्थ न्यायालय अपने विधिक अधिकारों का अतिक्रमण करे अथवा कानून के विपरीत निर्णय दे, तो उच्च न्यायालय उस मामले में हस्तक्षेप कर सकता है।

उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को रिट (Writ) जारी करने का अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार सर्वोच्च न्यायालय की तुलना में अधिक व्यापक माना जाता है, क्योंकि उच्च न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही नहीं,

बल्कि अन्य विधिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए भी रिट जारी कर सकता है। इसके अंतर्गत हेबियस कॉर्पस (Habeas Corpus), मैन्डेमस (Mandamus), प्रोहीबिशन (Prohibition), सर्टियोरारी (Certiorari) तथा क्वो वारंटो (Quo Warranto) जैसी रिटें जारी की जा सकती हैं।

उच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) का अधिकार भी प्राप्त है। इस अधिकार के अंतर्गत वह राज्य सरकार के कानूनों, आदेशों तथा प्रशासनिक कार्यों की समीक्षा कर सकता है। यदि कोई कानून अथवा सरकारी कार्य संविधान के विपरीत पाया जाता है, तो उच्च न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर सकता है। यह अधिकार संविधान की सर्वोच्चता तथा विधि के शासन को सुनिश्चित करता है।

उच्च न्यायालय राज्य की अधीनस्थ न्यायपालिका का प्रशासनिक पर्यवेक्षण भी करता है। संविधान के अनुच्छेद 235 के अंतर्गत जिला एवं अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानांतरण तथा अनुशासन से संबंधित मामलों में उच्च न्यायालय को महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। इस प्रकार उच्च न्यायालय राज्य की न्यायिक व्यवस्था के प्रभावी संचालन को सुनिश्चित करता है।

मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय का प्रमुख होता है और न्यायालय की प्रशासनिक तथा न्यायिक गतिविधियों की निगरानी करता है। वह विभिन्न पीठों (Benches) का गठन करता है तथा महत्वपूर्ण संवैधानिक अथवा विधिक मामलों को उपयुक्त पीठों को सौंपता है। अन्य न्यायाधीश मामलों की सुनवाई करते हैं और कानून तथा संविधान के अनुसार निर्णय देते हैं।

उच्च न्यायालय को कुछ विशेष शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। वह जनहित याचिकाओं (Public Interest Litigations) की सुनवाई कर सकता है तथा कुछ मामलों में स्वप्रेरणा से संज्ञान (Suo Motu Cognizance) भी ले सकता है। इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले अधिकरणों (Tribunals) तथा अन्य न्यायिक संस्थाओं के निर्णयों की समीक्षा करने का अधिकार भी रखता है।

समग्र रूप से उच्च न्यायालय राज्य की न्यायिक व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण संस्थान है, जो संविधान की सर्वोच्चता, विधि के शासन, मौलिक अधिकारों की रक्षा तथा न्याय प्रदान करने को सुनिश्चित करता है। यह सर्वोच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों के बीच एक महत्वपूर्ण संवैधानिक एवं न्यायिक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

▪ अधीनस्थ न्यायालयों की भूमिका

भारत की न्यायिक व्यवस्था को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है: सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय तथा अधीनस्थ न्यायालय। अधीनस्थ न्यायालय न्यायपालिका की आधारभूत संरचना हैं, जहाँ सामान्य नागरिक सबसे पहले न्याय प्राप्त करने के लिए पहुँचते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 तक अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। ये न्यायालय राज्य स्तर पर कार्य करते हैं और अधिकांश दीवानी तथा आपराधिक मामलों की प्रारंभिक सुनवाई करते हैं।

अधीनस्थ न्यायालयों की संरचना

प्रत्येक राज्य में अधीनस्थ न्यायपालिका उच्च न्यायालय की देखरेख में कार्य करती है। इस व्यवस्था में जिला एवं सत्र न्यायालय, दीवानी न्यायालय, न्यायिक मजिस्ट्रेट तथा अन्य न्यायिक संस्थाएँ शामिल होती हैं। जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल, संबंधित उच्च न्यायालय से परामर्श के बाद करता है, जबकि अन्य न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति राज्य की न्यायिक सेवा के नियमों के अनुसार की जाती है। अधीनस्थ न्यायपालिका के न्यायाधीशों के स्थानांतरण, पदोन्नति तथा प्रशासनिक मामलों की देखरेख उच्च न्यायालय द्वारा की जाती है। न्यायिक स्वतंत्रता के सिद्धांत के अंतर्गत न्यायाधीश अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्पक्षता एवं स्वतंत्रता के साथ करते हैं।

शक्तियाँ और अधिकार-क्षेत्र

अधीनस्थ न्यायालय न्याय प्रदान करने का प्रथम स्तर हैं और उन्हें निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं:

1. **मूल अधिकारिता (Original Jurisdiction):** अधीनस्थ न्यायालय उन मामलों की सुनवाई करते हैं जो पहली बार उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, चाहे वे दीवानी प्रकृति के हों अथवा आपराधिक। जनता के दैनिक जीवन से संबंधित अधिकांश विधिक विवादों की सुनवाई इन्हीं न्यायालयों में होती है।
2. **अपीलीय अधिकारिता (Appellate Jurisdiction):** कुछ अधीनस्थ न्यायालयों को निचली अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार भी प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, जिला न्यायालय कुछ दीवानी तथा आपराधिक मामलों में अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करते हैं।
3. **न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन कार्य करना:** अधीनस्थ न्यायालय उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं। यदि कोई न्यायालय अपने विधिक अधिकारों का अतिक्रमण करे अथवा कानून के विपरीत निर्णय दे, तो उच्च न्यायालय उसके निर्णय की समीक्षा कर सकता है।

मौलिक अधिकारों की रक्षा में भूमिका

यद्यपि रिट (Writ) जारी करने का अधिकार उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के पास है, फिर भी अधीनस्थ न्यायालय मौलिक अधिकारों की व्यावहारिक सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये न्यायालय नागरिकों को शीघ्र विधिक उपचार प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते हैं तथा कानून के अनुसार न्याय उपलब्ध कराते हैं।

न्यायिक पुनर्विलोकन तथा संवैधानिक सीमाएँ

अधीनस्थ न्यायालय मामलों की सुनवाई के दौरान कानूनों का अनुप्रयोग करते हैं, किंतु किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने का अंतिम अधिकार उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के पास होता है। इसलिए संवैधानिक मामलों में अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय की समीक्षा के अधीन होते हैं।

न्याय प्रदान करने में भूमिका

अधीनस्थ न्यायालय स्थानीय स्तर पर जनता को न्याय प्रदान करते हैं और न्यायिक व्यवस्था की आधारशिला माने जाते हैं। ये न्यायालय दीवानी, आपराधिक, पारिवारिक, संपत्ति, उपभोक्ता अधिकारों तथा अन्य विधिक विवादों की सुनवाई करते हैं। चूँकि जनता का प्रत्यक्ष संपर्क मुख्यतः इन्हीं न्यायालयों से होता है, इसलिए न्याय के प्रभावी वितरण में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की भूमिका

जिला एवं सत्र न्यायाधीश जिले की न्यायपालिका का प्रमुख होता है तथा न्यायिक प्रशासन और न्यायालयों के संचालन की निगरानी करता है। अन्य न्यायाधीश अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में मामलों की सुनवाई करते हैं और संविधान तथा कानून के अनुसार निर्णय देते हैं। सभी न्यायाधीश न्यायिक निष्पक्षता तथा विधि के शासन के सिद्धांतों का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं।

अधीनस्थ न्यायालयों के प्रकार

1. **जिला एवं सत्र न्यायालय (District & Sessions Court):** जिला एवं सत्र न्यायालय प्रत्येक जिले में अधीनस्थ न्यायपालिका का सर्वोच्च न्यायालय होता है। दीवानी मामलों में इसका प्रमुख जिला न्यायाधीश (District Judge) तथा आपराधिक मामलों में सत्र न्यायाधीश (Sessions Judge) कहलाता है।

शक्तियाँ:

- दीवानी मामलों, जैसे संपत्ति, अनुबंध तथा वित्तीय विवादों की सुनवाई।

- हत्या, डकैती तथा बलात्कार जैसे गंभीर आपराधिक मामलों की सुनवाई।

- सत्र न्यायाधीश मृत्युदंड का निर्णय दे सकता है, किंतु उसकी पुष्टि संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक होता है।

2. **अतिरिक्त सत्र न्यायालय (Additional Sessions Court):** कुछ जिलों में मामलों की अधिक संख्या के कारण अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं, जो जिला एवं सत्र न्यायाधीश की सहायता करते हैं।

शक्तियाँ:

- गंभीर आपराधिक मामलों की सुनवाई।

- कानून के अनुसार सत्र न्यायाधीश की अधिकांश शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं।

- मृत्युदंड के मामलों में उच्च न्यायालय की पुष्टि आवश्यक होती है।

3. **मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट न्यायालय (Chief Judicial Magistrate Court - CJM):** प्रत्येक जिले में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अधीनस्थ आपराधिक मजिस्ट्रेटों की निगरानी करता है।

शक्तियाँ:

- आपराधिक मामलों की सुनवाई तथा दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार दंड प्रदान करना।

- जमानत, पुलिस जाँच तथा प्रारंभिक न्यायिक कार्यवाहियों की निगरानी।

- उपयुक्त परिस्थितियों में प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR) दर्ज करने अथवा जाँच के आदेश जारी करना।

4. **न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी (Judicial Magistrate First Class - JMFC):** ये मजिस्ट्रेट जिले के विभिन्न क्षेत्रों में आपराधिक मामलों की सुनवाई करते हैं।

शक्तियाँ:

- अपेक्षाकृत कम गंभीर अपराधों की सुनवाई।
- चोरी, धोखाधड़ी, मारपीट तथा अन्य सामान्य आपराधिक मामलों का निर्णय।
- कानून के अनुसार निर्धारित सीमा तक दंड अथवा जुर्माना लगाना।

5. **न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी (Judicial Magistrate Second Class):** ये न्यायालय साधारण प्रकृति के आपराधिक मामलों की सुनवाई करते हैं।

शक्तियाँ:

- यातायात नियमों के उल्लंघन, छोटे-मोटे झगड़ों तथा लोक व्यवस्था से संबंधित मामलों का निर्णय।
- कानून के अनुसार सीमित दंड अथवा जुर्माना लगाना।

6. **सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग) [Civil Judge (Junior Division)] के न्यायालय:** ये न्यायालय अपेक्षाकृत कम मूल्य के दीवानी मामलों की सुनवाई करते हैं।

शक्तियाँ:

- किरायेदारी, ऋण तथा छोटे संपत्ति संबंधी विवादों की सुनवाई।
- राज्य के कानूनों के अनुसार निर्धारित वित्तीय सीमा तक के मामलों की सुनवाई।

7. **सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग) [Civil Judge (Senior Division)] के न्यायालय:** ये न्यायालय अधिक मूल्य तथा जटिल दीवानी मामलों की सुनवाई करते हैं।

शक्तियाँ:

- भूमि एवं संपत्ति से संबंधित बड़े विवादों की सुनवाई।
- वाणिज्यिक तथा संविदात्मक (Contractual) मामलों की सुनवाई।

- इनके निर्णयों के विरुद्ध अपील जिला न्यायाधीश अथवा संबंधित अपीलीय न्यायालय में की जा सकती है।

8. **विशेष न्यायालय (Special Courts):** विशेष कानूनों के अंतर्गत स्थापित न्यायालय विशेष प्रकार के मामलों की सुनवाई करते हैं।

मुख्य उदाहरण:

- **फास्ट ट्रैक न्यायालय (Fast Track Courts):** मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए।

- **भ्रष्टाचार निरोधक न्यायालय (Anti-Corruption Courts):** भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों की सुनवाई के लिए।

- **एनडीपीएस न्यायालय (NDPS Courts):** मादक पदार्थों (Narcotic Drugs and Psychotropic Substances) से संबंधित अपराधों की सुनवाई के लिए।

- **पॉक्सो न्यायालय (POCSO Courts):** बच्चों के विरुद्ध यौन अपराधों से संबंधित मामलों की सुनवाई के लिए।

9. **वाणिज्यिक तथा विशेष अधिकरण (Commercial and Special Tribunals):** कुछ विशेष प्रकार के विवादों के निपटारे के लिए पृथक न्यायिक तथा अर्ध-न्यायिक संस्थाएँ स्थापित की गई हैं।

मुख्य संस्थाएँ:

- **राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण (National Company Law Tribunal - NCLT)**

- **ऋण वसूली अधिकरण (Debt Recovery Tribunal - DRT)**

- **वाणिज्यिक न्यायालय (Commercial Courts)**

ये संस्थाएँ कंपनियों, बैंकिंग, दिवालियापन तथा वाणिज्यिक विवादों से संबंधित मामलों की सुनवाई करती हैं।

10. **लोक अदालतें (Lok Adalats):** लोक अदालतें वैकल्पिक विवाद समाधान (Alternative Dispute Resolution - ADR) प्रणाली का एक महत्वपूर्ण भाग हैं, जिनका उद्देश्य मामलों का सौहार्दपूर्ण एवं त्वरित निपटारा करना है।

विशेषताएँ:

- दीवानी, पारिवारिक तथा कुछ समझौता योग्य (Compoundable) आपराधिक मामलों का निपटारा।

- कम खर्च में तथा शीघ्र न्याय उपलब्ध कराना।

- पक्षकारों की सहमति से दिया गया निर्णय अंतिम माना जाता है और सामान्यतः उसके विरुद्ध अपील का प्रावधान नहीं होता।

अधीनस्थ न्यायालयों का महत्व

अधीनस्थ न्यायालय भारतीय न्यायिक व्यवस्था की आधारशिला हैं। ये जनता को स्थानीय स्तर पर न्याय प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करते हैं, विधिक विवादों के समाधान को संभव बनाते हैं तथा विधि के शासन (Rule of Law) को सुदृढ़ करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाँति अधीनस्थ न्यायालय भी न्याय व्यवस्था का एक अनिवार्य तथा प्रभावी अंग हैं।

▪ न्यायपालिका की स्वतंत्रता

भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of Judiciary) संविधान का एक मूलभूत स्तंभ है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि न्यायालय किसी भी राजनीतिक, प्रशासनिक अथवा अन्य प्रकार के दबाव से मुक्त होकर न्याय प्रदान करें। स्वतंत्र न्यायपालिका विधि के शासन (Rule of Law), मौलिक अधिकारों की रक्षा तथा संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 50 में शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) के सिद्धांत के अंतर्गत न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक एवं स्वतंत्र रखने का निर्देश दिया गया है। इसी सिद्धांत के कारण न्यायालय सरकार के कार्यों तथा कानूनों की निष्पक्ष समीक्षा कर सकते हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति और पद से हटाने के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं, ताकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनी रहे और न्यायाधीशों पर किसी प्रकार का सरकारी दबाव न हो। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, किंतु यह नियुक्ति न्यायिक अनुशंसाओं के आधार पर होती है, जिसे कॉलेजियम प्रणाली (Collegium System) कहा जाता है। इस प्रणाली में भारत के मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice of India) तथा सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश शामिल होते हैं, जो न्यायाधीशों के नामों की अनुशंसा करते हैं।

इसी प्रकार किसी न्यायाधीश को पद से हटाना एक अत्यंत कठोर एवं जटिल संवैधानिक प्रक्रिया है, जो केवल महाभियोग (Impeachment) के माध्यम से ही संभव है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को पद से हटाने की प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 124(4) में तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिए अनुच्छेद 217 में वर्णित है। यह प्रक्रिया संसद की स्वीकृति के बिना पूर्ण नहीं हो सकती, जिससे न्यायाधीशों को पूर्ण संस्थागत संरक्षण प्राप्त होता है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुदृढ़ करने के लिए न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों को भी संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 125 तथा अनुच्छेद 221 के अंतर्गत न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्तों में मनमाने ढंग से कटौती नहीं की जा सकती, ताकि वे आर्थिक दबाव से मुक्त होकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे संविधान और कानून के अनुसार स्वतंत्र रूप से निर्णय दें। किसी भी राजनीतिक दल, सरकारी संस्था अथवा प्रभावशाली व्यक्ति को न्यायिक निर्णयों को प्रभावित करने का अधिकार नहीं है। यही स्वतंत्रता न्यायपालिका को निष्पक्ष न्याय प्रदान करने में सक्षम बनाती है।

न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे संसद अथवा राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाए गए कानूनों तथा सरकारी कार्यों की समीक्षा करें और यदि कोई कानून संविधान के विपरीत हो, तो उसे असंवैधानिक घोषित कर दें। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 13, 32 तथा 226 से प्राप्त होता है।

न्यायपालिका को कार्यपालिका और विधायिका से पृथक रखने का उद्देश्य यह है कि कोई भी संस्था दूसरी संस्था के अधिकारों में अनावश्यक हस्तक्षेप न करे। इसी कारण न्यायालय राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्रियों अथवा किसी भी सरकारी संस्था के निर्णयों की संवैधानिक समीक्षा करने का अधिकार रखते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों की भी निगरानी करते हैं, ताकि न्यायिक व्यवस्था की स्वायत्तता बनी रहे। अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों की पदोन्नति, स्थानांतरण तथा प्रशासनिक मामलों में उच्च न्यायालयों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जिससे न्यायिक स्वतंत्रता और अधिक सुदृढ़ होती है।

न्यायपालिका की गरिमा और स्वायत्तता की रक्षा के लिए न्यायालय की अवमानना (Contempt of Court) से संबंधित कानून भी विद्यमान हैं। इन कानूनों का उद्देश्य न्यायालयों की शक्तियों तथा उनके निर्णयों के सम्मान को सुनिश्चित करना है, ताकि न्याय प्रदान करने की प्रक्रिया प्रभावित न हो।

समग्र रूप से न्यायपालिका की स्वतंत्रता भारतीय लोकतंत्र की आधारशिलाओं में से एक है। यही स्वतंत्रता न्यायालयों को संविधान का संरक्षक, मौलिक अधिकारों का रक्षक तथा विधि के शासन का संरक्षक बनाती है, जिसके माध्यम से प्रत्येक नागरिक को निष्पक्ष और न्यायसंगत न्याय प्रदान किया जाता है।

3.4 निर्वाचन प्रणाली

- **मताधिकार**

भारत में मतदान का अधिकार एक महत्वपूर्ण संवैधानिक एवं विधिक अधिकार है, जिसके माध्यम से नागरिक अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। भारतीय संविधान के अनुसार जनप्रतिनिधियों का चुनाव सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) के आधार पर किया जाता है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक पात्र नागरिक को मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। मतदान का अधिकार लोकतंत्र की आधारशिला तथा जनसत्ता (Popular Sovereignty) के सिद्धांत का प्रतीक है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 326 के अंतर्गत लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं के चुनाव सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर आयोजित किए जाते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक भारतीय नागरिक, जिसकी आयु 18 वर्ष या उससे अधिक हो तथा जिसे कानून के अनुसार अयोग्य घोषित न किया गया हो, मतदान करने का अधिकार रखता है। इस अधिकार के प्रयोग में धर्म, जाति, नस्ल, भाषा, लिंग अथवा आर्थिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता।

मतदान करने के लिए किसी नागरिक का नाम निर्वाचक नामावली (Electoral Roll) में दर्ज होना आवश्यक है। भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India) मतदाता सूचियों की तैयारी, पुनरीक्षण तथा उनकी शुद्धता सुनिश्चित करता है, ताकि सभी पात्र नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकें। मतदान की पूरी प्रक्रिया की निगरानी भी निर्वाचन आयोग द्वारा की जाती है, जो स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी चुनाव कराने के लिए उत्तरदायी है।

भारत में सामान्यतः मतदान इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (Electronic Voting Machine - EVM) के माध्यम से किया जाता है। चुनाव प्रक्रिया की पारदर्शिता बढ़ाने के लिए वीवीपैट (Voter Verifiable Paper Audit Trail - VVPAT) प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है, जिसके माध्यम से मतदाता यह सत्यापित कर सकता है कि उसका मत सही उम्मीदवार के पक्ष में दर्ज हुआ है। हालांकि, कुछ नगर निकाय तथा पंचायत चुनावों में संबंधित राज्य निर्वाचन आयोग के नियमों के अनुसार मतपत्र (Ballot Paper) का उपयोग भी किया जा सकता है। मतदान की प्रक्रिया पूर्णतः गोपनीय रखी जाती है और प्रत्येक नागरिक को बिना किसी दबाव या भय के अपने मत का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है।

मतदान का अधिकार नागरिकों को यह शक्ति प्रदान करता है कि वे अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करें तथा सरकारी नीतियों और निर्णयों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करें। इसी के माध्यम से जनता अपनी पसंद की सरकार का गठन करती है और लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाती है। दिव्यांग व्यक्तियों, वरिष्ठ नागरिकों

तथा विशेष परिस्थितियों वाले मतदाताओं के लिए भी निर्वाचन आयोग विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराता है, ताकि प्रत्येक पात्र नागरिक अपने मताधिकार का सहजता से प्रयोग कर सके।

समग्र रूप से, मतदान का अधिकार भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है। यह एक संवैधानिक एवं विधिक अधिकार है, जो नागरिकों को सरकार के गठन में भाग लेने, अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने तथा देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का अवसर प्रदान करता है।

▪ निर्वाचन प्रक्रिया

भारत में निर्वाचन प्रक्रिया लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक मूलभूत अंग है, जिसके माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। यह प्रक्रिया भारतीय संविधान तथा निर्वाचन संबंधी कानूनों के अंतर्गत स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी ढंग से संपन्न की जाती है, ताकि जनता की इच्छा और मत का सही प्रतिनिधित्व हो सके। निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से केंद्र, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर सरकारों का गठन होता है, जिससे लोकतंत्र सुदृढ़ और सक्रिय बना रहता है।

निर्वाचन प्रक्रिया की शुरुआत निर्वाचन क्षेत्रों (Constituencies) के निर्धारण से होती है। लोकसभा, राज्य विधानसभाओं तथा स्थानीय निकायों के चुनावों के लिए अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र निर्धारित किए जाते हैं। परिसीमन (Delimitation) का उद्देश्य जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व को संतुलित बनाना है, ताकि प्रत्येक नागरिक को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। संसदीय चुनावों के लिए देश को विभिन्न लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है, जबकि प्रत्येक राज्य की अपनी विधान सभा के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र निर्धारित होते हैं। इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं तथा शहरी स्थानीय निकायों के चुनावों के लिए भी पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाते हैं।

भारत में चुनावों के आयोजन एवं निगरानी की जिम्मेदारी भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India) के पास है, जो संविधान के अनुच्छेद 324 के अंतर्गत स्थापित एक स्वायत्त संस्था है। निर्वाचन आयोग चुनाव कार्यक्रम की घोषणा करता है, मतदाता सूचियों की तैयारी एवं पुनरीक्षण करता है, आदर्श आचार संहिता (Model Code of Conduct) लागू करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि चुनाव स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी ढंग से संपन्न हों।

निर्वाचन प्रक्रिया विभिन्न संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत संचालित होती है। चुनाव प्रचार, चुनावी व्यय, राजनीतिक प्रचार, उम्मीदवारों की योग्यता तथा मतदान की प्रक्रिया से संबंधित नियम मुख्यतः जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (Representation of the People Act) तथा अन्य निर्वाचन कानूनों में निर्धारित किए गए हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य निर्वाचन प्रक्रिया की पारदर्शिता और निष्पक्षता बनाए रखना है।

भारत में मतदान के लिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (Electronic Voting Machine - EVM) का उपयोग किया जाता है, जिसकी सहायता से मतों का रिकॉर्ड और उनकी गणना अधिक तेज़ी तथा शुद्धता के साथ की जाती है। चुनावी पारदर्शिता को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए वीवीपैट (Voter Verifiable Paper Audit Trail - VVPAT) प्रणाली का भी उपयोग किया जाता है, जिसके माध्यम से मतदाता कुछ समय के लिए यह सत्यापित कर सकता है कि उसका मत सही उम्मीदवार के पक्ष में दर्ज हुआ है। सामान्यतः लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव EVM तथा VVPAT के माध्यम से कराए जाते हैं, जबकि कुछ नगर निकाय एवं

पंचायत चुनावों में संबंधित राज्य निर्वाचन आयोग के नियमों के अनुसार मतपत्र (Ballot Paper) के माध्यम से भी मतदान कराया जा सकता है।

चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए संविधान और कानून के अंतर्गत कुछ निर्धारित योग्यताएँ हैं। उदाहरण के लिए, लोकसभा का सदस्य बनने के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष निर्धारित की गई है। उम्मीदवार का भारतीय नागरिक होना तथा कानून के अनुसार अयोग्य घोषित न किया गया होना आवश्यक है। अन्य योग्यताएँ जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अंतर्गत निर्धारित की गई हैं।

चुनाव से पूर्व राजनीतिक दल और उम्मीदवार अपना चुनाव प्रचार करते हैं, ताकि वे जनता को अपने विचारों, कार्यक्रमों और नीतियों से अवगत करा सकें। चुनाव प्रचार के दौरान जनसभाएँ, रैलियाँ, सार्वजनिक बैठकें, जनसंचार माध्यम तथा सोशल मीडिया का उपयोग किया जाता है, किंतु सभी गतिविधियाँ निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित आदर्श आचार संहिता के अंतर्गत संपन्न की जाती हैं।

मतदान के दिन मतदाता अपने संबंधित मतदान केंद्र (Polling Station) पर जाकर मतदान करते हैं। मतदान से पहले मतदाता की पहचान का सत्यापन किया जाता है, जिसके बाद वह इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के माध्यम से अपनी पसंद के उम्मीदवार के पक्ष में अपना मत देता है। मतदान की पूरी प्रक्रिया पूर्णतः गोपनीय रखी जाती है, ताकि प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र रूप से अपने मत का प्रयोग कर सके।

मतदान समाप्त होने के बाद मतों की गणना की जाती है और परिणाम घोषित किए जाते हैं। जिस उम्मीदवार को अपने निर्वाचन क्षेत्र में सर्वाधिक मत प्राप्त होते हैं, उसे निर्वाचित घोषित किया जाता है। चुनाव परिणामों की घोषणा निर्वाचन आयोग की निगरानी में पारदर्शी ढंग से की जाती है।

निर्वाचन प्रक्रिया की पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए निर्वाचन आयोग विभिन्न सुरक्षा एवं प्रशासनिक उपाय अपनाता है। मतदान केंद्रों की निगरानी, मतदान मशीनों की सुरक्षा, निर्वाचन नियमों का पालन तथा परिणामों का समय पर प्रकाशन इस प्रक्रिया के प्रमुख अंग हैं।

समग्र रूप से, निर्वाचन प्रक्रिया भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है। इसके माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है और सरकार के गठन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती है। संविधान तथा निर्वाचन आयोग की निगरानी में संपन्न होने वाले स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी चुनाव ही लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती और जनता के विश्वास की गारंटी हैं।

▪ निर्वाचन आयोग की भूमिका

भारत में चुनावों के स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी संचालन की जिम्मेदारी भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India) पर होती है। यह एक स्वायत्त संवैधानिक संस्था है, जिसकी स्थापना संविधान के अनुच्छेद 324 के अंतर्गत की गई है। निर्वाचन आयोग का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि चुनाव लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुसार संपन्न हों और जनता अपनी स्वतंत्र इच्छा से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सके। यह उल्लेखनीय है कि लोकसभा, राज्यसभा, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा राज्य विधानसभाओं के चुनाव भारत निर्वाचन आयोग द्वारा कराए जाते हैं, जबकि पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों के चुनाव संबंधित राज्यों के राज्य निर्वाचन आयोग (State Election Commission) द्वारा आयोजित किए जाते हैं।

निर्वाचन आयोग का सबसे महत्वपूर्ण दायित्व चुनावों का आयोजन एवं उनकी निगरानी करना है। यह चुनाव कार्यक्रम की घोषणा करता है, मतदान की व्यवस्थाएँ करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि संपूर्ण निर्वाचन प्रक्रिया कानून एवं निर्धारित नियमों के अनुसार संपन्न हो। आयोग मतदाता सूचियों की तैयारी तथा उनके पुनरीक्षण का कार्य भी करता है, ताकि प्रत्येक पात्र नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग कर सके।

निर्वाचन आयोग आदर्श आचार संहिता (Model Code of Conduct) के पालन को सुनिश्चित करने के लिए भी उत्तरदायी है। चुनाव प्रचार के दौरान यह राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों की गतिविधियों पर निगरानी रखता है और आचार संहिता के उल्लंघन की स्थिति में आवश्यक कार्रवाई करता है। इसी प्रकार राजनीतिक दलों का पंजीकरण, चुनावी व्यय की निगरानी तथा चुनाव संबंधी शिकायतों की जांच भी इसके प्रमुख दायित्वों में शामिल हैं।

आयोग इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (Electronic Voting Machine - EVM) तथा वीवीपैट (Voter Verifiable Paper Audit Trail - VVPAT) प्रणाली के उपयोग की निगरानी करता है, ताकि मतदान की प्रक्रिया पारदर्शी एवं विश्वसनीय बनी रहे। मतदान समाप्त होने के बाद मतों की गणना तथा चुनाव परिणामों की घोषणा की व्यवस्था भी निर्वाचन आयोग द्वारा ही की जाती है।

समग्र रूप से, निर्वाचन आयोग भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्तंभ है, जो चुनावों की पारदर्शिता, निष्पक्षता तथा जनता के विश्वास को बनाए रखने में मूलभूत भूमिका निभाता है।

अध्याय 4 : स्थानीय सरकार

4.1 परिचय

- स्थानीय सरकार की अवधारणा और महत्व
- भारत में स्थानीय सरकार की संवैधानिक पृष्ठभूमि
- 73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन (1992)

4.2 ग्रामीण सरकार : पंचायती राज

- संवैधानिक स्थिति
- पंचायती राज की संरचना
- अधिकार और उत्तरदायित्व

4.3 शहरी सरकार : म्यूनिसिपल गवर्नेंस

- संवैधानिक स्थिति
- शहरी सरकार की संरचना
- अधिकार और उत्तरदायित्व

अध्याय 4 : स्थानीय सरकार

4.1 परिचय

▪ स्थानीय सरकार की अवधारणा और महत्व

अवधारणा

स्थानीय सरकार (Local Government) किसी भी देश की प्रशासनिक और राजनीतिक व्यवस्था का वह स्तर है, जो प्रत्यक्ष रूप से जनता की स्थानीय समस्याओं के समाधान तथा विकास कार्यों की निगरानी करता है। यह सरकार केंद्र तथा राज्य सरकार के अधीन होते हुए भी स्वायत्त स्वरूप रखती है और जनता को अपने क्षेत्र में स्व-प्रशासन के अधिकार प्रदान करती है।

स्थानीय सरकार दो स्तरों पर स्थापित होती है:

1. **ग्रामीण स्थानीय सरकार (पंचायती राज) -** जो गाँव के स्तर पर कार्य करती है।

2. **शहरी स्थानीय सरकार (नगरपालिका संस्थाएँ) -** जो शहरों तथा कस्बों में सरकारी कार्यों का संचालन करती हैं।

भारतीय संविधान में वर्ष 1992 के 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से स्थानीय सरकार को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, ताकि यह व्यवस्था प्रभावी और सुदृढ़ बन सके।

महत्व

स्थानीय सरकार किसी भी लोकतांत्रिक देश में जनभागीदारी, स्वायत्तता तथा स्थानीय विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होती है। इसका महत्व निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होता है:

1. **जनता की समस्याओं के त्वरित समाधान में सहायक:** चूँकि स्थानीय सरकार प्रत्यक्ष रूप से जनता से जुड़ी होती है, इसलिए पानी, बिजली, स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सड़कों जैसी समस्याओं के शीघ्र समाधान में सहायता करती है।
2. **जनभागीदारी तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बढ़ावा:** स्थानीय सरकार जनता को निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर प्रदान करती है, जिससे लोकतंत्र सुदृढ़ होता है।

3. **केंद्र तथा राज्य सरकार पर भार कम करना:** यदि प्रत्येक समस्या केंद्र या राज्य सरकार के पास जाए, तो उन पर अनावश्यक भार बढ़ जाता है। स्थानीय सरकार इस भार को विभाजित करके शासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाती है।
4. **स्थानीय विकास तथा स्वायत्तता:** स्थानीय सरकार के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्र की विशिष्ट समस्याओं के अनुरूप विकास योजनाएँ बनाई जा सकती हैं, जो केंद्र या राज्य सरकार के लिए संभव नहीं होता।
5. **आर्थिक विकास तथा रोजगार के अवसर:** स्थानीय सरकार छोटे व्यवसायों, कृषि तथा ग्रामीण एवं शहरी विकास योजनाओं को प्रोत्साहित करती है, जिससे स्थानीय स्तर पर अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है और रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं।
6. **जन उत्तरदायित्व तथा पारदर्शिता:** चूँकि स्थानीय प्रतिनिधि जनता के बीच ही उपस्थित रहते हैं, इसलिए वे जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते हैं। इससे भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाने तथा पारदर्शिता सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है।

▪ भारत में स्थानीय सरकार की संवैधानिक पृष्ठभूमि

भारत में स्थानीय सरकार की अवधारणा नई नहीं है, बल्कि इसका अस्तित्व प्राचीन काल से रहा है। परंपरागत रूप से गाँवों के स्तर पर स्वायत्त पंचायतें कार्य करती थीं, जो विवादों के समाधान तथा स्थानीय प्रशासनिक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। तथापि, आधुनिक संवैधानिक ढाँचे में स्थानीय सरकार को औपचारिक संवैधानिक मान्यता वर्ष 1992 में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से प्रदान की गई। इससे पहले स्थानीय सरकार की व्यवस्था विभिन्न कानूनों तथा राज्य सरकारों की अलग-अलग व्यवस्थाओं पर आधारित थी, जिसमें कोई एकरूपता नहीं थी।

संविधान में प्रारंभिक स्थिति

जब भारतीय संविधान वर्ष 1950 में लागू हुआ, तब उसमें स्थानीय सरकार को स्पष्ट रूप से कोई सशक्त संवैधानिक दर्जा नहीं दिया गया था। तथापि, संविधान के राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों (Directive Principles of State Policy) के अंतर्गत अनुच्छेद 40 में यह प्रावधान किया गया कि राज्य एक प्रभावी पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना करेंगे। अनुच्छेद 40 में कहा गया है:

"राज्य उपयुक्त विधि-निर्माण के माध्यम से ग्राम स्तर पर स्वायत्त पंचायतों की स्थापना को प्रोत्साहित करेगा तथा उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्व-शासन के योग्य बना सकें।"

किन्तु, चूँकि राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (Justiciable) नहीं होते, इसलिए अनेक राज्यों ने पंचायती व्यवस्था तो स्थापित की, परन्तु यह एक कमजोर और कम प्रभावी व्यवस्था बनी रही, जिसे कोई संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं था।

1957 : बलवंत राय मेहता समिति और पंचायती राज की आधारशिला

वर्ष 1957 में बलवंत राय मेहता समिति का गठन किया गया, जिसने भारत में पंचायती राज व्यवस्था स्थापित करने की सिफारिश की। समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिए:

- पंचायती व्यवस्था तीन स्तरों पर होनी चाहिए:
    1. ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर)
    2. पंचायत समिति (तहसील अथवा ब्लॉक स्तर)

3. जिला परिषद (जिला स्तर)

- स्थानीय सरकारों को विकास कार्यों का अधिकार दिया जाए।
- जनता को स्थानीय स्तर पर निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर दिया जाए।

इस रिपोर्ट के बाद वर्ष 1959 में पहली बार राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था को औपचारिक रूप से लागू किया गया। इसके पश्चात अनेक राज्यों ने इस मॉडल को अपनाया। फिर भी यह व्यवस्था राज्य सरकारों पर निर्भर रही और इसे संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था।

1977 : अशोक मेहता समिति और आगे के सुधार

वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार ने अशोक मेहता समिति का गठन किया, जिसका उद्देश्य कमजोर पड़ चुकी पंचायती राज व्यवस्था को पुनः सक्रिय और सुदृढ़ बनाना था। समिति ने वर्ष 1978 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें कीं:

- **द्विस्तरीय व्यवस्था (Two-tier System):** बलवंत राय मेहता समिति द्वारा प्रस्तावित त्रिस्तरीय व्यवस्था के विपरीत, इस समिति ने पंचायती व्यवस्था को केवल दो स्तरों में विभाजित करने का सुझाव दिया:

  1. **जिला परिषद:** जिला स्तर पर, जिसे सभी विकास कार्यों का प्रमुख केंद्र बनाया जाए।
  2. **मंडल पंचायत:** ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर) को समाप्त करके 15,000 से 20,000 की जनसंख्या वाले कई गाँवों को मिलाकर एक “मंडल पंचायत” स्थापित की जाए।

- **राजनीतिक दलों की भागीदारी:** पंचायती चुनावों के सभी स्तरों पर राजनीतिक दलों को अपने आधिकारिक चुनाव-चिह्नों के साथ भाग लेने की अनुमति दी जाए।
- **संवैधानिक संरक्षण तथा वित्तीय अधिकार:** स्थानीय सरकारों को कर लगाने के अनिवार्य अधिकार दिए जाएँ, ताकि वे वित्तीय संसाधनों के लिए राज्य सरकारों पर निर्भर न रहें, तथा उन्हें संविधान के माध्यम से संरक्षण प्रदान किया जाए।
- **नियमित चुनाव की व्यवस्था:** यदि किसी पंचायत को उसकी अवधि पूरी होने से पहले भंग कर दिया जाए, तो छह माह के भीतर पुनः चुनाव कराना अनिवार्य किया जाए।

केंद्र स्तर पर जनता पार्टी की सरकार समय से पहले गिर जाने के कारण इन सिफारिशों को पूरे देश में लागू नहीं किया जा सका। तथापि, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल तथा आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों ने इस रिपोर्ट के आधार पर अपनी स्थानीय शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

1989 : संविधान संशोधन का पहला प्रयास

वर्ष 1989 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के उद्देश्य से 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, किन्तु इसे राज्यसभा ने अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात वर्ष 1991 में नरसिंह राव सरकार ने पुनः संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे वर्ष 1992 में स्वीकृति मिल गई। इसके परिणामस्वरूप 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से स्थानीय सरकार को संवैधानिक संरक्षण प्रदान कर दिया गया।

▪ 73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन (1992)

वर्ष 1992 में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से भारत में स्थानीय सरकार को एक सुदृढ़ संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इन संशोधनों का उद्देश्य स्थानीय सरकारों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करना, जनभागीदारी सुनिश्चित करना तथा विकास कार्यों को अधिक प्रभावी बनाना था। 73वाँ संशोधन ग्रामीण स्थानीय सरकार (पंचायती राज) तथा 74वाँ संशोधन शहरी स्थानीय सरकार (नगरपालिका संस्थाओं) से संबंधित था।

73वाँ संविधान संशोधन (1992) - ग्रामीण स्थानीय सरकार (पंचायती राज)

73वें संविधान संशोधन के माध्यम से ग्रामीण स्थानीय सरकार (पंचायती राज) को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा संविधान में अनुच्छेद 243 से 243O तक के प्रावधान जोड़े गए। इस संशोधन के अंतर्गत भारत में पंचायती व्यवस्था को त्रिस्तरीय संरचना में विभाजित किया गया:

1. ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर)
2. पंचायत समिति (तहसील अथवा ब्लॉक स्तर)
3. जिला परिषद (जिला स्तर)

प्रमुख बिंदु

1. ग्राम सभा (Village Assembly) को पंचायती व्यवस्था की मूल संस्था घोषित किया गया।
2. सभी पंचायतों के चुनाव प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद कराना अनिवार्य किया गया।
3. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान किया गया (अनुच्छेद 243D)।
4. राज्यों को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य किया गया कि वे पंचायतों को वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराएँ तथा उन्हें कर एकत्र करने के अधिकार प्रदान करें (अनुच्छेद 243H)।
5. प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग (State Finance Commission) के गठन का प्रावधान किया गया (अनुच्छेद 243I)।
6. राज्य निर्वाचन आयोग (State Election Commission) के माध्यम से स्थानीय निकायों के चुनाव कराना सुनिश्चित किया गया (अनुच्छेद 243K)।

ग्यारहवीं अनुसूची (Eleventh Schedule) को संविधान में जोड़ा गया, जिसमें 29 विषय शामिल किए गए हैं, जिन पर पंचायतों को अधिकार प्राप्त हैं, जैसे कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल तथा महिला एवं बाल कल्याण।

74वाँ संविधान संशोधन (1992) - शहरी स्थानीय सरकार (नगरपालिका संस्थाएँ)

74वें संविधान संशोधन के माध्यम से शहरी स्थानीय सरकार (नगरपालिका संस्थाओं) को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया तथा संविधान में अनुच्छेद 243P से 243ZG तक के प्रावधान जोड़े गए। इस संशोधन के अंतर्गत भारत में शहरी स्थानीय शासन को त्रिस्तरीय संरचना में विभाजित किया गया:

1. नगर निगम (बड़े शहर)
2. नगर परिषद (मध्यम आकार के शहर)
3. नगर पंचायत (छोटे शहर और कस्बे)

प्रमुख बिंदु

1. नगरपालिका संस्थाओं के सदस्यों (पार्षदों) के चुनाव जनता द्वारा कराना सुनिश्चित किया गया। महापौर के चुनाव की प्रक्रिया राज्य के कानूनों के अनुसार भिन्न हो सकती है; कुछ राज्यों में महापौर का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा किया जाता है, जबकि कुछ राज्यों में निर्वाचित पार्षद महापौर का चुनाव करते हैं।

2. शहरी स्थानीय सरकारों के वित्तीय अधिकारों को स्पष्ट किया गया, ताकि वे संपत्ति कर (Property Tax), व्यापार कर तथा अन्य करों और शुल्कों का संग्रह कर सकें (अनुच्छेद 243X)।

3. प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग (State Finance Commission) के गठन का प्रावधान किया गया (अनुच्छेद 243Y)।

4. राज्य सरकारों को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य किया गया कि स्थानीय निकायों के चुनाव कराने हेतु एक स्वतंत्र राज्य निर्वाचन आयोग (State Election Commission) की स्थापना की जाए (अनुच्छेद 243ZA)।

बारहवीं अनुसूची (Twelfth Schedule) को संविधान में जोड़ा गया, जिसमें 18 ऐसे विषय शामिल किए गए हैं, जिन पर शहरी स्थानीय सरकारों को अधिकार प्राप्त हैं, जैसे शहरी नियोजन, जलापूर्ति एवं जल निकासी, स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा परिवहन।

4.2 ग्रामीण सरकार : पंचायती राज

▪ संवैधानिक स्थिति

73वें संविधान संशोधन (1992) के माध्यम से भारत में ग्रामीण स्थानीय सरकार (पंचायती राज) को औपचारिक संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इससे पहले, यद्यपि अनेक राज्यों में पंचायती व्यवस्था विद्यमान थी, किन्तु वह किसी समान संवैधानिक ढाँचे के अंतर्गत नहीं आती थी और राज्य सरकारों के विवेक पर निर्भर थी। 73वें संविधान संशोधन ने स्थानीय सरकार को संविधान के अंतर्गत एक अनिवार्य एवं स्थायी संस्था का स्वरूप प्रदान किया।

73वाँ संविधान संशोधन (1992)

73वें संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 243 से 243-O तक के प्रावधान जोड़े गए, जिनके अंतर्गत–

पंचायती व्यवस्था को तीन स्तरों में विभाजित किया गया:

1. ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर पर)
2. पंचायत समिति (तहसील अथवा ब्लॉक स्तर पर)
3. जिला परिषद (जिला स्तर पर)

-सभी राज्यों को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य किया गया कि वे प्रत्येक पाँच वर्ष में पंचायती चुनाव कराएँ (अनुच्छेद 243-E)।

- ग्रामीण जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ग्राम सभा को अनिवार्य संस्था बनाया गया (अनुच्छेद 243-A)।

- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान किया गया (अनुच्छेद 243-D)।

- राज्य सरकारों को निर्देश दिया गया कि वे पंचायतों को वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करें (अनुच्छेद 243-H)।

- स्थानीय निकायों के चुनाव कराने की जिम्मेदारी राज्य निर्वाचन आयोग को सौंपी गई (अनुच्छेद 243-K)।

अनुच्छेद 243 से 243-O का विवरण

1. अनुच्छेद 243-A - ग्राम सभा की स्थापना तथा उसके अधिकार।

2. अनुच्छेद 243-B - त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था।

3. अनुच्छेद 243-C - पंचायतों का गठन तथा सीटों की संख्या।

4. अनुच्छेद 243-D - अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण।

5. अनुच्छेद 243-E - प्रत्येक पाँच वर्ष में पंचायती चुनाव कराना अनिवार्य।

6. अनुच्छेद 243-F - पंचायत सदस्यों की योग्यता एवं अयोग्यता।

7. अनुच्छेद 243-G - पंचायतों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व।

8. अनुच्छेद 243-H - वित्तीय अधिकार, स्थानीय कर तथा पंचायत निधियाँ।

9. अनुच्छेद 243-I - राज्य वित्त आयोग का गठन।

10. अनुच्छेद 243-J - पंचायतों के लेखे तथा लेखा-परीक्षण (ऑडिट)।

11. अनुच्छेद 243-K - राज्य निर्वाचन आयोग की जिम्मेदारी।

12. अनुच्छेद 243-L - संघ राज्य-क्षेत्रों (Union Territories) पर इन प्रावधानों का लागू होना।

13. अनुच्छेद 243-M - कुछ विशिष्ट क्षेत्रों (जैसे अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों) को इन प्रावधानों से अपवाद।

14. अनुच्छेद 243-N - विद्यमान कानूनों की संगति एवं अनुकूलन।

15. अनुच्छेद 243-O - पंचायती चुनावों को न्यायालय में चुनौती देने की सीमा।

ग्यारहवीं अनुसूची तथा उसमें सम्मिलित 29 विषय

73वें संविधान संशोधन के अंतर्गत भारतीय संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची (Eleventh Schedule) को जोड़ा गया, जिसमें 29 ऐसे विषय सम्मिलित किए गए हैं जिन्हें पंचायतों के कार्यक्षेत्र में रखा जा सकता है। इसका उद्देश्य ग्रामीण स्तर पर शक्तियों का विकेंद्रीकरण, स्थानीय विकास को प्रोत्साहन देना तथा जनभागीदारी को सुदृढ़ बनाना था। इन विषयों में कृषि, ग्रामीण विकास, आधारभूत सुविधाएँ, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण तथा अन्य लोक सेवाओं से संबंधित विषय शामिल हैं।

ग्यारहवीं अनुसूची के प्रमुख विषयों में कृषि तथा कृषि विस्तार, भूमि सुधार, लघु सिंचाई योजनाएँ, पशुपालन, डेयरी तथा कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन, सामाजिक वानिकी, लघु वनोपज, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल की व्यवस्था, ईंधन तथा चारा, ग्रामीण सड़कें, पुल तथा संचार के साधन, ग्रामीण विद्युतीकरण, गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, बाजार तथा मेले, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, सामाजिक कल्याण, कमजोर वर्गों का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) तथा सामुदायिक परिसंपत्तियों का रखरखाव शामिल हैं।

इन विषयों के माध्यम से पंचायतों को स्थानीय स्तर पर विकास योजनाओं की योजना-निर्माण तथा उनके क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया गया, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-शासन तथा जनभागीदारी को बढ़ावा मिला।

▪ पंचायती राज की संरचना

73वें संविधान संशोधन (1992) के अंतर्गत पंचायती राज व्यवस्था को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है–

1. ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर पर)
2. पंचायत समिति (तहसील अथवा ब्लॉक स्तर पर)
3. जिला परिषद (जिला स्तर पर)

ये तीनों स्तर मिलकर ग्रामीण स्थानीय शासन की एक समन्वित व्यवस्था का निर्माण करते हैं, जिसका उद्देश्य गाँवों का विकास, स्थानीय समस्याओं का समाधान तथा जनभागीदारी सुनिश्चित करना है।

1. ग्राम पंचायत (ग्राम स्तर पर)

ग्राम पंचायत ग्रामीण स्थानीय सरकार की सबसे निचली तथा मूल संस्था है, जो ग्राम स्तर पर जनकल्याण, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होती है। एक ग्राम पंचायत एक गाँव अथवा निकटवर्ती गाँवों के समूह से मिलकर बन सकती है। 73वें संविधान संशोधन के बाद ग्राम पंचायत को पंचायती राज व्यवस्था का मूल घटक घोषित किया गया, जिसके माध्यम से ग्रामीण जनता को स्थानीय स्तर पर शासन में भागीदारी का प्रभावी अवसर प्रदान किया गया। ग्राम पंचायत मुख्यतः ग्राम सभा, सरपंच (कुछ राज्यों में प्रधान) तथा निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनती है।

ग्राम सभा

ग्राम सभा ग्राम पंचायत का आधार स्तंभ तथा प्रत्यक्ष लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसमें गाँव के सभी वयस्क नागरिक शामिल होते हैं, अर्थात वे व्यक्ति जिनकी आयु 18 वर्ष या उससे अधिक हो तथा जिनका नाम संबंधित मतदाता सूची में दर्ज हो। ग्राम सभा का मुख्य उद्देश्य जनता को स्थानीय शासन में प्रत्यक्ष भागीदारी प्रदान करना तथा ग्राम पंचायत के कार्यों पर निगरानी रखना है।

ग्राम सभा के कार्य एवं अधिकार

1. ग्राम पंचायत के कार्यों की निगरानी करना तथा उनका मूल्यांकन करना।
2. गाँव के विकास से संबंधित योजनाओं एवं प्रस्तावों पर विचार करना तथा उन्हें स्वीकृति प्रदान करना।

3. पंचायत के वार्षिक बजट तथा व्यय का परीक्षण करना।

4. निर्वाचित प्रतिनिधियों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करना।

5. भ्रष्टाचार तथा अनियमितताओं से संबंधित शिकायतों पर विचार करना।

6. गाँव की समस्याओं एवं आवश्यकताओं की पहचान करना तथा उनके समाधान के लिए सुझाव देना।

ग्राम सभा की बैठकों के आयोजन से संबंधित नियम विभिन्न राज्यों के कानूनों के अनुसार निर्धारित किए जाते हैं। सामान्यतः वर्ष में कम-से-कम दो बैठकें आयोजित की जाती हैं, जबकि कुछ राज्यों में इससे अधिक बैठकों का भी प्रावधान है।

सरपंच अथवा प्रधान

सरपंच (कुछ राज्यों में प्रधान) ग्राम पंचायत का प्रमुख होता है तथा पंचायत के प्रशासनिक एवं विकासात्मक कार्यों की देखरेख करता है।

निर्वाचन

- अधिकांश राज्यों में सरपंच का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है।
- कुछ राज्यों में सरपंच का निर्वाचन ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्य करते हैं।
- अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) तथा महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान भी लागू होते हैं।

सरपंच के कार्य एवं अधिकार

1. ग्राम पंचायत की बैठकों की अध्यक्षता करना।

2. विकास योजनाओं तथा सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन की निगरानी करना।

3. सरकार से प्राप्त निधियों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चित करना।

4. पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़कों तथा अन्य आधारभूत सुविधाओं के विकास के लिए आवश्यक कदम उठाना।

5. ग्राम सभा और ग्राम पंचायत के बीच समन्वय बनाए रखना।

6. ग्राम सभा के समक्ष पंचायत के कार्य-निष्पादन तथा वित्तीय मामलों की रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

सरपंच का निर्वाचन सामान्यतः पाँच वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है।

ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्य

ग्राम पंचायत के सदस्य वे निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं, जो गाँव के विभिन्न वार्डों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक वार्ड से निर्वाचित प्रतिनिधि को "पंच" कहा जाता है और वह ग्राम पंचायत का सदस्य बनता है।

गठन

- ग्राम पंचायत में वार्डों की संख्या राज्य के कानूनों तथा स्थानीय जनसंख्या के अनुसार निर्धारित की जाती है।
- प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि का निर्वाचन किया जाता है।
- सभी सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष मतदान के माध्यम से किया जाता है।

सदस्यों के कार्य एवं अधिकार

1. गाँव के विकास तथा जनकल्याण से संबंधित विषयों पर विचार करना।
2. विकास योजनाओं की तैयारी तथा उनके क्रियान्वयन में भाग लेना।
3. सरपंच के साथ मिलकर पंचायत के प्रशासनिक कार्यों का संचालन करना।
4. जनता की शिकायतों को सुनना तथा उनके समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाना।
5. गाँव की समस्याओं को पंचायत समिति अथवा जिला परिषद के समक्ष प्रस्तुत करना।
6. ग्राम सभा की बैठकों में भाग लेना तथा जनहित के विषयों पर विचार-विमर्श करना।

ग्राम पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन भी सामान्यतः पाँच वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है। वे स्थानीय स्तर पर जनप्रतिनिधित्व तथा विकासात्मक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सारतः, ग्राम पंचायत ग्रामीण स्थानीय सरकार की मूल इकाई है, जो ग्राम सभा, सरपंच तथा निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनती है। यह संस्था गाँव के विकास, जनसेवाओं की उपलब्धता, स्थानीय समस्याओं के समाधान तथा लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 73वें संविधान संशोधन के बाद ग्राम पंचायतों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ, जिससे ग्रामीण स्तर पर स्व-शासन तथा जनभागीदारी को और अधिक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ।

2. पंचायत समिति (तहसील / ब्लॉक स्तर पर)

पंचायत समिति पंचायती राज व्यवस्था का दूसरा स्तर है, जो ग्राम पंचायत और जिला परिषद के बीच समन्वय का कार्य करती है। यह संस्था ब्लॉक अथवा तहसील स्तर पर स्थापित की जाती है और इसका उद्देश्य ग्राम पंचायतों का मार्गदर्शन करना, उनकी निगरानी करना तथा विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना है। एक ब्लॉक अथवा तहसील के अंतर्गत आने वाली सभी ग्राम पंचायतें पंचायत समिति के कार्यक्षेत्र में आती हैं। पंचायत समिति ग्रामीण विकास योजनाओं का समन्वित रूप से क्रियान्वयन करती है, ग्राम पंचायतों को वित्तीय तथा प्रशासनिक सहायता प्रदान करती है तथा विभिन्न सरकारी कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संस्था स्थानीय आवश्यकताओं तथा जिला स्तरीय योजना-निर्माण के बीच एक प्रभावी समन्वय भी स्थापित करती है।

अध्यक्ष (प्रधान)

पंचायत समिति का प्रमुख सामान्यतः अध्यक्ष अथवा प्रधान कहलाता है। उसका निर्वाचन राज्य के कानूनों के अनुसार किया जाता है, जो विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हो सकता है। अधिकांश राज्यों में अध्यक्ष का निर्वाचन पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाता है, जबकि कुछ राज्यों में अन्य निर्वाचन-पद्धतियाँ भी प्रचलित हो सकती हैं।

अध्यक्ष के कार्य एवं अधिकार

1. पंचायत समिति की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. विकास योजनाओं तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों की निगरानी करना।
3. ब्लॉक स्तर पर विभिन्न सरकारी विभागों के बीच समन्वय स्थापित करना।
4. ग्राम पंचायतों की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को जिला स्तर तक पहुँचाना।

5. सरकारी निधियों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चित करना।

6. शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, जलापूर्ति, सड़कों तथा अन्य विकास योजनाओं की निगरानी करना।

पंचायत समिति के सदस्य

पंचायत समिति विभिन्न प्रतिनिधियों से मिलकर बनती है, जिसका गठन राज्य के कानूनों के अनुसार किया जाता है। सामान्यतः इसमें ब्लॉक के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित प्रतिनिधि शामिल होते हैं। कुछ राज्यों में ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधि, स्थानीय जनप्रतिनिधि तथा अन्य नामित सदस्य भी इसका हिस्सा हो सकते हैं।

सदस्यों के कार्य एवं अधिकार

1. ब्लॉक अथवा तहसील स्तर पर विकास योजनाओं की योजना-निर्माण तथा क्रियान्वयन में भाग लेना।

2. ग्राम पंचायतों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करना तथा उन्हें आवश्यक सहायता प्रदान करना।

3. शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, ग्रामीण उद्योगों तथा कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग प्रदान करना।

4. स्थानीय समस्याओं को जिला स्तर तक पहुँचाना तथा उनके समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाना।

5. आधारभूत सुविधाओं, जैसे जलापूर्ति, सड़कें, स्वच्छता तथा अन्य लोक सेवाओं के विकास के लिए कार्य करना।

6. सरकार द्वारा प्रारंभ की गई विभिन्न विकासात्मक तथा कल्याणकारी योजनाओं की निगरानी करना।

सारतः, पंचायत समिति पंचायती राज व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो ग्राम पंचायतों और जिला परिषद के बीच समन्वय की भूमिका निभाती है। यह संस्था ब्लॉक अथवा तहसील स्तर पर विकास योजनाओं की निगरानी, जनसमस्याओं के समाधान तथा सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है। इसके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशासनिक कार्यकुशलता में सुधार होता है तथा स्थानीय विकास को बढ़ावा मिलता है।

3. जिला परिषद (जिला स्तर पर)

जिला परिषद पंचायती राज व्यवस्था की सर्वोच्च संस्था है, जो जिला स्तर पर ग्रामीण विकास, योजना-निर्माण तथा प्रशासनिक कार्यों की निगरानी करती है। यह संस्था जिले में स्थित सभी पंचायत समितियों तथा ग्राम पंचायतों के कार्यों में समन्वय स्थापित करती है और राज्य तथा केंद्र सरकार की विभिन्न विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है। जिला परिषद ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास, जनकल्याण तथा आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जिला परिषद का अध्यक्ष

जिला परिषद का प्रमुख अध्यक्ष कहलाता है, जिसका निर्वाचन जिला परिषद के निर्वाचित सदस्यों में से किया जाता है। कुछ राज्यों में अध्यक्ष के निर्वाचन की प्रक्रिया भिन्न हो सकती है, तथापि सामान्यतः उसका निर्वाचन सदस्यों द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है। अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) तथा महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान भी लागू होते हैं।

अध्यक्ष के प्रमुख कार्य एवं अधिकार निम्नलिखित हैं:

1. जिला परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. जिला स्तर की विकास योजनाओं की निगरानी तथा मार्गदर्शन करना।
3. पंचायत समितियों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करना।
4. राज्य सरकार से प्राप्त निधियों के न्यायसंगत वितरण को सुनिश्चित करना।
5. शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, ग्रामीण उद्योगों तथा आधारभूत संरचना से संबंधित योजनाओं के क्रियान्वयन की निगरानी करना।
6. जनसमस्याओं को राज्य सरकार तक पहुँचाना तथा उनके समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाना।
7. विभिन्न सरकारी विभागों तथा अधिकारियों के बीच समन्वय और सहयोग को बढ़ावा देना।

नामित सरकारी अधिकारी

जिला परिषद के प्रभावी संचालन के लिए विभिन्न सरकारी अधिकारी प्रशासनिक तथा तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं। ये अधिकारी विकास योजनाओं के क्रियान्वयन तथा सरकारी नीतियों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1) **मुख्य कार्यकारी अधिकारी (Chief Executive Officer - CEO):** मुख्य कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। वह जिला परिषद के दैनिक प्रशासनिक कार्यों की निगरानी करता है, विकास योजनाओं के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करता है।

2) **जिला विकास अधिकारी (District Development Officer):** जिला विकास अधिकारी जिले में विभिन्न विकास कार्यक्रमों की योजना-निर्माण तथा निगरानी करता है। वह विभिन्न सरकारी विभागों के बीच सहयोग और समन्वय को प्रोत्साहित करता है।

3) **अभियांत्रिकी एवं तकनीकी अधिकारी:** ग्रामीण सड़कों, पुलों, जलापूर्ति, जल निकासी तथा अन्य आधारभूत संरचना से संबंधित योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए अभियांत्रिकी विभागों के अधिकारी अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं।

4) **अन्य विभागीय अधिकारी:** कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण विकास तथा अन्य विभागों के अधिकारी भी जिला परिषद के साथ मिलकर विभिन्न विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करते हैं।

सारतः, जिला परिषद पंचायती राज व्यवस्था का सर्वोच्च स्तर है, जो जिले में ग्रामीण विकास, योजना-निर्माण तथा प्रशासनिक निगरानी का प्रमुख केंद्र होती है। यह संस्था पंचायत समितियों तथा ग्राम पंचायतों के साथ मिलकर शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, जलापूर्ति, स्वच्छता तथा आधारभूत संरचना से संबंधित विकास योजनाओं का क्रियान्वयन करती है। इस प्रकार जिला परिषद ग्रामीण क्षेत्रों में स्व-शासन, जनभागीदारी तथा सतत् विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

▪ अधिकार और उत्तरदायित्व

73वें संविधान संशोधन के अंतर्गत ग्रामीण स्थानीय सरकारों (पंचायतों) को ग्रामीण विकास, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा स्थानीय प्रशासन से संबंधित अनेक अधिकार एवं उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं।

1. **ग्रामीण विकास:** ग्रामीण विकास पंचायती राज व्यवस्था की प्रमुख जिम्मेदारियों में सम्मिलित है। इसके अंतर्गत–

- ग्रामीण सड़कों, पुलों, नालियों तथा अन्य आधारभूत सुविधाओं का निर्माण एवं रखरखाव।

- गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार के अवसर सृजित करने वाली योजनाओं का क्रियान्वयन।

- ग्रामीण आवास, सामाजिक कल्याण तथा आधारभूत संरचना का विकास।

प्रमुख विकास योजनाओं में:

- महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA)

- प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)

- विभिन्न स्वरोजगार तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रम

2. **कृषि एवं पशुपालन:** पंचायती संस्थाएँ कृषि विकास को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

- किसानों को आधुनिक कृषि संबंधी जानकारी तथा प्रशिक्षण प्रदान करना।

- सिंचाई योजनाओं की निगरानी करना।

- उर्वरक, बीज तथा कृषि उपकरणों से संबंधित सुविधाओं में सहयोग प्रदान करना।

- कृषि मंडियों के प्रबंधन में सहायता प्रदान करना।

- पशुओं के स्वास्थ्य, प्रजनन तथा पशु-चिकित्सा सेवाओं की व्यवस्था करना।

3. **जनस्वास्थ्य:** ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार करना भी पंचायती संस्थाओं का उत्तरदायित्व है।

- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तथा उप-केंद्रों की निगरानी।

- टीकाकरण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।

- मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधित योजनाओं का क्रियान्वयन।

- संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक उपाय करना।

- स्वच्छ पेयजल तथा स्वच्छता कार्यक्रमों की निगरानी।

4. **शिक्षा:** शिक्षा के क्षेत्र में पंचायती संस्थाएँ निम्नलिखित कार्य करती हैं–

- सरकारी विद्यालयों की निगरानी तथा उनमें सुधार करना।

- बच्चों के नामांकन तथा नियमित उपस्थिति को प्रोत्साहित करना।

- मध्याह्न भोजन योजना (Mid-Day Meal Scheme) के क्रियान्वयन में सहयोग देना।

- वयस्कों तथा महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कदम उठाना।

- विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना।

5. **जलापूर्ति:** ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए पंचायती संस्थाएँ विभिन्न उपाय करती हैं।

- नल कनेक्शनों, हैंडपंपों तथा कुओं का रखरखाव।

- जलाशयों तथा लघु जल परियोजनाओं का संरक्षण।

- वर्षा जल संचयन (Rainwater Harvesting) को प्रोत्साहित करना।

- जल प्रदूषण की रोकथाम के लिए आवश्यक उपाय करना।

6. **स्वच्छता एवं जनस्वास्थ्य:** ग्रामीण वातावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाए रखने के लिए—

- जल निकासी व्यवस्था में सुधार करना।

- कचरा प्रबंधन के लिए उचित उपाय करना।

- शौचालयों के निर्माण तथा उनके उपयोग को प्रोत्साहित करना।

- स्वच्छता के संबंध में जन-जागरूकता उत्पन्न करना।

- सार्वजनिक स्थानों, गलियों तथा बाजारों की स्वच्छता सुनिश्चित करना।

7. **वित्तीय संसाधन एवं वित्तपोषण के स्रोत:** पंचायती संस्थाएँ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए विभिन्न स्रोतों से वित्तीय संसाधन प्राप्त करती हैं, जिनमें शामिल हैं—

- स्थानीय कर तथा शुल्क।

- जलापूर्ति, स्वच्छता तथा अन्य सेवाओं से प्राप्त राजस्व।

- बाजारों तथा मेलों से प्राप्त आय।

- राज्य तथा केंद्र सरकार से प्राप्त अनुदान।

- विभिन्न विकास योजनाओं के लिए विशेष निधियाँ।

8. **केंद्र तथा राज्य सरकार के साथ सहयोग:** पंचायती राज संस्थाएँ राज्य तथा केंद्र सरकार के साथ निकट सहयोग के माध्यम से कार्य करती हैं।

- राज्य सरकार निगरानी, मार्गदर्शन तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

- केंद्र सरकार विभिन्न कल्याणकारी तथा विकास योजनाओं के लिए वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराती है।

- जिला परिषद, पंचायत समिति तथा ग्राम पंचायत आपसी सहयोग से विकास योजनाओं का क्रियान्वयन करती हैं।

- राज्य वित्त आयोग स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों के निर्धारण तथा उनके वितरण के सिद्धांत निर्धारित करता है।

4.3 शहरी सरकार: म्यूनिसिपल गवर्नेंस

▪ संवैधानिक स्थिति

74वें संविधान संशोधन (1992) के माध्यम से भारत में शहरी सरकार (म्यूनिसिपल गवर्नेंस) को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इससे पहले शहरी सरकार की व्यवस्था विभिन्न कानूनों तथा राज्य सरकारों के अधीन संचालित होती थी, किन्तु उसमें एकरूपता तथा संवैधानिक संरक्षण का अभाव था। 74वें संविधान संशोधन ने शहरी सरकार को एक स्थायी, सुदृढ़ तथा स्वायत्त संस्था का स्वरूप प्रदान किया, ताकि शहरों एवं कस्बों में बेहतर प्रशासन, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा जनकल्याण सुनिश्चित किया जा सके।

74वाँ संविधान संशोधन (1992)

74वें संविधान संशोधन के माध्यम से संविधान में अनुच्छेद 243-P से 243-ZG तक के प्रावधान जोड़े गए, जिनके अंतर्गत–

शहरी सरकार को तीन स्तरों में विभाजित किया गया–

1. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन (बड़े शहर)
2. म्यूनिसिपल परिषद (मध्यम आकार के शहर)
3. नगर पंचायत (छोटे शहर एवं कस्बे)

- सभी राज्यों को यह अनिवार्य किया गया कि वे प्रत्येक 5 वर्ष में म्यूनिसिपल चुनाव कराएँ (अनुच्छेद 243-U)।

- शहरी सरकार में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया (अनुच्छेद 243-T)।

- राज्य सरकारों को निर्देश दिया गया कि वे म्यूनिसिपल संस्थाओं को वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करें (अनुच्छेद 243-X)।

- राज्य निर्वाचन आयोग को शहरी स्थानीय निकायों के चुनाव कराने का दायित्व सौंपा गया (अनुच्छेद 243-ZA)।

अनुच्छेद 243-P से 243-ZG का विवरण

1. अनुच्छेद 243-P - शहरी क्षेत्रों में म्यूनिसिपल गवर्नेंस की परिभाषा।

2. अनुच्छेद 243-Q - म्यूनिसिपल संस्थाओं के प्रकार (म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन, म्यूनिसिपल परिषद, नगर पंचायत)।

3. अनुच्छेद 243-R - म्यूनिसिपल संस्थाओं की संरचना तथा उनके अधिकार।

4. अनुच्छेद 243-S - वार्ड समितियों का गठन तथा उनके अधिकार।

5. अनुच्छेद 243-T - अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण।

6. अनुच्छेद 243-U - प्रत्येक 5 वर्ष में म्यूनिसिपल चुनाव कराना अनिवार्य।

7. अनुच्छेद 243-V - म्यूनिसिपल सदस्यों की योग्यता तथा अयोग्यता।

8. अनुच्छेद 243-W - म्यूनिसिपल संस्थाओं के अधिकार एवं उत्तरदायित्व।

9. अनुच्छेद 243-X - वित्तीय अधिकार, स्थानीय कर तथा म्यूनिसिपल निधियाँ।

10. अनुच्छेद 243-Y - राज्य म्यूनिसिपल वित्त आयोग का गठन।

11. अनुच्छेद 243-Z - म्यूनिसिपल संस्थाओं के लेखे तथा लेखा-परीक्षा।

12. अनुच्छेद 243-ZA - राज्य निर्वाचन आयोग का दायित्व।

13. अनुच्छेद 243-ZB - कुछ क्षेत्रों में म्यूनिसिपल गवर्नेंस का अनुप्रयोग।

14. अनुच्छेद 243-ZC - कुछ विशेष क्षेत्रों (जैसे अनुसूचित जनजातीय क्षेत्र) के लिए अपवाद।

15. अनुच्छेद 243-ZD - जिला योजना समिति का गठन।

16. अनुच्छेद 243-ZE - महानगरीय योजना समिति का गठन।

17. अनुच्छेद 243-ZF - विद्यमान कानूनों की संगति।

18. अनुच्छेद 243-ZG - म्यूनिसिपल चुनावों को न्यायालय में चुनौती देने की सीमा।

बारहवीं अनुसूची तथा उसमें सम्मिलित 18 विषय

74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत भारतीय संविधान में बारहवीं अनुसूची (Twelfth Schedule) को जोड़ा गया, जिसमें 18 ऐसे विषय सम्मिलित किए गए हैं जो शहरी स्थानीय सरकारों (म्यूनिसिपल संस्थाओं) के कार्यक्षेत्र से संबंधित हैं। इस अनुसूची का उद्देश्य शहरी क्षेत्रों में शक्तियों का विकेंद्रीकरण, स्थानीय स्व-शासन को बढ़ावा देना तथा शहरी नागरिकों को बेहतर आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। इन विषयों में शहरी योजना तथा टाउन प्लानिंग, भूमि उपयोग एवं भवन निर्माण से संबंधित विनियम, आर्थिक एवं सामाजिक विकास की योजना-निर्माण, सड़कों एवं पुलों का निर्माण तथा रखरखाव, घरेलू, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए जलापूर्ति, जनस्वास्थ्य, स्वच्छता तथा स्वास्थ्यकर व्यवस्था, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन (Solid Waste Management), अग्निशमन सेवाएँ, शहरी वानिकी तथा पर्यावरण संरक्षण, कमजोर वर्गों, जिनमें दिव्यांगजन तथा मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों का कल्याण भी शामिल है, झुग्गी-बस्तियों का सुधार एवं विकास, शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, पार्कों, उद्यानों तथा खेल के मैदानों जैसी शहरी सुविधाओं की उपलब्धता, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा सौंदर्यात्मक विकास को प्रोत्साहन, कब्रिस्तानों, श्मशानों तथा दफन एवं अंतिम संस्कार से संबंधित सुविधाएँ, कांजी हाउस तथा पशुओं पर क्रूरता की रोकथाम, जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण, सार्वजनिक सुविधाओं जैसे सड़क प्रकाश व्यवस्था, पार्किंग, बस स्टॉप तथा सार्वजनिक शौचालयों की व्यवस्था, तथा वधशालाओं एवं चर्मशोधन केंद्रों (Tanneries) के प्रबंधन जैसे विषय सम्मिलित हैं।

इन विषयों के माध्यम से म्यूनिसिपल संस्थाओं को शहरी क्षेत्रों में योजना-निर्माण, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण तथा शहरी जनकल्याण के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाने का अधिकार प्रदान किया गया है, ताकि शहरी स्तर पर प्रभावी स्व-शासन तथा जनभागीदारी को बढ़ावा दिया जा सके.

· शहरी सरकार की संरचना

74वें संविधान संशोधन (1992) के अंतर्गत शहरी सरकार को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है–

1. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन (बड़े शहर)
2. म्यूनिसिपल परिषद (मध्यम आकार के शहर)
3. नगर पंचायत (छोटे शहर एवं कस्बे)

ये तीनों स्तर शहरी विकास, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा म्यूनिसिपल गवर्नेंस के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए स्थापित किए गए हैं। म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन सबसे उच्च स्तर की संस्था है, जो बड़े शहरों में शहरी प्रशासन की निगरानी करती है।

1. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन (बड़े शहर)

म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन शहरी स्थानीय सरकार की सर्वोच्च संस्था है, जो बड़े शहरों में शहरी प्रशासन, जनसेवाओं तथा विकास योजनाओं की निगरानी करती है। भारत में दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, हैदराबाद तथा बेंगलुरु जैसे बड़े शहरों में म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन स्थापित हैं। चूँकि इन शहरों की जनसंख्या अधिक होती है और उनकी समस्याएँ अपेक्षाकृत जटिल होती हैं, इसलिए म्यूनिसिपल कॉरपोरेशनों को वित्तीय, प्रशासनिक तथा योजना-निर्माण संबंधी व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं।

म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन का मुख्य उद्देश्य नागरिकों को आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना, शहरी विकास को बढ़ावा देना, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता व्यवस्था में सुधार करना तथा स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक शासन को प्रभावी बनाना है। इसके प्रमुख घटकों में महापौर, म्यूनिसिपल आयुक्त तथा निर्वाचित पार्षद सम्मिलित होते हैं।

महापौर (Mayor)

महापौर म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन का प्रमुख तथा शहर का प्रथम नागरिक (First Citizen) माना जाता है। वह शहरी सरकार को राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करता है तथा म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के निर्वाचित प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व करता है।

निर्वाचन

- कुछ राज्यों में महापौर का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है।

- कुछ राज्यों में महापौर का निर्वाचन निर्वाचित पार्षदों अथवा कॉरपोरेटरों द्वारा किया जाता है।

- विभिन्न राज्यों में महापौर के निर्वाचन तथा कार्यकाल से संबंधित कानून भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

महापौर के कार्य एवं अधिकार

1. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. शहरी विकास तथा जनकल्याणकारी योजनाओं के संबंध में नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान करना।
3. म्यूनिसिपल बजट तथा विकास कार्यक्रमों पर विचार-विमर्श की निगरानी करना।
4. शहरी समस्याओं को राज्य तथा केंद्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना।
5. म्यूनिसिपल आयुक्त तथा अन्य अधिकारियों के साथ मिलकर शहरी सुविधाओं के विकास के लिए कार्य करना।
6. जनप्रतिनिधियों, नागरिक संगठनों तथा विभिन्न समितियों के साथ संपर्क एवं परामर्श बनाए रखना।

महापौर का कार्यकाल राज्य के कानूनों के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। कुछ राज्यों में यह पाँच वर्ष का होता है, जबकि कुछ राज्यों में इससे कम अवधि के लिए निर्धारित किया जाता है।

म्यूनिसिपल आयुक्त (Municipal Commissioner)

म्यूनिसिपल आयुक्त म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी होता है तथा शहरी सरकार के प्रशासनिक कार्यों का प्रमुख माना जाता है। वह म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के निर्णयों तथा योजनाओं का व्यावहारिक रूप से क्रियान्वयन कराता है।

नियुक्ति

- म्यूनिसिपल आयुक्त की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

- सामान्यतः यह एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी होता है, जिसे प्रशासनिक कार्यों का पर्याप्त अनुभव होता है।

- इसका दायित्व म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के दैनिक प्रशासनिक कार्यों का प्रभावी संचालन करना होता है।

म्यूनिसिपल आयुक्त के कार्य एवं अधिकार

1. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के दैनिक प्रशासनिक कार्यों की निगरानी करना।
2. स्वच्छता, जल निकासी, जलापूर्ति, जनस्वास्थ्य तथा शहरी आधारभूत संरचना से संबंधित योजनाओं का क्रियान्वयन कराना।
3. म्यूनिसिपल बजट, राजस्व तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करना।
4. म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन तथा उसकी समितियों के निर्णयों को लागू करना।
5. राज्य तथा केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों के साथ संपर्क तथा समन्वय स्थापित करना।
6. म्यूनिसिपल कर्मचारियों तथा अधिकारियों की निगरानी करना तथा उनके कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करना।

म्यूनिसिपल आयुक्त को प्रशासनिक तथा वित्तीय मामलों में महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं, जबकि महापौर मुख्यतः नीति-निर्माण, प्रतिनिधित्व तथा राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका निभाता है।

निर्वाचित पार्षद (Councillors / Corporators)

म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के निर्वाचित सदस्यों को पार्षद अथवा कॉरपोरेटर कहा जाता है। ये शहर के विभिन्न वार्डों से निर्वाचित होकर आते हैं और अपने-अपने क्षेत्रों की जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

निर्वाचन एवं गठन

- शहर को विभिन्न वार्डों में विभाजित किया जाता है।
- प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि का निर्वाचन जनता द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है।
- अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) तथा महिलाओं के लिए संवैधानिक आरक्षण की व्यवस्था भी लागू होती है।

पार्षदों के कार्य एवं अधिकार

1. अपने वार्ड की जनसमस्याओं को म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन के समक्ष प्रस्तुत करना।
2. शहरी विकास योजनाओं की तैयारी तथा अनुमोदन में भाग लेना।

3. स्वच्छता, सड़कों, प्रकाश व्यवस्था, जलापूर्ति तथा अन्य शहरी सुविधाओं से संबंधित कार्यों की निगरानी करना।

4. जनता की शिकायतों को सुनना तथा उनके समाधान के लिए संबंधित अधिकारियों से संपर्क करना।

5. म्यूनिसिपल बजट तथा विभिन्न नीतिगत निर्णयों पर विचार-विमर्श करना।

6. शहर के समग्र विकास तथा जनकल्याण के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

निर्वाचित पार्षद शहरी सरकार और जनता के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य करते हैं तथा स्थानीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने में उनकी मूलभूत भूमिका होती है।

सारतः, म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन शहरी स्थानीय सरकार की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है, जो बड़े शहरों के प्रशासन तथा विकास के लिए उत्तरदायी होती है। इसके तीन प्रमुख स्तंभ महापौर, म्यूनिसिपल आयुक्त तथा निर्वाचित पार्षद हैं। महापौर शहरी सरकार को राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करता है, म्यूनिसिपल आयुक्त प्रशासनिक कार्यों तथा योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है, जबकि पार्षद जनप्रतिनिधित्व तथा स्थानीय समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 74वें संविधान संशोधन के बाद म्यूनिसिपल कॉरपोरेशनों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ, जिससे शहरी स्तर पर लोकतांत्रिक शासन, स्थानीय स्वायत्तता तथा जनभागीदारी को और अधिक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ।

2. म्यूनिसिपल परिषद (मध्यम आकार के शहर)

म्यूनिसिपल परिषद शहरी स्थानीय सरकार की एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो मध्यम आकार के शहरों में नगरपालिका संबंधी कार्यों की देखरेख तथा प्रबंधन के लिए स्थापित की जाती है। यह म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन से निम्न स्तर की शहरी सरकार होती है और सामान्यतः ऐसे शहरों में स्थापित की जाती है जहाँ जनसंख्या अपेक्षाकृत कम होती है। म्यूनिसिपल परिषद का मुख्य उद्देश्य नागरिकों को आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना, शहरी विकास को बढ़ावा देना तथा स्थानीय स्तर पर जनसमस्याओं का प्रभावी समाधान सुनिश्चित करना है।

म्यूनिसिपल परिषद सड़कों के निर्माण एवं रखरखाव, स्वच्छता, जल निकासी, जलापूर्ति, जनस्वास्थ्य, शहरी योजना तथा अन्य नगरपालिका सेवाओं के लिए उत्तरदायी होती है। इसके प्रमुख घटकों में अध्यक्ष (कुछ राज्यों में प्रेसिडेंट) तथा निर्वाचित पार्षद सम्मिलित होते हैं।

अध्यक्ष / प्रेसिडेंट

अध्यक्ष (कुछ राज्यों में प्रेसिडेंट) म्यूनिसिपल परिषद का प्रमुख होता है, जो नगरपालिका संबंधी कार्यों की निगरानी तथा शहरी विकास योजनाओं का मार्गदर्शन करता है। वह म्यूनिसिपल परिषद को राजनीतिक नेतृत्व प्रदान करता है तथा विभिन्न जनसेवाओं के सुधार के लिए कार्य करता है।

निर्वाचन

- कुछ राज्यों में अध्यक्ष का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है।

- कुछ राज्यों में निर्वाचित पार्षद अपने मतों द्वारा अध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं।

- अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) तथा महिलाओं के लिए संवैधानिक आरक्षण की व्यवस्था भी लागू होती है।

अध्यक्ष के कार्य एवं अधिकार

1. म्यूनिसिपल परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. शहरी विकास तथा नगरपालिका सेवाओं से संबंधित नीतिगत निर्णयों की निगरानी करना।
3. सड़कों, जल निकासी, जलापूर्ति, स्वच्छता तथा जनस्वास्थ्य से संबंधित योजनाओं की निगरानी करना।
4. म्यूनिसिपल बजट तथा वित्तीय संसाधनों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चित करना।
5. म्यूनिसिपल अधिकारियों तथा कर्मचारियों के कार्य-निष्पादन की निगरानी करना।
6. राज्य तथा केंद्र सरकार की योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए विभिन्न संस्थाओं के साथ संपर्क एवं समन्वय स्थापित करना।
7. शहरी विकास की नई योजनाओं का प्रस्ताव करना तथा उनकी प्रगति का मूल्यांकन करना।

अध्यक्ष का निर्वाचन सामान्यतः पाँच वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है, यद्यपि कुछ राज्यों में इस अवधि के संबंध में भिन्न व्यवस्थाएँ भी हो सकती हैं।

निर्वाचित पार्षद (Councillors)

निर्वाचित पार्षद म्यूनिसिपल परिषद के सदस्य होते हैं, जो शहर के विभिन्न वार्डों से निर्वाचित होकर आते हैं और अपने-अपने क्षेत्रों की जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे स्थानीय स्तर पर शहरी समस्याओं को उजागर करने तथा उनके समाधान के लिए नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निर्वाचन एवं गठन

- शहर को विभिन्न वार्डों में विभाजित किया जाता है।

- प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि का निर्वाचन जनता द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है।

- पार्षदों की संख्या शहर की जनसंख्या तथा वार्डों की संख्या के अनुसार निर्धारित की जाती है।

- अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) तथा महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था भी की जाती है।

पार्षदों के कार्य एवं अधिकार

1. अपने वार्ड की जनसमस्याओं को म्यूनिसिपल परिषद के समक्ष प्रस्तुत करना।

2. शहरी विकास योजनाओं पर विचार-विमर्श करना तथा उनके अनुमोदन में भाग लेना।

3. जलापूर्ति, स्वच्छता, सड़कों, जल निकासी, सड़क प्रकाश व्यवस्था तथा जनस्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधाओं की निगरानी करना।

4. जनता की शिकायतों को सुनना तथा उनके समाधान के लिए संबंधित अधिकारियों से संपर्क करना।

5. म्यूनिसिपल बजट, राजस्व तथा कर संबंधी मामलों में भाग लेना।

6. राज्य तथा केंद्र सरकार की विकासात्मक एवं कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग करना।

7. अध्यक्ष तथा म्यूनिसिपल अधिकारियों के साथ मिलकर शहरी योजना-निर्माण तथा विकासात्मक गतिविधियों में भाग लेना।

निर्वाचित पार्षद स्थानीय लोकतंत्र की आधारशिला होते हैं और नागरिकों तथा नगरपालिका प्रशासन के बीच संपर्क का एक महत्वपूर्ण माध्यम माने जाते हैं।

सारतः, म्यूनिसिपल परिषद मध्यम आकार के शहरों में शहरी स्थानीय सरकार की एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो नगरपालिका सेवाओं, शहरी विकास तथा जनकल्याण के लिए कार्य करती है। इसके प्रमुख घटकों में अध्यक्ष (कुछ राज्यों में प्रेसिडेंट) तथा निर्वाचित पार्षद सम्मिलित होते हैं। अध्यक्ष नगरपालिका संस्था का नेतृत्व करता है, जबकि पार्षद विभिन्न वार्डों की जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह संस्था शहरी समस्याओं के समाधान, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा स्थानीय लोकतंत्र को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और 74वें संविधान संशोधन के बाद इसे संवैधानिक संरक्षण एवं स्थायित्व प्राप्त हुआ।

3. **नगर पंचायत (छोटे शहर / कस्बे)**

नगर पंचायत शहरी स्थानीय सरकार की वह संस्था है, जो ऐसे छोटे शहरों और कस्बों में स्थापित की जाती है जो ग्रामीण से शहरी स्वरूप की ओर संक्रमण कर रहे हों। इसे एक संक्रमणकालीन (Transitional) स्थानीय सरकार माना जाता है और यह ऐसे क्षेत्रों में नगरपालिका सेवाओं, शहरी विकास तथा आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता के लिए उत्तरदायी होती है। 74वें संविधान संशोधन के बाद नगर पंचायत को शहरी स्थानीय सरकार की एक विधिवत संस्था के रूप में संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ।

नगर पंचायत का मुख्य उद्देश्य स्थानीय स्तर पर शहरी सुविधाएँ उपलब्ध कराना, विकास योजनाओं का क्रियान्वयन, स्वच्छता एवं जनस्वास्थ्य की व्यवस्था तथा जनकल्याण सुनिश्चित करना है। इसके प्रमुख घटकों में मुख्य अधिकारी (Chief Officer), अध्यक्ष (Chairperson/President) तथा विभिन्न स्थानीय समितियाँ सम्मिलित होती हैं।

मुख्य अधिकारी (Chief Officer)

मुख्य अधिकारी नगर पंचायत का प्रशासनिक प्रमुख होता है, जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। वह नगर पंचायत के दैनिक प्रशासनिक कार्यों, विकास योजनाओं तथा नगरपालिका सेवाओं की निगरानी करता है।

नियुक्ति

- मुख्य अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार करती है।

- सामान्यतः वह नगरपालिका प्रशासन का अनुभव रखने वाला एक सरकारी अधिकारी होता है।

- वह नगर पंचायत के प्रशासनिक तथा वित्तीय कार्यों की निगरानी के लिए उत्तरदायी होता है।

कार्य एवं अधिकार

1. नगर पंचायत की विकास योजनाओं का क्रियान्वयन कराना।
2. स्वच्छता, जल निकासी, जलापूर्ति तथा सड़कों के रखरखाव की निगरानी करना।
3. बजट, राजस्व तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करना।
4. अध्यक्ष तथा निर्वाचित सदस्यों के निर्णयों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना।
5. राज्य सरकार तथा जिला प्रशासन के साथ संपर्क एवं समन्वय स्थापित करना।
6. विभिन्न विकास योजनाओं के लिए निधियों तथा संसाधनों की प्राप्ति में सहयोग करना।

अध्यक्ष (Chairperson / President)

अध्यक्ष नगर पंचायत का निर्वाचित राजनीतिक प्रमुख होता है, जो जनता का प्रतिनिधित्व करता है तथा स्थानीय विकास योजनाओं का मार्गदर्शन करता है।

निर्वाचन

- कुछ राज्यों में अध्यक्ष का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा मतदान के माध्यम से किया जाता है।

- कुछ राज्यों में निर्वाचित सदस्य अपने मतों द्वारा अध्यक्ष का निर्वाचन करते हैं।

- अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST) तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था भी लागू होती है।

कार्य एवं अधिकार

1. नगर पंचायत की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. स्थानीय नीतियों तथा विकास योजनाओं की निगरानी करना।
3. मुख्य अधिकारी के साथ मिलकर शहरी सुविधाओं के सुधार के लिए कार्य करना।
4. बजट तथा विकास योजनाओं के अनुमोदन में भूमिका निभाना।

5. राज्य सरकार से विकास योजनाओं तथा निधियों की प्राप्ति के लिए संपर्क बनाए रखना।

6. स्थानीय जनता की समस्याओं को संबंधित अधिकारियों तक पहुँचाना तथा उनके समाधान का प्रयास करना।

स्थानीय समितियाँ

नगर पंचायत के विभिन्न कार्यों के प्रभावी संचालन के लिए अनेक समितियों का गठन किया जाता है। ये समितियाँ विभिन्न क्षेत्रों में निगरानी तथा परामर्श की भूमिका निभाती हैं।

प्रमुख समितियाँ

1. **स्वच्छता एवं जनस्वास्थ्य समिति**

- स्वच्छता संबंधी व्यवस्थाओं की निगरानी।
- कचरा प्रबंधन तथा जल निकासी व्यवस्था की समीक्षा।

2. **जलापूर्ति एवं जल निकासी समिति**

- स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- जल निकासी योजनाओं की निगरानी करना।

3. **शिक्षा एवं कल्याण समिति**

- शैक्षिक तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहयोग करना।
- सामाजिक कल्याण से संबंधित गतिविधियों की निगरानी करना।

4. **कर एवं राजस्व समिति**

- स्थानीय करों तथा राजस्व व्यवस्था की निगरानी।

- वित्तीय संसाधनों में वृद्धि के लिए सुझाव देना।

5. **बाजार एवं वाणिज्यिक गतिविधि समिति**

- बाजारों तथा वाणिज्यिक केंद्रों के प्रबंधन की निगरानी।

- स्थानीय व्यापारिक गतिविधियों को व्यवस्थित करना।

सारतः, नगर पंचायत शहरी स्थानीय सरकार की एक महत्वपूर्ण संक्रमणकालीन इकाई है, जो छोटे शहरों और कस्बों में नगरपालिका सेवाओं, आधारभूत सुविधाओं तथा विकास योजनाओं की निगरानी करती है। इसके प्रमुख घटकों में अध्यक्ष, मुख्य अधिकारी तथा विभिन्न स्थानीय समितियाँ सम्मिलित होती हैं। यह संस्था शहरी विकास, स्वच्छता, जलापूर्ति, जनस्वास्थ्य, सड़कों के निर्माण तथा वित्तीय प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सेवाएँ प्रदान करती है। 74वें संविधान संशोधन के बाद नगर पंचायतों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ, जिससे स्थानीय स्तर पर स्वशासन तथा जनभागीदारी को और अधिक सुदृढ़ आधार मिला।

▪ अधिकार और उत्तरदायित्व

74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत शहरी स्थानीय सरकारों (नगरपालिकाओं) को शहरी विकास, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा स्थानीय प्रशासन से संबंधित अनेक अधिकार एवं दायित्व सौंपे गए हैं।

1. शहरी विकास

- शहरी योजना तथा विकास योजनाओं का निर्माण करना।

- नई आवासीय एवं वाणिज्यिक कॉलोनियों की योजना बनाना।

- निर्माण परियोजनाओं को स्वीकृति देना तथा उनकी निगरानी करना।

- भविष्य की शहरी आवश्यकताओं के अनुरूप विकास योजनाएँ तैयार करना।

2. स्वच्छता एवं जनस्वास्थ्य

- स्वच्छता की प्रभावी व्यवस्था करना।

- कचरा निस्तारण तथा जल निकासी व्यवस्था में सुधार करना।

- सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता सुनिश्चित करना।

- स्वस्थ वातावरण को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कदम उठाना।

3. जलापूर्ति

- नागरिकों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना।

- जलापूर्ति व्यवस्था का रखरखाव तथा विस्तार करना।

- जलाशयों तथा पाइपलाइन प्रणाली की निगरानी करना।

- जल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए आवश्यक उपाय करना।

4. सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था एवं आधारभूत सुविधाएँ

- सड़क प्रकाश (स्ट्रीट लाइट) की स्थापना तथा रखरखाव करना।

- सार्वजनिक स्थानों पर आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

- ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के उपयोग को प्रोत्साहित करना।

5. **जनस्वास्थ्य**

- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तथा चिकित्सा सुविधाओं को सहयोग प्रदान करना।

- रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक कदम उठाना।

- स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के संबंध में जन-जागरूकता उत्पन्न करना।

- टीकाकरण तथा जनस्वास्थ्य कार्यक्रमों में सहयोग करना।

6. **सड़कें एवं परिवहन**

- सड़कों तथा पुलों का निर्माण एवं मरम्मत करना।

- यातायात व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाना।

- सार्वजनिक परिवहन सुविधाओं के विकास में सहयोग करना।

- अतिक्रमण हटाना तथा सड़कों की सुरक्षा सुनिश्चित करना।

7. **पार्क एवं सार्वजनिक स्थल**

- पार्क, उद्यान तथा खेल के मैदान विकसित करना।

- वृक्षारोपण तथा पर्यावरण संरक्षण की गतिविधियों को बढ़ावा देना।

- सार्वजनिक मनोरंजन स्थलों का रखरखाव करना।

- सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाना।

8. **वित्तीय अधिकार एवं राजस्व**

• **संपत्ति कर (Property Tax)**

- आवासीय तथा वाणिज्यिक संपत्तियों पर कर लगाना।

- प्राप्त आय का उपयोग शहरी सुविधाओं के विकास एवं सुधार पर करना।

• **उपयोगिता शुल्क (Utility Charges)**

- जलापूर्ति, स्वच्छता तथा अन्य सेवाओं के लिए शुल्क वसूल करना।

- आधारभूत सेवाओं की उपलब्धता के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उत्पन्न करना।

• **सरकारी अनुदान (Government Grants)**

- राज्य तथा केंद्र सरकार से विकासात्मक अनुदान प्राप्त करना।

- विभिन्न विकास परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त करना।

- सार्वजनिक–निजी भागीदारी (PPP) परियोजनाओं को प्रोत्साहित करना।

अध्याय 5: संविधान और सामान्य नागरिक

5.1 संविधान और नागरिकों के अधिकार

- संविधान हमारे दैनिक जीवन को कैसे प्रभावित करता है?
- मौलिक अधिकारों का प्रयोग

5.2 संविधान और सामाजिक न्याय

- अल्पसंख्यकों के अधिकार
- महिलाओं के अधिकार
- दलित और पिछड़े वर्गों के अधिकार

5.3 संविधान और पर्यावरण

- पर्यावरण संरक्षण के लिए संवैधानिक निर्देश
- नागरिकों के कर्तव्य

अध्याय 5: संविधान और सामान्य नागरिक

5.1 संविधान और नागरिकों के अधिकार

▪ संविधान हमारे दैनिक जीवन को कैसे प्रभावित करता है?

संविधान किसी भी देश का मूल कानून होता है, जो नागरिकों के अधिकारों, कर्तव्यों और सरकार के अधिकारों का निर्धारण करता है। भारत का संविधान विश्व के सबसे व्यापक और विस्तृत संविधानों में से एक माना जाता है, जो न केवल सरकार के विभिन्न संस्थानों के अधिकारों को निर्धारित करता है, बल्कि प्रत्येक नागरिक के दैनिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव डालता है। ये प्रभाव अनेक पहलुओं में दिखाई देते हैं, जैसे मौलिक अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, सुरक्षा, शिक्षा, रोजगार और सरकारी जिम्मेदारियों के संबंध में।

भारतीय संविधान नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जो उनके दैनिक जीवन में सुरक्षा और स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19) हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आवागमन की स्वतंत्रता और किसी भी व्यवसाय को अपनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह अधिकार हमें दैनिक जीवन में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने, अपने विचार व्यक्त करने तथा कहीं भी जाने या रहने की सुविधा देता है। इसी प्रकार, समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14) हमें यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी कानून सभी के लिए समान होगा और किसी के साथ जाति, धर्म, लिंग या नस्ल के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा।

भारत में प्रत्येक नागरिक के जीवन में संविधान का प्रत्यक्ष प्रभाव उस समय दिखाई देता है, जब वह अपनी शिक्षा, नौकरी या व्यवसाय के संबंध में कोई कदम उठाता है। उदाहरण के लिए, संविधान द्वारा प्रदान किए गए शिक्षा के अधिकार के कारण प्रत्येक बच्चा (6 से 14 वर्ष तक) निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकारी है (अनुच्छेद 21A)। इसी प्रकार, दलितों, जनजातियों और पिछड़े वर्गों को आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है, ताकि उन्हें समान अवसर प्राप्त हो सकें। यदि ये संवैधानिक गारंटियाँ न होतीं, तो लाखों लोग शिक्षा और रोजगार के अवसरों से वंचित रह सकते थे।

दैनिक जीवन में न्याय के सिद्धांत को सुनिश्चित करने के लिए संविधान हमें न्यायिक संरक्षण भी प्रदान करता है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार के शोषण, अन्याय या अत्याचार का शिकार होता है, तो वह न्यायालय जाकर अपने अधिकारों की रक्षा कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 32 प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार देता है कि यदि उसके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो वह सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है, जबकि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत वह उच्च न्यायालय में भी याचिका दायर कर सकता है। यह

प्रावधान सुनिश्चित करता है कि किसी भी नागरिक के साथ अन्याय या अत्याचार न हो और यदि ऐसा होता है, तो उसे कानूनी सहायता प्राप्त हो सके।

संविधान केवल नागरिकों के अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सरकारी संस्थानों को भी बाध्य करता है कि वे जनता के कल्याण के लिए कार्य करें। सरकार का दायित्व है कि वह नागरिकों को स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और बेहतर जीवन के अवसर उपलब्ध कराए। उदाहरण के लिए, सरकार को यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह कमजोर वर्गों की सुरक्षा के लिए कानून बनाए, श्रमिकों को उनके अधिकार प्रदान करे और महिलाओं के साथ समान व्यवहार सुनिश्चित करे। यह सभी बातें संविधान की विभिन्न धाराओं में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं।

भारतीय संविधान हमें अपने दैनिक जीवन में धार्मिक स्वतंत्रता भी प्रदान करता है, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने, प्रचार करने और उसका अनुसरण करने का अधिकार प्राप्त है (अनुच्छेद 25-28)। इसी प्रकार, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों (अनुच्छेद 29-30) के अंतर्गत विभिन्न धर्मों और भाषाओं से संबंधित लोग अपनी पहचान को सुरक्षित रख सकते हैं तथा अपनी भाषा और संस्कृति को बढ़ावा दे सकते हैं।

दैनिक जीवन में संविधान का प्रभाव उस समय भी महसूस होता है, जब कोई व्यक्ति मतदान करने जाता है, किसी सरकारी सुविधा का लाभ उठाता है या किसी कानूनी समस्या के संबंध में पुलिस या न्यायालय का सहारा लेता है। संविधान के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को समान अवसर प्राप्त होने की गारंटी दी गई है और यदि कोई सरकारी अधिकारी या संस्था अवैध रूप से किसी व्यक्ति के साथ अन्याय करती है, तो उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, संविधान हमें यह भी सिखाता है कि हम एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में किस प्रकार जीवन व्यतीत करें। नागरिकों के मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद 51A) हमें यह जिम्मेदारी देते हैं कि हम राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दें, प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करें और कानून का पालन करें। यदि नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझें, तो एक बेहतर और व्यवस्थित समाज का निर्माण किया जा सकता है।

कुल मिलाकर, भारतीय संविधान हमारे दैनिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। यह हमें स्वतंत्रता, समानता, न्याय और सुरक्षा प्रदान करता है तथा साथ ही सरकार को बाध्य करता है कि वह जनता के कल्याण के लिए कार्य करे। नागरिकों के लिए आवश्यक है कि वे अपने संवैधानिक अधिकारों और कर्तव्यों को समझें, ताकि वे एक बेहतर और न्यायपूर्ण समाज में जीवन व्यतीत कर सकें।

▪ मौलिक अधिकारों का प्रयोग

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) को प्रत्येक नागरिक के लिए एक आवश्यक सुरक्षा के रूप में शामिल किया गया है, ताकि वह स्वतंत्रता, समानता और न्याय के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सके। ये अधिकार केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं हैं, बल्कि व्यावहारिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करते हैं। दैनिक जीवन में मौलिक अधिकारों का प्रयोग उस समय दिखाई देता है, जब कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपनी राय व्यक्त करता है, किसी भी व्यवसाय को अपनाता है, अपने धर्म का पालन करता है या किसी अन्याय के विरुद्ध न्यायालय का सहारा लेता है। संविधान के अनुच्छेद 12 से 35 तक मौलिक अधिकारों का विस्तार से वर्णन किया गया है और ये अधिकार सरकार, न्यायपालिका तथा सामान्य नागरिकों के बीच एक संतुलित व्यवस्था स्थापित करते हैं।

मौलिक अधिकारों का सबसे प्रमुख प्रयोग स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 19) में दिखाई देता है, जो प्रत्येक नागरिक को अपने विचार व्यक्त करने, कहीं भी जाने, कोई भी व्यवसाय अपनाने और संगठन बनाने का अधिकार देता है। इसका व्यावहारिक प्रभाव मीडिया, सोशल मीडिया, पत्रकारिता और सामान्य बातचीत में देखा जा सकता है, जहाँ लोग बिना किसी भय के अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं। यदि किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अवैध रूप से प्रतिबंध लगाया जाता है, तो वह न्यायालय जाकर अपने इस अधिकार की रक्षा कर सकता है।

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18) प्रत्येक नागरिक को समान होने की गारंटी देता है, चाहे उसका संबंध किसी भी धर्म, जाति या क्षेत्र से हो। यह अधिकार सरकारी नौकरियों, शिक्षा और अन्य सार्वजनिक सुविधाओं में भेदभाव को रोकने में सहायता करता है। दैनिक जीवन में इस अधिकार का प्रयोग उस समय दिखाई देता है, जब कोई व्यक्ति किसी भेदभाव के विरुद्ध शिकायत करता है, जैसे किसी नौकरी में अवैध रूप से किसी विशेष वर्ग को प्राथमिकता दी जाए या किसी व्यक्ति के साथ जाति के आधार पर अन्याय किया जाए।

न्यायिक संरक्षण के अधिकार (अनुच्छेद 32) के अंतर्गत यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो वह सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर कर सकता है। दैनिक जीवन में इसका प्रयोग उस समय होता है, जब कोई व्यक्ति पुलिस अत्याचार, अवैध गिरफ्तारी या किसी भी प्रकार की सरकारी ज्यादती के विरुद्ध न्यायालय का सहारा लेता है। प्रसिद्ध न्यायिक निर्णय जैसे के. एस. पुट्टस्वामी मामला, जिसमें निजता के अधिकार को मान्यता दी गई, इस बात का प्रमाण हैं कि ये अधिकार व्यावहारिक रूप से नागरिकों के जीवन को प्रभावित करते हैं।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24) श्रमिकों, महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान है। यह अधिकार जबरन मजदूरी, गुलामी और बच्चों से मजदूरी करवाने पर प्रतिबंध लगाता

है। इसका व्यावहारिक प्रयोग उस समय होता है, जब किसी कारखाने में बच्चों को अवैध रूप से काम करने के लिए मजबूर किया जाता है और सरकार या न्यायालय इसके विरुद्ध कार्रवाई करते हैं। अनेक संगठन और न्यायिक आदेश इन अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 25-28) के माध्यम से प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से पालन करे, उसका प्रचार करे और अपने धार्मिक संस्थानों की स्थापना करे। दैनिक जीवन में इसका प्रयोग विभिन्न त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों और धार्मिक सभाओं में देखा जा सकता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन कर सकता है। यदि कोई सरकार या व्यक्ति किसी धार्मिक समूह की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता है, तो संविधान उसके विरुद्ध कानूनी संरक्षण प्रदान करता है।

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30) अल्पसंख्यकों को यह अधिकार देते हैं कि वे अपनी संस्कृति, भाषा और धार्मिक पहचान को बनाए रख सकें तथा अपने शैक्षिक संस्थान स्थापित कर सकें। इस अधिकार का दैनिक जीवन में प्रयोग तब होता है, जब कोई भाषाई या धार्मिक अल्पसंख्यक अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करता है या अपने सांस्कृतिक संस्थान स्थापित करता है। उदाहरण के रूप में, मुस्लिम शैक्षिक संस्थान, सिखों के शैक्षिक केंद्र और विभिन्न भाषाओं के विद्यालय इसी अधिकार के अंतर्गत संचालित किए जा सकते हैं।

मौलिक अधिकारों के व्यावहारिक क्रियान्वयन में न्यायपालिका और नागरिक दोनों महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि कोई सरकारी संस्था या व्यक्ति किसी के अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो न्यायालय में उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, मीडिया, मानवाधिकार संगठन और सामाजिक कार्यकर्ता भी इन अधिकारों के संरक्षण और क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार, भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार केवल सैद्धांतिक सिद्धांत नहीं हैं, बल्कि वे व्यावहारिक जीवन में प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा, स्वतंत्रता और न्याय प्रदान करने के आधार हैं। इन अधिकारों का प्रयोग दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होता है, चाहे वह शिक्षा हो, रोजगार हो, धर्म हो, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो या न्याय प्राप्त करने का प्रयास हो। एक जागरूक नागरिक के लिए आवश्यक है कि वह अपने इन अधिकारों को जाने, उनका प्रयोग करे और यदि कहीं इनका उल्लंघन हो रहा हो, तो उसके विरुद्ध कानूनी उपाय अपनाए।

5.2 संविधान और सामाजिक न्याय

▪ अल्पसंख्यकों के अधिकार

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों (Minorities) के अधिकारों को विशेष महत्व दिया गया है ताकि देश में सामाजिक न्याय (Social Justice) को सुनिश्चित किया जा सके। अल्पसंख्यकों से तात्पर्य उन धार्मिक, भाषाई या सांस्कृतिक समूहों से है, जिनकी संख्या देश की कुल जनसंख्या के बड़े हिस्से की तुलना में कम होती है। संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा इस उद्देश्य से की गई है कि वे बिना किसी भेदभाव के अपनी पहचान को बनाए रख सकें और सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक विकास के समान अवसर प्राप्त कर सकें।

भारतीय संविधान के मूल ढाँचे में धर्मनिरपेक्षता (Secularism) को एक महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके अंतर्गत राज्य सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है और किसी एक धर्म को दूसरे धर्मों पर प्राथमिकता नहीं देता। इस सिद्धांत के आधार पर अल्पसंख्यकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने धर्म, भाषा और संस्कृति को सुरक्षित रख सकें तथा बिना किसी दबाव के अपने धार्मिक विश्वासों का पालन कर सकें।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक अल्पसंख्यकों सहित सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान किए गए हैं। इसके अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधान शामिल हैं:

- प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म का पालन करने, उसका प्रचार करने और स्वतंत्र रूप से धार्मिक आस्थाओं का पालन करने का अधिकार प्राप्त है।
- प्रत्येक धार्मिक समूह को अपनी पूजा स्थलों की स्थापना करने और धार्मिक मामलों का स्वतंत्र रूप से संचालन करने का अधिकार प्राप्त है।
- सरकार किसी विशेष धर्म को बढ़ावा नहीं दे सकती और न ही किसी व्यक्ति पर किसी धर्म या धार्मिक विश्वास को थोप सकती है।
- किसी भी नागरिक के साथ सरकारी नौकरी, शिक्षा या अन्य सार्वजनिक सेवाओं में धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों को अपनी सांस्कृतिक पहचान, भाषा और परंपराओं को सुरक्षित रखने का अधिकार देता है। इस संबंध में निम्नलिखित प्रावधान महत्वपूर्ण हैं:

- **अनुच्छेद 29:** प्रत्येक नागरिक को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्राप्त है। यदि किसी अल्पसंख्यक समूह की भाषा या संस्कृति को नुकसान पहुँचाने का प्रयास किया जाता है, तो उन्हें कानूनी संरक्षण प्राप्त होता है।

- **अनुच्छेद 30:** अल्पसंख्यक समुदायों को अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थान स्थापित करने और उनका संचालन करने का अधिकार प्राप्त है। सरकार को यह सुनिश्चित करना होता है कि इन संस्थानों के साथ समान व्यवहार किया जाए और उनके प्रशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप न किया जाए।

ये अधिकार इसलिए प्रदान किए गए हैं ताकि अल्पसंख्यक समुदाय अपनी पहचान को बनाए रख सकें और अपने शैक्षिक संस्थानों के माध्यम से अपनी भाषा तथा संस्कृति को बढ़ावा दे सकें। व्यवहार में भारत में अनेक अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थान कार्य कर रहे हैं, जैसे मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध और जैन समुदायों के शिक्षण संस्थान, जो इन्हीं संवैधानिक अधिकारों के अंतर्गत संचालित होते हैं।

समानता और भेदभाव से सुरक्षा (अनुच्छेद 14-16)

संविधान में अल्पसंख्यकों को समान अवसर प्रदान करने के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं:

- **अनुच्छेद 14:** प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समानता प्राप्त है और किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, नस्ल या लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।

- **अनुच्छेद 15:** राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता।

- **अनुच्छेद 16:** सरकारी नौकरियों में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान किए गए हैं और धर्म के आधार पर किसी व्यक्ति को रोजगार से वंचित नहीं किया जा सकता।

अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए विशेष उपाय

अल्पसंख्यकों के संरक्षण और कल्याण के लिए सरकार संविधान में दिए गए अधिकारों और अनुच्छेद 29-30 की भावना के अनुसार विभिन्न कदम उठाती है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 46 के अंतर्गत राज्य को यह

निर्देश दिया गया है कि वह समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों (जिसमें पिछड़े अल्पसंख्यक भी शामिल हैं) की शैक्षिक और आर्थिक उन्नति के लिए कार्य करे।

अल्पसंख्यक आयोग और अन्य सरकारी संस्थाएँ

सरकार ने संवैधानिक अधिकारों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (National Commission for Minorities) की स्थापना की है। यह आयोग अल्पसंख्यकों के अधिकारों की निगरानी करता है और उनके संरक्षण के लिए सरकार को सुझाव देता है। यह सुनिश्चित करता है कि अल्पसंख्यक समुदायों को उनके संवैधानिक अधिकार प्राप्त हों और यदि कहीं भेदभाव हो रहा हो तो उसके समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएँ।

अल्पसंख्यकों के अधिकारों का व्यावहारिक प्रभाव

संविधान द्वारा दिए गए इन अधिकारों का प्रभाव भारतीय समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अल्पसंख्यक समुदाय अपने धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों का उपयोग करके अपनी पहचान को सुरक्षित रखते हैं। विभिन्न राज्यों में अल्पसंख्यकों के लिए विशेष शैक्षिक योजनाएँ, अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों को संरक्षण और सरकारी योजनाओं में उनकी भागीदारी इसी संवैधानिक संरक्षण का परिणाम है। यदि किसी अल्पसंख्यक व्यक्ति या समूह को लगता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है, तो वह न्याय प्राप्त करने के लिए न्यायालय की शरण ले सकता है।

इस प्रकार, भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है ताकि वे स्वतंत्रता, समानता और न्याय के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें। इन अधिकारों की उपस्थिति से देश में सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा मिलता है और प्रत्येक वर्ग स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है।

▪ महिलाओं के अधिकार

भारतीय संविधान महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण और विकास के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करता है, ताकि उन्हें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक समानता प्राप्त हो सके। संविधान की नींव “समानता” (Equality) और “सामाजिक न्याय” (Social Justice) के सिद्धांतों पर आधारित है और इसमें महिलाओं के विरुद्ध किसी भी प्रकार के भेदभाव को सख्ती से प्रतिबंधित किया गया है। भारत में महिलाओं के कल्याण के लिए संविधान में विशेष सुरक्षा प्रदान की गई है, ताकि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान अवसर प्राप्त कर सकें और उनके साथ किसी भी प्रकार का अन्याय न हो।

समानता और भेदभाव से सुरक्षा (अनुच्छेद 14-16)

भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार दिया गया है और किसी भी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं दी गई है। विशेष रूप से महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं:

- अनुच्छेद 14 प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार प्रदान करता है और सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य करता है कि सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त हों।

- अनुच्छेद 15 के अंतर्गत धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध किया गया है। साथ ही, सरकार को महिलाओं और बच्चों के कल्याण के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार दिया गया है।

- अनुच्छेद 16 सरकारी नौकरियों में समान अवसर की गारंटी देता है और महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव को रोकता है।

स्वतंत्रता और स्वायत्तता के अधिकार (अनुच्छेद 19-21)

संविधान में महिलाओं को स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकार प्रदान किए गए हैं ताकि वे अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जी सकें:

- अनुच्छेद 19 के अंतर्गत महिलाओं को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता, देश में कहीं भी आने-जाने और किसी भी व्यवसाय को अपनाने का अधिकार प्राप्त है।

- अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है, जिसमें महिलाओं के लिए सम्मान, सुरक्षा और किसी भी प्रकार के शारीरिक या मानसिक उत्पीड़न से बचाव शामिल है।
- महिलाओं को अपनी पसंद की शिक्षा प्राप्त करने, कार्य करने और अपने व्यक्तिगत जीवन से जुड़े निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है।

महिलाओं के संरक्षण के लिए विशेष कानून और प्रावधान

भारतीय संविधान ने महिलाओं को विशेष सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई विशेष प्रावधान और कानून बनाए हैं, जो महिलाओं को विभिन्न स्तरों पर अधिकार और सुविधाएँ प्रदान करते हैं:

- अनुच्छेद 39(a) सरकार को निर्देश देता है कि वह पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करे, विशेष रूप से रोजगार और कार्य के अवसरों में।
- अनुच्छेद 39(d) समान कार्य के लिए समान वेतन की गारंटी देता है, ताकि महिलाओं को पुरुषों के समान वेतन प्राप्त हो सके।
- अनुच्छेद 42 सरकार को निर्देश देता है कि वह महिलाओं को मातृत्व के समय विशेष सुविधाएँ प्रदान करे और कार्यस्थलों पर उनके लिए बेहतर परिस्थितियाँ उपलब्ध कराए।
- अनुच्छेद 243D और 243T स्थानीय निकायों जैसे पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था करते हैं, ताकि महिलाएँ राजनीतिक रूप से भी सशक्त बन सकें।

महिलाओं के विरुद्ध अत्याचारों की रोकथाम

भारतीय संविधान और सरकार ने विभिन्न कानूनों के माध्यम से महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों और हिंसा को रोकने के लिए कई कदम उठाए हैं:

- घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 महिलाओं को घरेलू हिंसा, शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण से सुरक्षा प्रदान करता है तथा कानूनी संरक्षण देता है।
- कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से बचाने के लिए कानूनी सुरक्षा प्रदान करता है।
- दहेज निषेध अधिनियम, 1961 दहेज लेने और देने की प्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से बनाया गया, ताकि दहेज के कारण महिलाओं पर होने वाली हिंसा को रोका जा सके।

- पीसीपीएनडीटी अधिनियम, 1994 (Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic Techniques Act) भ्रूण के लिंग की जाँच पर प्रतिबंध लगाता है, ताकि कन्या भ्रूण हत्या को रोका जा सके।

महिलाओं के कल्याण के लिए सरकारी प्रयास

संविधान में महिलाओं की सुरक्षा के लिए दिए गए प्रावधानों को लागू करने के लिए सरकार ने कई कल्याणकारी योजनाएँ शुरू की हैं, जैसे:

- बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना (Beti Bachao, Beti Padhao) महिलाओं की शिक्षा और कल्याण को बढ़ावा देती है।
- महिला शक्ति केंद्र (Mahila Shakti Kendra) महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए विभिन्न सुविधाएँ और सहायता प्रदान करता है।
- उज्ज्वला योजना (Ujjwala Yojana) गरीब महिलाओं को निःशुल्क एलपीजी गैस कनेक्शन प्रदान करती है, जिससे उन्हें धुएँ से मुक्त रसोई उपलब्ध हो सके।

राजनीतिक और सामाजिक भागीदारी

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए संविधान में 106वाँ संशोधन (नारी शक्ति वंदन अधिनियम) किया गया है, जिसके अंतर्गत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय पंचायतों और नगर निकायों में पहले से ही कई राज्यों में महिलाओं को 33% से 50% तक आरक्षण प्राप्त है।

शैक्षिक और आर्थिक अवसर

संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों के अंतर्गत महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है। सरकार ने महिलाओं की उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई छात्रवृत्ति और शैक्षिक योजनाएँ शुरू की हैं।

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कई वित्तीय योजनाएँ लागू की गई हैं, जैसे मुद्रा योजना (Mudra Yojana), जिसके अंतर्गत महिलाओं को व्यवसाय शुरू करने के लिए आसान ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं।

महिलाओं के अधिकारों का व्यावहारिक प्रभाव

संवैधानिक अधिकारों और सरकारी प्रयासों के कारण भारत में महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। आज महिलाएँ शिक्षा, रोजगार, राजनीति, खेल और व्यवसाय जैसे विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

हालाँकि, व्यावहारिक स्तर पर अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं, जैसे लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न। इन समस्याओं के समाधान के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है।

इस प्रकार, भारतीय संविधान महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता और सुरक्षा के मूल अधिकार प्रदान करता है, ताकि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति कर सकें और समाज में समान नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभा सकें।

▪ दलित और पिछड़े वर्गों के अधिकार

भारतीय संविधान दलितों और पिछड़े वर्गों के अधिकारों की रक्षा और उनके कल्याण के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करता है। इन वर्गों को सदियों से सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा रखा गया था, और संविधान ने उनके साथ हुए ऐतिहासिक भेदभाव को समाप्त करने के लिए समानता, न्याय और संरक्षण के सिद्धांतों को अपनाया। संविधान में दिए गए अधिकारों और सरकारी प्रयासों का उद्देश्य इन वर्गों को सशक्त बनाना और उन्हें सामाजिक विकास में समान भागीदारी प्रदान करना है।

समानता और भेदभाव की रोकथाम (अनुच्छेद 14-17)

संविधान दलितों और पिछड़े वर्गों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव को अवैध घोषित करता है और उन्हें समान अधिकार प्रदान करता है:

- अनुच्छेद 14 सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है और सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य करता है कि दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाए।
- अनुच्छेद 15 जाति, धर्म, नस्ल या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को रोकता है और सरकार को सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है।
- अनुच्छेद 16 सरकारी नौकरियों में समान अवसर की गारंटी देता है और दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता (Untouchability) को पूरी तरह समाप्त करता है और इसके पालन को कानूनी अपराध घोषित करता है।

आरक्षण और विशेष अवसर (अनुच्छेद 330, 332, 335, 340, 341)

दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में विशेष अवसर प्रदान किए गए हैं, ताकि वे विकास के समान अवसर प्राप्त कर सकें:

- अनुच्छेद 330 और 332 संसद और राज्य विधानसभाओं में दलितों तथा अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes) के लिए आरक्षित सीटों का प्रावधान करते हैं।

- अनुच्छेद 335 सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जातियों के दावों और हितों को ध्यान में रखने का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 340 सरकार को पिछड़े वर्गों की स्थिति का अध्ययन करने और उनके कल्याण के लिए आयोग गठित करने का अधिकार देता है।
- अनुच्छेद 341 अनुसूचित जातियों (Scheduled Castes) को मान्यता प्रदान करता है और उनके अधिकारों तथा संरक्षण की व्यवस्था करता है।

शैक्षिक और आर्थिक अवसर

सरकार ने संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों के आधार पर दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक विकास के लिए कई कदम उठाए हैं:

- शैक्षिक संस्थानों में दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, ताकि वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें।
- छात्रवृत्ति और आर्थिक सहायता की विभिन्न योजनाएँ शुरू की गई हैं, ताकि दलित विद्यार्थी शिक्षा के अवसरों से वंचित न रहें।
- आर्थिक विकास के लिए मुद्रा योजना (Mudra Yojana) और स्टैंड अप इंडिया योजना (Stand-Up India) जैसी योजनाएँ शुरू की गई हैं, जो दलितों को व्यवसाय शुरू करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों की आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए कृषि भूमि, ऋण और सब्सिडी जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं।

दलितों के संरक्षण के लिए विशेष कानून

दलितों के विरुद्ध हिंसा और भेदभाव को रोकने के लिए कई कानून बनाए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं:

- अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 (Untouchability Offences Act) – यह कानून अस्पृश्यता से संबंधित किसी भी कार्य को दंडनीय अपराध घोषित करता है।

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act) – यह कानून दलितों और आदिवासियों के विरुद्ध अत्याचारों को रोकने के लिए कठोर दंड का प्रावधान करता है।
- हाथ से मैला ढोने की प्रथा का निषेध और पुनर्वास अधिनियम, 2013 (MS Act 2013) – यह कानून दलितों को अमानवीय कार्यों जैसे हाथ से मैला ढोने और खतरनाक सीवर सफाई से बचाने तथा उनके पुनर्वास को सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है।

दलितों की राजनीतिक भागीदारी

दलितों को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं। इसके अंतर्गत संसद, राज्य विधानसभाओं और स्थानीय निकायों में दलितों के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था की गई है। कई दलित नेताओं ने राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और सरकारों में दलित प्रतिनिधित्व को भी बढ़ावा दिया गया है।

सामाजिक सुधार और दलित जागरूकता आंदोलन

संवैधानिक अधिकारों और सरकारी प्रयासों के साथ-साथ दलितों की सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है:

- डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में दलित अधिकारों के लिए कई महत्वपूर्ण सुधार किए गए, जिन्होंने समानता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को मजबूत किया।
- दलित सशक्तिकरण आंदोलन (Dalit Empowerment Movements) जैसे बहुजन समाज पार्टी (BSP) और अन्य संगठन दलितों के सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए कार्य कर रहे हैं।
- शिक्षा, मीडिया और सामाजिक संगठनों के माध्यम से दलितों में जागरूकता बढ़ाई जा रही है ताकि वे अपने संवैधानिक अधिकारों को समझ सकें।

दलितों के अधिकारों का व्यावहारिक प्रभाव

संवैधानिक अधिकारों और सरकारी प्रयासों के कारण दलितों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। आज दलित शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय और रोजगार के क्षेत्रों में अपनी भागीदारी मजबूत कर रहे हैं। सरकार द्वारा

चलाए गए कल्याणकारी कार्यक्रमों के माध्यम से दलितों को रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवन स्तर के अवसर प्राप्त हो रहे हैं।

इस प्रकार, भारतीय संविधान दलितों और पिछड़े वर्गों को समानता, संरक्षण और विकास के अवसर प्रदान करता है, ताकि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से भाग ले सकें और एक न्यायपूर्ण समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

5.3 संविधान और पर्यावरण

▪ पर्यावरण संरक्षण के लिए संवैधानिक निर्देश

भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण को एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्देश्य के रूप में मान्यता दी गई है। संविधान की विभिन्न धाराएँ सरकार और नागरिकों को इस बात के लिए बाध्य करती हैं कि वे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, प्रदूषण की रोकथाम और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक कदम उठाएँ। संविधान में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित निर्देशों को मौलिक अधिकारों, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों और नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों के अंतर्गत शामिल किया गया है, ताकि पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान किया जा सके और आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ एवं सुरक्षित वातावरण प्रदान किया जा सके।

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित प्रमुख संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं:

- **अनुच्छेद 48-A (राज्य के नीति-निर्देशक तत्व):** सरकार को निर्देश दिया गया है कि वह पर्यावरण की रक्षा तथा वनों और वन्य जीवों के संरक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाए। यह अनुच्छेद सरकार को पर्यावरण प्रदूषण को कम करने और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए प्रभावी नीतियाँ बनाने की जिम्मेदारी देता है।

- **अनुच्छेद 51-A(g) (नागरिकों के मौलिक कर्तव्य):** प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, वनों, जीव-जंतुओं, नदियों, झीलों और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करे तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में योगदान दे। इस अनुच्छेद के अंतर्गत नागरिकों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील व्यवहार अपनाने और प्रदूषण को रोकने के लिए प्रेरित किया गया है।

पर्यावरण से संबंधित न्यायिक निर्णय और अधिकार

भारतीय न्यायपालिका ने पर्यावरण संरक्षण को मौलिक अधिकारों से जोड़कर इसकी महत्ता को और स्पष्ट किया है। सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों ने कई मामलों में यह स्पष्ट किया है कि स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण नागरिकों का मूल अधिकार है तथा सरकार का दायित्व है कि वह इस अधिकार की रक्षा करे।

- **अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार):** सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में कहा है कि जीवन के अधिकार में स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार भी शामिल है। प्रदूषण और

पर्यावरणीय असंतुलन नागरिकों के स्वास्थ्य और जीवन को प्रभावित कर सकते हैं, इसलिए सरकार को पर्यावरण संरक्षण के लिए कठोर कानून लागू करने चाहिए।

• **एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (1986):** इस ऐतिहासिक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षण के लिए कठोर कदम उठाने का निर्देश दिया और औद्योगिक प्रदूषण को कम करने के लिए सरकारी नीतियों पर जोर दिया। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि सरकार की जिम्मेदारी है कि वह पर्यावरण को होने वाले नुकसान को रोकने के लिए प्रभावी कानून बनाए और उनका पालन सुनिश्चित करे।

पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून

संविधान के अंतर्गत पर्यावरण प्रदूषण को रोकने और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए कई कानून और नीतियाँ बनाई गई हैं। इनमें प्रमुख कानून निम्नलिखित हैं:

• **पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 (Environment Protection Act, 1986):** यह कानून सरकार को पर्यावरण की सुरक्षा के लिए आवश्यक नियम और प्रावधान बनाने का अधिकार देता है। इसके अंतर्गत प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों के विरुद्ध कार्रवाई करने और पर्यावरणीय नुकसान को रोकने के लिए नियम बनाए गए हैं।

• **जल प्रदूषण (रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974:** यह कानून नदियों, झीलों और भूमिगत जल जैसे जल स्रोतों को औद्योगिक एवं शहरी कचरे से होने वाले प्रदूषण से बचाने के लिए बनाया गया है।

• **वायु प्रदूषण (रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1981:** इस कानून का उद्देश्य वायु प्रदूषण को कम करना है। इसके अंतर्गत विभिन्न राज्यों में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए गए हैं, जो कारखानों और वाहनों से निकलने वाली हानिकारक गैसों को नियंत्रित करने का कार्य करते हैं।

• **वन संरक्षण अधिनियम, 1980:** यह कानून वनों की कटाई को रोकने और प्राकृतिक जीवन के संरक्षण के लिए बनाया गया है। इसके अंतर्गत पेड़ों की कटाई पर नियंत्रण और वनों के पुनर्स्थापन के लिए उपाय किए गए हैं।

पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकारी प्रयास

संवैधानिक निर्देशों के अंतर्गत सरकार ने पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए कई योजनाएँ और नीतियाँ शुरू की हैं:

- **राष्ट्रीय हरित अधिकरण (National Green Tribunal - NGT):** राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना वर्ष 2010 में की गई ताकि पर्यावरण संबंधी विवादों का शीघ्र और प्रभावी समाधान किया जा सके। यह संस्था पर्यावरण कानूनों के पालन को सुनिश्चित करती है और प्रदूषण फैलाने वाली गतिविधियों के विरुद्ध कार्रवाई कर सकती है।

- **स्वच्छ भारत अभियान (Swachh Bharat Abhiyan):** स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वच्छता को बढ़ावा दिया गया। खुले में शौच की समाप्ति और कचरे के उचित प्रबंधन के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण को कम करने का प्रयास किया गया।

- **नमामि गंगे कार्यक्रम (Namami Gange Programme):** इस कार्यक्रम के माध्यम से गंगा नदी की सफाई, प्रदूषण में कमी, सीवेज प्रबंधन और जलीय पर्यावरण के संरक्षण के लिए विभिन्न योजनाएँ लागू की गई हैं।

- **राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (NAPCC):** राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना के अंतर्गत जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए कई राष्ट्रीय मिशन शुरू किए गए हैं, जिनमें सौर ऊर्जा, ऊर्जा संरक्षण, जल संसाधनों की सुरक्षा और वनों के विकास से संबंधित प्रयास शामिल हैं।

- **वन संरक्षण और वृक्षारोपण कार्यक्रम:** सरकार द्वारा वन क्षेत्र बढ़ाने, वृक्षारोपण को बढ़ावा देने और जैव विविधता के संरक्षण के लिए विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं, ताकि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखा जा सके।

पर्यावरण संरक्षण में नागरिकों की भूमिका

संविधान में दिए गए निर्देशों के अनुसार सरकार के साथ-साथ आम नागरिकों का भी पर्यावरण संरक्षण में योगदान आवश्यक है:

- स्वच्छ ऊर्जा (Clean Energy) जैसे सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा का उपयोग करना।
- प्लास्टिक के उपयोग को कम करना और पर्यावरण अनुकूल वस्तुओं का प्रयोग करना।
- पेड़ लगाने और वनों की रक्षा में भाग लेना ताकि पर्यावरणीय संतुलन बना रहे।
- पानी और बिजली के अनावश्यक उपयोग से बचना ताकि प्राकृतिक संसाधनों की बर्बादी न हो।
- घरेलू और औद्योगिक कचरे के उचित निपटान के तरीकों को अपनाना।

व्यावहारिक चुनौतियाँ और समाधान

यद्यपि संविधान और कानूनों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के लिए कई कदम उठाए गए हैं, फिर भी कुछ व्यावहारिक चुनौतियाँ मौजूद हैं, जैसे:

- औद्योगिक प्रदूषण और कारखानों से निकलने वाले जहरीले पदार्थों को नियंत्रित करने में कठिनाई।
- शहरी क्षेत्रों में वायु प्रदूषण की बढ़ती समस्या।
- अवैध वृक्ष कटाई और वनों का विनाश।
- जनता में पर्यावरणीय जागरूकता की कमी और कानूनों के प्रभावी पालन की समस्या।

इन समस्याओं से निपटने के लिए सरकार और नागरिकों को मिलकर प्रयास करने होंगे। कठोर कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन के साथ-साथ जनता में जागरूकता पैदा करना आवश्यक है, ताकि प्रत्येक नागरिक अपनी जिम्मेदारी को समझे और पर्यावरण संरक्षण में सक्रिय भूमिका निभाए।

भारतीय संविधान ने पर्यावरण संरक्षण को राष्ट्रीय विकास और नागरिक जिम्मेदारियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया है। इन संवैधानिक निर्देशों के माध्यम से देश में पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक बेहतर, स्वच्छ और सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है।

▪ नागरिकों के कर्तव्य

भारतीय संविधान में नागरिकों के कर्तव्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ये कर्तव्य न केवल व्यक्ति की व्यक्तिगत जिम्मेदारियों को दर्शाते हैं, बल्कि इनके माध्यम से सामूहिक कल्याण और सामाजिक विकास को भी सुनिश्चित किया जाता है। संविधान में नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख अनुच्छेद 51-A में किया गया है, जो मौलिक कर्तव्यों के अंतर्गत नागरिकों की नैतिक, सामाजिक और कानूनी जिम्मेदारियों को स्पष्ट करता है। ये कर्तव्य नागरिकों को एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित होने के लिए प्रेरित करते हैं और राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संवैधानिक कर्तव्यों का महत्व

संवैधानिक कर्तव्य नागरिकों को उनके अधिकारों के साथ-साथ राष्ट्र और समाज के प्रति जिम्मेदार बनाते हैं। इन कर्तव्यों के माध्यम से नागरिक अपनी व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ सामाजिक भूमिका को भी बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं। ये कर्तव्य संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के साथ संतुलन स्थापित करते हैं और इनका उद्देश्य समाज में सद्भाव, एकता और राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करना है।

अनुच्छेद 51-A के अंतर्गत 11 मौलिक कर्तव्य (Fundamental Duties)

प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह:

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करे।
2. स्वतंत्रता संग्राम के महान आदर्शों को बनाए रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे मजबूत बनाए।
4. देश की रक्षा करे और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय सेवा के लिए तैयार रहे।
5. सभी लोगों में भाईचारे, धार्मिक और सामाजिक सद्भाव तथा भारत की विविध संस्कृति की भावना को बढ़ावा दे।
6. देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, परंपराओं, संस्थाओं और राष्ट्रीय महत्व के ऐतिहासिक स्थलों का सम्मान और संरक्षण करे।
7. प्राकृतिक पर्यावरण जैसे वन, झीलें, नदियाँ, वन्य जीवों की रक्षा करे और सभी जीव-जंतुओं के प्रति करुणा रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद और सुधार की भावना को विकसित करे।
9. ऐसी सभी गतिविधियों से दूर रहे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों।

10. व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर उत्कृष्टता प्राप्त करने का प्रयास करे ताकि राष्ट्र निरंतर प्रगति की ओर बढ़ सके।
11. माता-पिता या अभिभावक के रूप में 6 से 14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा का अवसर उपलब्ध कराना सुनिश्चित करे। (यह कर्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया।)

नैतिक और सामाजिक कर्तव्य

नागरिकों के कर्तव्य केवल संवैधानिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि इनमें नैतिक और सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी शामिल हैं, जो सामाजिक सद्भाव और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देती हैं।

1) **शैक्षणिक जिम्मेदारी:** प्रत्येक नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है और साथ ही यह उसका कर्तव्य भी है कि वह अपने ज्ञान का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करे। सार्वजनिक शिक्षा के महत्व को समझना और समाज में ज्ञान एवं जागरूकता को बढ़ावा देना नागरिकों का नैतिक कर्तव्य है।
2) **दूसरों के अधिकारों का सम्मान:** नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे दूसरों के अधिकारों का सम्मान करें, उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करें और जातीय, धार्मिक या सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास करें।
3) **कानून के शासन को स्वीकार करना:** नागरिकों का कर्तव्य है कि वे सभी कानूनों और नियमों का पालन करें तथा समाज में व्यवस्था और अनुशासन बनाए रखें। उन्हें कानून के अनुसार कार्य करना चाहिए और न्याय व्यवस्था का सम्मान करना चाहिए।
4) **देश की सेवा:** प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपने देश की सेवा करे और राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए कार्य करे, चाहे वह सेना, पुलिस या किसी अन्य नागरिक भूमिका में हो।

नागरिकों के कर्तव्य और राष्ट्रीय विकास

संवैधानिक कर्तव्य राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये केवल व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास के लिए नहीं हैं, बल्कि देश की समग्र प्रगति और समृद्धि में भी योगदान देते हैं।

1) **राष्ट्रीय एकता और स्थिरता:** नागरिक अपने कर्तव्यों का पालन करके देश की एकता, अखंडता और आंतरिक स्थिरता को मजबूत करते हैं। राष्ट्रीय एकता में भागीदारी से साम्प्रदायिकता और सामाजिक विभाजन को कम किया जा सकता है।
2) **सतत विकास:** पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग से आर्थिक विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

3) **सामाजिक न्याय:** समानता और न्याय को बढ़ावा देना, अधिकारों के उल्लंघन को रोकना और सभी नागरिकों को समान अवसर उपलब्ध कराना नागरिकों के कर्तव्यों का हिस्सा है, जिससे सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को मजबूती मिलती है।

व्यावहारिक चुनौतियाँ

यद्यपि संविधान में नागरिकों के कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से बताया गया है, लेकिन इनके पालन में कई व्यावहारिक चुनौतियाँ मौजूद हैं:

1) **नागरिकों में जागरूकता की कमी:** कुछ नागरिक अपने संवैधानिक कर्तव्यों से परिचित नहीं होते या उनके महत्व को नहीं समझते, जिसके कारण इनका प्रभावी पालन नहीं हो पाता।
2) **कानूनों का उल्लंघन:** कई नागरिक कानूनों की अवहेलना करते हैं या सामाजिक नियमों को नजरअंदाज करते हैं, जिससे समाज में विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
3) **स्वार्थपूर्ण व्यवहार:** कुछ लोग केवल अपने अधिकारों पर ध्यान देते हैं और अन्य नागरिकों के अधिकारों का सम्मान नहीं करते, जिससे सामाजिक तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

समाधान और सुझाव

1) **नागरिक जागरूकता अभियान:** नागरिकों में संवैधानिक कर्तव्यों के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए अभियान चलाए जाने चाहिए, ताकि वे अपने कर्तव्यों को समझें और उनका पालन करें।
2) **शिक्षा के पाठ्यक्रम में नागरिक कर्तव्यों को शामिल करना:** शैक्षणिक संस्थानों में नागरिक कर्तव्यों को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए, ताकि बच्चे और युवा प्रारंभ से ही इनके महत्व को समझ सकें और इन्हें व्यवहार में अपना सकें।
3) **मजबूत कानून व्यवस्था और निगरानी:** सरकार को कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन और निगरानी को मजबूत करना चाहिए ताकि नागरिक अपने कर्तव्यों के प्रति अधिक जिम्मेदार बनें और सामाजिक व्यवस्था बनी रहे।

नागरिकों द्वारा अपने संवैधानिक कर्तव्यों का पालन करना न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि इससे एक विकसित, स्थिर और समरस समाज का निर्माण भी किया जा सकता है। इन कर्तव्यों के माध्यम से भारत का प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्रीय दायित्वों को बेहतर ढंग से निभा सकता है, जिससे पूरे देश के कल्याण और विकास में वृद्धि होती है।

<u>अध्याय 6 : संविधान के संशोधन</u>

1.1 संविधान में संशोधन की प्रक्रिया

- **संशोधन कैसे किए जाते हैं?**
- **महत्वपूर्ण संशोधनों के उदाहरण**

1.2 संविधान का लचीलापन और कठोरता

- **संविधान की लचीली और कठोर विशेषताएँ**
- **संशोधनों की सीमाएँ**

अध्याय 6 : संविधान के संशोधन

6.3 संविधान में संशोधन की प्रक्रिया

▪ संशोधन कैसे किए जाते हैं?

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए संविधान में स्पष्ट रूप से नियम और प्रावधान दिए गए हैं। संविधान के अनुसार, संशोधन की प्रक्रिया को बहुत सावधानीपूर्वक पूरा किया जाता है ताकि संविधान की मूल भावना को बनाए रखा जा सके और देश की विधायी व्यवस्था में संतुलन बना रहे।

भारत के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया अनुच्छेद 368 के अंतर्गत निर्धारित की गई है। यह अनुच्छेद संविधान में संशोधन करने की अनुमति देता है और यह स्पष्ट करता है कि किसी भी अनुच्छेद या प्रावधान में परिवर्तन, जोड़ या संशोधन किस प्रकार किया जा सकता है।

अनुच्छेद 368 के अनुसार, संविधान में संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति आवश्यक होती है, अर्थात लोकसभा और राज्यसभा दोनों में संशोधन विधेयक को बहुमत से पारित करना होता है। लेकिन यह साधारण बहुमत से नहीं, बल्कि विशेष बहुमत (दो-तिहाई बहुमत) के माध्यम से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में राज्यों की स्वीकृति भी आवश्यक हो सकती है, विशेष रूप से तब जब संशोधन राज्यों के अधिकारों या हितों को प्रभावित करता हो।

सामान्य रूप से, संविधान में संशोधन के लिए पाँच प्रमुख चरण होते हैं:

1. **संशोधन विधेयक का प्रस्ताव:** संशोधन विधेयक किसी भी संसद सदस्य या सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। यह विधेयक संसद के किसी एक सदन (लोकसभा या राज्यसभा) में प्रस्तुत किया जाता है।
2. **विधेयक की समीक्षा:** जब संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया जाता है, तो सदन में उस पर चर्चा की जाती है और उसके विभिन्न पहलुओं को समझा जाता है। इसके बाद विधेयक को मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है।
3. **दोनों सदनों की स्वीकृति:** संशोधन विधेयक को संसद के दोनों सदनों से पारित करवाना आवश्यक होता है। दोनों सदनों में विधेयक को दो-तिहाई विशेष बहुमत से स्वीकृति प्राप्त करनी होती है।
4. **राज्यों की स्वीकृति (यदि आवश्यक हो):** यदि संशोधन ऐसा है जो राज्यों के अधिकारों या शक्तियों को प्रभावित करता है, तो इसके लिए राज्यों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। यह स्वीकृति उन मामलों

में आवश्यक होती है जब संविधान के ऐसे प्रावधानों में संशोधन किया जाता है जो राज्यों के अधिकारों या संघीय व्यवस्था से संबंधित होते हैं।

5. **राष्ट्रपति की स्वीकृति:** जब संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों से पारित हो जाता है और आवश्यक होने पर राज्यों की स्वीकृति भी प्राप्त हो जाती है, तो इसे राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। 24वें संविधान संशोधन (1971) के बाद राष्ट्रपति के पास इस विधेयक को रोकने या वापस भेजने का अधिकार नहीं है और वे इसे अपनी स्वीकृति देने के लिए कानूनी रूप से बाध्य होते हैं। इसके बाद संशोधन आधिकारिक रूप से संविधान का हिस्सा बन जाता है।

इस प्रकार, संविधान में संशोधन एक लंबी और विस्तृत प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न संवैधानिक संस्थाओं की स्वीकृति आवश्यक होती है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि संविधान में किए जाने वाले परिवर्तन देश के हित में हों और संविधान की मूल भावना तथा मूल ढाँचे को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे।

▪ महत्वपूर्ण संशोधनों के उदाहरण

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील चरण है। विभिन्न समयों पर संविधान में कई महत्वपूर्ण संशोधन किए गए हैं, जिन्होंने भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। भारत के संविधान में 1950 से अब तक 106 संशोधन किए जा चुके हैं। ये संशोधन संविधान की मूल भावना को बनाए रखते हुए देश की विकास संबंधी आवश्यकताओं के अनुसार किए गए हैं। संविधान में किए गए कुछ महत्वपूर्ण संशोधनों के उदाहरण निम्नलिखित हैं:

1. **पहला संशोधन (1951)**

उद्देश्य: भूमि सुधार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से भूमि सुधार से संबंधित कानूनों को संवैधानिक संरक्षण दिया गया। साथ ही, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ उचित प्रतिबंध लगाए गए।

2. **सातवाँ संशोधन (1956)**

उद्देश्य: राज्यों के पुनर्गठन के बाद प्रशासनिक परिवर्तन।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से राज्यों के पुनर्गठन के बाद प्रशासनिक व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन किए गए।

3. **24वाँ संशोधन (1971)**

उद्देश्य: संसद को संविधान में संशोधन करने की पूर्ण शक्ति प्रदान करना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से संसद को संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की स्पष्ट शक्ति प्रदान की गई।

4. **42वाँ संशोधन (1976)**

उद्देश्य: संविधान में बड़े परिवर्तन, जिसे “मिनी संविधान” कहा गया।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से संविधान में व्यापक परिवर्तन किए गए। इसमें नीति-निर्देशक तत्वों (Directive Principles) को मौलिक अधिकारों पर प्राथमिकता देने का प्रावधान किया गया। साथ ही, प्रस्तावना में "समाजवादी", "धर्मनिरपेक्ष" और "अखंडता" शब्द जोड़े गए।

5. **44वाँ संशोधन (1978)**

उद्देश्य: आपातकाल के बाद मौलिक अधिकारों को मजबूत बनाना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से आपातकाल के बाद नागरिकों के मौलिक अधिकारों को अधिक सुरक्षा प्रदान की गई और राष्ट्रपति के कुछ अधिकारों को सीमित किया गया।

6. **52वाँ संशोधन (1985)**

उद्देश्य: दसवीं अनुसूची (दल-बदल विरोधी कानून) को जोड़ना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से संविधान में दसवीं अनुसूची जोड़ी गई, जिसके अंतर्गत संसद और विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा दल-बदल करने पर रोक लगाई गई।

7. **73वाँ संशोधन (1992)**

उद्देश्य: पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा देना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई और ग्राम पंचायतों को अधिक मजबूत बनाया गया।

8. **74वाँ संशोधन (1992)**

उद्देश्य: शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा देना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से नगरपालिकाओं और अन्य शहरी स्थानीय सरकारों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई।

9. 86वाँ संशोधन (2002)

उद्देश्य: शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया।

10. 101वाँ संशोधन (2016)

उद्देश्य: जीएसटी (GST) लागू करना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से वस्तु एवं सेवा कर (Goods and Services Tax - GST) लागू किया गया, जो एक समान कर प्रणाली है।

11. 103वाँ संशोधन (2019)

उद्देश्य: आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) को 10% आरक्षण प्रदान करना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए शिक्षा और सरकारी नौकरियों में 10% आरक्षण का प्रावधान किया गया।

12. 104वाँ संशोधन (2020)

उद्देश्य: अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के लिए आरक्षण की अवधि बढ़ाना।

विवरण: इस संशोधन के माध्यम से लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में SC/ST के लिए आरक्षण को वर्ष 2030 तक बढ़ाया गया। साथ ही, एंग्लो-इंडियन समुदाय के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था समाप्त की गई।

13. 106वाँ संशोधन (2023)

उद्देश्य: लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण।

विवरण: इस संशोधन (नारी शक्ति वंदन अधिनियम) के माध्यम से लोकसभा, दिल्ली विधानसभा और सभी राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई (33%) सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया। इसमें अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) की महिलाओं के लिए उप-कोटा भी शामिल है।

इन महत्वपूर्ण संशोधनों से संविधान की लचीलापन और समय के अनुसार परिवर्तन करने की क्षमता स्पष्ट होती है। इन संशोधनों ने भारत की राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था में समय-समय पर आवश्यक सुधार किए हैं। इनका मुख्य उद्देश्य संविधान की मूल भावना को बनाए रखते हुए देश की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करना था।

6.2 संविधान का लचीलापन और कठोरता

▪ संविधान की लचीली और कठोर विशेषताएँ

भारतीय संविधान की लचीलापन और कठोरता दोनों महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, जो इसकी प्रकृति और कार्यप्रणाली को दर्शाती हैं। संविधान में लचीली विशेषताओं की उपस्थिति इसे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढलने में सहायता करती है, जबकि इसकी कठोर विशेषताएँ संविधान के मूल सिद्धांतों और मूल भावना की रक्षा करने में सहायक होती हैं।

संविधान की लचीली विशेषताएँ

1) **संविधान में संशोधन की प्रक्रिया:** भारतीय संविधान एक लचीला संविधान है क्योंकि इसमें संशोधन करने की व्यवस्था की गई है। संविधान में संशोधन की प्रक्रिया संसद के माध्यम से की जा सकती है, जिसके द्वारा संविधान के प्रावधानों और संरचना में आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं। इस लचीली विशेषता के कारण संविधान देश की बदलती आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को अनुकूल बना सकता है, जैसे कि समय-समय पर उत्पन्न होने वाली राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए।
2) **संविधान के प्रावधानों में लचीलापन:** संविधान के कुछ प्रावधानों में ऐसी लचीलापन मौजूद है, जिसके कारण आवश्यकता पड़ने पर समय के साथ उनमें परिवर्तन या सुधार किया जा सकता है। विशेष रूप से मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों से संबंधित प्रावधानों में जनहित को ध्यान में रखते हुए आवश्यक बदलाव किए जा सकते हैं।
3) **प्रस्तावना (Preamble) की व्याख्या:** संविधान की प्रस्तावना की व्याख्या भी लचीले तरीके से की जा सकती है। न्यायालय समय और परिस्थितियों के अनुसार इसके सिद्धांतों को समझ सकते हैं और उनके आधार पर विभिन्न निर्णय दे सकते हैं। इससे संविधान को बदलते समय के अनुसार लागू करने में सहायता मिलती है और उसकी मूल भावना हमेशा सुरक्षित रहती है।
4) **न्यायपालिका की व्याख्यात्मक शक्ति:** भारतीय न्यायपालिका, विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय, को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त है। इसके माध्यम से संविधान के अस्पष्ट प्रावधानों और संभावित विरोधाभासों को स्पष्ट किया जा सकता है और संविधान को वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार समझने योग्य बनाया जा सकता है। न्यायालय संविधान के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या करके उसके प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संविधान की कठोर विशेषताएँ

1) **संविधान की मूल संरचना (Basic Structure):** भारतीय संविधान में कुछ ऐसे तत्व शामिल हैं जो इसकी मूल संरचना का हिस्सा हैं और जिनमें परिवर्तन करना कठिन होता है। उदाहरण के लिए, संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और राज्य के नीति-निर्देशक तत्व ऐसे महत्वपूर्ण भाग हैं, जिनमें परिवर्तन करने की संसद की शक्ति सीमित है। इनमें संशोधन के लिए संसद को एक जटिल प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।
2) **संविधान के मूल सिद्धांतों का संरक्षण:** संविधान में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय और संघीय व्यवस्था जैसे मूल सिद्धांतों की रक्षा आवश्यक है। इन सिद्धांतों को संविधान की कठोर विशेषताओं के रूप में देखा जाता है, क्योंकि ये देश की संवैधानिक व्यवस्था की नींव हैं। इनमें परिवर्तन करना न केवल कानूनी रूप से कठिन है, बल्कि यह संविधान के मूल उद्देश्यों के भी विरुद्ध हो सकता है।
3) **संविधान की कठोरता और राजनीतिक स्थिरता:** संविधान की कठोर विशेषता इसे राजनीतिक स्थिरता प्रदान करती है। यह विशेषता संविधान को मजबूत बनाती है और उसकी मूल भावना को अचानक होने वाले राजनीतिक या सामाजिक परिवर्तनों से सुरक्षित रखती है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का दुरुपयोग न हो और देश को एक मजबूत कानूनी ढाँचा प्राप्त हो।
4) **संविधान में परिवर्तन के लिए कठिन प्रक्रिया:** संविधान में परिवर्तन की प्रक्रिया को कठोर बनाने के लिए कई चरण और शर्तें निर्धारित की गई हैं। संविधान में बड़े बदलाव के लिए संसद में विशेष बहुमत (दो-तिहाई बहुमत) की आवश्यकता होती है और कुछ मामलों में राज्यों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। इस कठिन प्रक्रिया के माध्यम से संविधान की मूल भावना को सुरक्षित रखा जाता है और यह सुनिश्चित किया जाता है कि संशोधन देश के व्यापक हित में हों।

भारतीय संविधान की लचीलापन और कठोरता की विशेषताएँ इसे ऐसा संविधान बनाती हैं जो समय के साथ देश की बदलती आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है, लेकिन साथ ही इसके मूल सिद्धांतों और आधारभूत संरचना को अनावश्यक या असंतुलित परिवर्तनों से सुरक्षित रखता है। यह संविधान की अखंडता, स्थिरता और प्रभावशीलता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

▪ संशोधनों की सीमाएँ

संविधान में संशोधनों की सीमाएँ वे नियम और सिद्धांत हैं, जो संविधान में परिवर्तन करने की प्रक्रिया के दौरान संसद और अन्य संस्थाओं की शक्तियों को सीमित करते हैं, ताकि संविधान की मूल विशेषताओं और उद्देश्यों को सुरक्षित रखा जा सके। ये सीमाएँ यह सुनिश्चित करती हैं कि संविधान में संशोधन की प्रक्रिया कानूनी रूप से उचित, संतुलित और व्यवस्थित तरीके से पूरी हो तथा संविधान की मूल भावना में कोई अनावश्यक या असंतुलित परिवर्तन न किया जा सके।

1) **संविधान की मूल विशेषताओं की सुरक्षा:** संविधान की मूल विशेषताओं जैसे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय की रक्षा एक महत्वपूर्ण सीमा है, जिसके अंतर्गत संविधान में ऐसे संशोधन नहीं किए जा सकते जो इन मूल सिद्धांतों को समाप्त या कमजोर कर दें। ये विशेषताएँ देश की संवैधानिक व्यवस्था की नींव हैं और इनमें परिवर्तन संविधान की मूल भावना के विरुद्ध हो सकता है। संविधान की ये मूल विशेषताएँ किसी भी ऐसे संशोधन को रोकती हैं, जो देश की संवैधानिक संरचना को नुकसान पहुँचा सकता है।
2) **संविधान के कठोर प्रावधानों की सीमाएँ:** संविधान के कुछ प्रावधानों में ऐसी कठोर सीमाएँ निर्धारित की गई हैं, जो संसद को उनमें मनमाने परिवर्तन करने से रोकती हैं। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन की प्रक्रिया बताई गई है, लेकिन इसके अंतर्गत ऐसी सीमाएँ भी हैं जो संविधान की मूल संरचना या आधारभूत सिद्धांतों में परिवर्तन की अनुमति नहीं देतीं। इन प्रावधानों में बदलाव केवल एक जटिल और कठिन प्रक्रिया के माध्यम से ही किया जा सकता है।
3) **संविधान की व्याख्या की सीमाएँ:** न्यायपालिका (विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय) को संविधान की व्याख्या करने का अंतिम अधिकार प्राप्त है, लेकिन न्यायपालिका स्वयं संविधान में संशोधन नहीं करती। न्यायपालिका की मुख्य भूमिका संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और संशोधनों की समीक्षा करना है। यदि संसद ऐसा संशोधन करती है जो संविधान की मूल संरचना (Basic Structure) को बदलने या समाप्त करने का प्रयास करता है, तो न्यायालय अपनी व्याख्यात्मक शक्ति का उपयोग करके उस संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर सकता है। न्यायालय संविधान की मूल भावना की रक्षा करते हैं और किसी भी संस्था को संविधान के मूल सिद्धांतों को समाप्त करने की अनुमति नहीं देते।
4) **धार्मिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा:** भारतीय संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25-28) तथा सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30) को विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है। तकनीकी रूप से संसद इन अनुच्छेदों में संशोधन कर सकती है, लेकिन संशोधन की सीमा यह है कि वह इन अधिकारों की मूल भावना को समाप्त या कमजोर नहीं कर सकती। ये प्रावधान संसद के

लिए ऐसी सीमा निर्धारित करते हैं, जिससे अल्पसंख्यकों और नागरिकों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहचान को नुकसान न पहुँचाया जा सके।

5) **संघीय व्यवस्था की अखंडता:** भारत का संविधान एक संघीय व्यवस्था पर आधारित है, जिसमें केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का संतुलन स्थापित किया गया है। संविधान में ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो इस संतुलन को समाप्त कर दे या पूरी शक्ति केवल केंद्र के हाथों में केंद्रित कर दे। राज्यों की स्वायत्तता और केंद्र की भूमिका के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए संविधान में विशेष सीमाएँ निर्धारित की गई हैं।

6) **संवैधानिक समझौते और अंतरराष्ट्रीय संबंधों की सीमाएँ:** संविधान का अनुच्छेद 253 संसद को अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए कानून बनाने की व्यापक शक्ति प्रदान करता है। लेकिन इसकी सीमा यह है कि सरकार किसी भी अंतरराष्ट्रीय समझौते या नियम को लागू करने के बहाने संविधान की मूल संरचना (Basic Structure) या देश की संप्रभुता को नुकसान पहुँचाने वाला कोई संशोधन नहीं कर सकती।

7) **संविधान संशोधन प्रक्रिया में संसद की सीमाएँ:** संविधान में संशोधन का अधिकार संसद को प्राप्त है, लेकिन इस अधिकार की भी कुछ सीमाएँ हैं। संसद ऐसे संशोधन नहीं कर सकती जो संविधान के मूल उद्देश्यों, सिद्धांतों या कठोर प्रावधानों को प्रभावित करें। संसद को संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार है, लेकिन उसे संविधान की मूल संरचना को बदलने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

इन सीमाओं का उद्देश्य संविधान की सुरक्षा और उसकी मूल विशेषताओं को बनाए रखना है। संविधान में संशोधन करते समय इन सीमाओं का ध्यान रखा जाता है ताकि संविधान की अखंडता, स्थिरता और मूल भावना हमेशा सुरक्षित रह सके।

अध्याय 7 : संविधान की रक्षा

7.1 न्यायपालिका की भूमिका

- संविधान की व्याख्या
- मौलिक अधिकारों की रक्षा

7.2 नागरिकों की भूमिका

- संविधान के महत्व को समझना
- संविधान की रक्षा के लिए नागरिकों की जिम्मेदारी

अध्याय 7 : संविधान की रक्षा

7.3 न्यायपालिका की भूमिका

▪ संविधान की व्याख्या

संविधान की व्याख्या न्यायपालिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसके माध्यम से वह संविधान के प्रावधानों, सिद्धांतों और उद्देश्यों को स्पष्ट करती है। न्यायपालिका को संविधान की रक्षा के लिए यह अधिकार दिया गया है कि वह संविधान के विवरण और उसकी भावना को समझकर उसे लागू करे, ताकि संविधान की सभी विशेषताओं, मूल्यों और सिद्धांतों की रक्षा की जा सके।

1) **संविधान की भाषा की स्पष्टता :** संविधान की व्याख्या की प्रक्रिया सबसे पहले उसकी भाषा को समझने पर आधारित होती है। जब संविधान के प्रावधानों में कोई अस्पष्टता, विरोधाभास या अनिश्चितता होती है, तब न्यायपालिका का कार्य उन प्रावधानों को स्पष्ट करके उनका सही अर्थ निर्धारित करना होता है। न्यायपालिका संविधान के शब्दार्थ को समझते हुए उसकी मूल भावना की भी रक्षा करती है।
2) **संविधान की भावना को बनाए रखना :** संविधान की व्याख्या केवल उसके शब्दों तक सीमित नहीं होती, बल्कि न्यायपालिका को संविधान की भावना, अर्थात उसके उद्देश्यों और मूल सिद्धांतों को भी ध्यान में रखना होता है। न्यायपालिका यह सुनिश्चित करती है कि संविधान की व्याख्या उसकी मूल भावना के अनुरूप हो और किसी भी निर्णय या परिवर्तन के माध्यम से संविधान के बुनियादी सिद्धांतों का उल्लंघन न हो।
3) **न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता :** संविधान की व्याख्या के दौरान न्यायपालिका की स्वतंत्रता अत्यंत आवश्यक है। न्यायपालिका को किसी बाहरी दबाव या सरकार की नीतियों से मुक्त रहकर निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता यह सुनिश्चित करती है कि संविधान की व्याख्या में कोई पक्षपात या असंवैधानिक कार्यवाही न हो और संविधान की वास्तविक व्याख्या की जाए।
4) **संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या में न्यायपालिका की भूमिका :** संविधान की व्याख्या में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि वह संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद की व्याख्या करती है और संवैधानिक प्रावधानों को राष्ट्रीय मामलों में सही प्रकार से लागू करती है। न्यायपालिका आवश्यक सिद्धांतों को समझने, उनके संतुलन को बनाए रखने तथा संविधान के अनुरूप सरकार के कार्यों की समीक्षा करने की जिम्मेदार होती है।
5) **मौलिक अधिकारों की व्याख्या :** संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों की रक्षा न्यायपालिका की जिम्मेदारी है। न्यायपालिका संविधान के प्रावधानों के अनुसार नागरिकों के मौलिक अधिकारों की व्याख्या करके उन्हें संरक्षण प्रदान करती है। वह यह सुनिश्चित करती है कि सरकार नागरिकों के अधिकारों का हनन न करे और संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार सुरक्षित रहें।

6) **संवैधानिक विवादों का समाधान :** जब भी संविधान से संबंधित कोई विवाद उत्पन्न होता है, विशेषकर राज्य और केंद्र सरकार के बीच या किसी नागरिक के अधिकारों के संदर्भ में, तब न्यायपालिका को उसका समाधान करने का अधिकार प्राप्त होता है। न्यायपालिका ऐसे विवादों में संविधान की व्याख्या के आधार पर निर्णय देती है और संविधान की मूल विशेषताओं की रक्षा करती है।

7) **ऐतिहासिक निर्णयों का आधार :** संविधान की व्याख्या करते समय न्यायपालिका पूर्व के महत्वपूर्ण संवैधानिक निर्णयों को भी ध्यान में रखती है, ताकि निर्णय संविधान के अनुरूप हों। यह प्रक्रिया संविधान की व्याख्या में निरंतरता और सामंजस्य बनाए रखती है तथा यह सुनिश्चित करती है कि समय के साथ संविधान का मूल उद्देश्य परिवर्तित न हो।

संविधान की व्याख्या में न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत केंद्रीय और महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह संविधान के प्रावधानों को स्पष्ट करने के साथ-साथ उसकी मूल भावना को भी बनाए रखती है। न्यायपालिका द्वारा की गई व्याख्या यह सुनिश्चित करती है कि संविधान को सही और प्रभावी ढंग से लागू किया जाए तथा उसकी मूल विशेषताओं की रक्षा की जाए।

· मौलिक अधिकारों की रक्षा

मौलिक अधिकारों की रक्षा न्यायपालिका की एक अन्य महत्वपूर्ण भूमिका है, जो संविधान द्वारा नागरिकों को दिए गए अधिकारों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। ये अधिकार किसी भी सरकार या संस्था के असंवैधानिक कार्य से प्रभावित नहीं होने चाहिए, और न्यायपालिका यह सुनिश्चित करती है कि संविधान में दिए गए अधिकारों का उल्लंघन न हो।

1) **संविधान में दिए गए अधिकारों का विवरण :** भारत के संविधान में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिनका उल्लेख अनुच्छेद 14 से 32 तक किया गया है। इन अधिकारों में समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार तथा संवैधानिक उपचार का अधिकार शामिल हैं। न्यायपालिका का कार्य इन अधिकारों की रक्षा करना और यह सुनिश्चित करना है कि सरकार या राज्य इनका उल्लंघन न करे।
2) **अनुच्छेद 32 की भूमिका :** संविधान में संवैधानिक उपचार का अधिकार (अनुच्छेद 32) नागरिकों को यह अधिकार देता है कि यदि उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो तो वे न्यायालय में याचिका दायर कर सकें। यह अनुच्छेद न्यायपालिका को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करे और असंवैधानिक कार्यों के विरुद्ध आदेश जारी करे।
3) **संवैधानिक न्यायालयों की भूमिका :** भारत का सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए उत्तरदायी हैं। जब किसी नागरिक या समूह के अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो वे न्यायालयों का सहारा लेते हैं, और न्यायपालिका इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकारी कार्यों की समीक्षा करती है। ये न्यायालय यह जाँचते हैं कि सरकारी कार्य संविधान के अनुरूप हैं या नहीं।
4) **न्यायपालिका के निर्णय और संरक्षण :** जब न्यायपालिका किसी मामले में मौलिक अधिकारों की रक्षा की बात करती है, तो वह अपने निर्णयों में संविधान की भावना और नागरिकों के अधिकारों के महत्व को ध्यान में रखती है। उदाहरण के लिए, सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक अवसरों पर अपनी व्याख्याओं और निर्णयों के माध्यम से मौलिक अधिकारों की रक्षा की है तथा यह स्वीकार किया है कि नागरिकों के अधिकारों को केवल अत्यंत आवश्यक परिस्थितियों में ही सीमित किया जा सकता है।
5) **व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय :** न्यायपालिका यह भी सुनिश्चित करती है कि सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार सभी नागरिकों को समानता और न्याय प्राप्त हो। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों का दायित्व है कि वे प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकारों के अंतर्गत समानता और स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार प्रदान करें, विशेष रूप से उन लोगों को जो कमजोर या वंचित स्थिति में हों।

6) **कानूनी नियंत्रण और सरकारी कार्यों की समीक्षा :** न्यायपालिका मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार के कार्यों की समीक्षा करती है, और जब सरकार किसी व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन करती है, तो न्यायपालिका उसके विरुद्ध आवश्यक कदम उठाती है। न्यायपालिका के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि सरकार का प्रत्येक कार्य संविधान के अनुरूप हो और नागरिकों के मौलिक अधिकार सुरक्षित रहें।
7) **पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन (PIL) :** पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन के माध्यम से न्यायपालिका जनहित में मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की भी सुनवाई करती है। यह कानूनी व्यवस्था जनहित के मामलों के लिए न्यायालयों के द्वार खोलती है, जहाँ नागरिक या सामाजिक संगठन किसी व्यक्ति या समूह के अधिकारों के उल्लंघन के संबंध में न्यायालय में याचिका दायर कर सकते हैं।

मौलिक अधिकारों की रक्षा न्यायपालिका की जिम्मेदारी है, और यह वह संवैधानिक गारंटी है जिसके माध्यम से सभी नागरिकों को उनके अधिकारों की सुरक्षा प्राप्त होती है। न्यायपालिका की भूमिका यह सुनिश्चित करती है कि किसी भी सरकार या राज्य संस्था के कार्य संविधान के अंतर्गत नागरिकों के मौलिक अधिकारों के अनुरूप हों, और यदि इन अधिकारों का उल्लंघन हो तो न्यायपालिका तुरंत हस्तक्षेप करे।

7.2 नागरिकों की भूमिका

▪ संविधान के महत्व को समझना

संविधान के महत्व को समझना नागरिकों के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह दस्तावेज़ न केवल सरकार के कार्य करने की पद्धति को स्पष्ट करता है, बल्कि इसमें नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा भी सुनिश्चित की गई है। संविधान किसी भी राष्ट्र की कानूनी नींव होता है और उसके अनुसार चलना सरकार, राज्य तथा नागरिकों के आपसी संबंधों का आधार है। यदि नागरिक संविधान के महत्व को समझें, तो वे न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होंगे, बल्कि अपने कर्तव्यों का भी बेहतर ढंग से पालन कर सकेंगे।

1) **कानूनी संरचना और सरकारी अधिकार-क्षेत्र** : संविधान सरकार की कानूनी संरचना और उसके विभिन्न अंगों के अधिकार-क्षेत्र को स्पष्ट करता है। यह बताता है कि कौन-सा संस्थान कौन-सा कार्य करेगा और उसकी सीमाएँ क्या होंगी। यदि नागरिक संविधान के महत्व को समझते हैं, तो वे यह जान सकते हैं कि सरकार से उनकी क्या अपेक्षाएँ हैं और सरकार के अधिकार क्या हैं। इससे नागरिकों को अपने अधिकारों और सरकारी जिम्मेदारियों के बारे में जागरूकता प्राप्त होती है।
2) **मौलिक अधिकारों की सुरक्षा :** संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के महत्व को समझना नागरिकों के लिए आवश्यक है, क्योंकि ये उनके दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। संविधान नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा और संस्कृति से संबंधित अधिकार प्रदान करता है। यदि नागरिक अपने मौलिक अधिकारों को समझेंगे, तो वे किसी भी उल्लंघन की स्थिति में संवैधानिक उपायों का सहारा लेकर अपने अधिकारों की रक्षा कर सकेंगे।
3) **संविधान के माध्यम से सामाजिक न्याय की प्राप्ति :** संविधान का उद्देश्य केवल सरकार के अधिकारों को निर्धारित करना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय की भी गारंटी देता है। यदि नागरिक यह समझ लें कि संविधान में दिए गए अधिकार और सिद्धांत उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान करते हैं, तो वे इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए अधिक प्रतिबद्ध हो सकते हैं। संविधान के महत्व को समझना नागरिकों को न्याय प्राप्त करने की आधारशिला प्रदान करता है।
4) **संविधान की सीमाएँ और संरक्षण :** संविधान का महत्व इस बात में भी है कि यह किसी भी असंवैधानिक कार्यवाही के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। यदि नागरिक संविधान की सीमाओं और उसके संरक्षण को समझेंगे, तो वे असंवैधानिक या अवैध कार्यों के विरुद्ध आवाज़ उठा सकेंगे। संविधान के महत्व को समझना नागरिकों को यह जागरूकता देता है कि उनके अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी संविधान द्वारा सुनिश्चित की गई है।
5) **नागरिकों की जिम्मेदारी और संविधान की रक्षा :** संविधान के प्रति जागरूकता नागरिकों को यह समझने में सहायता करती है कि संविधान की रक्षा केवल सरकार का कार्य नहीं है, बल्कि यह उनका भी कर्तव्य

है कि वे संविधान की भावना को समझें और उसकी रक्षा करें। नागरिक संविधान की रक्षा के लिए विभिन्न माध्यमों से हस्तक्षेप कर सकते हैं, जैसे जनहित याचिका (PIL) के माध्यम से न्यायालय में आवेदन करना या संवैधानिक मूल्यों का समर्थन करना। संविधान के महत्व को समझना नागरिकों को संवैधानिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करता है।

6) **संविधान का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव :** संविधान केवल राजनीतिक और कानूनी विषयों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी निर्धारित करता है। नागरिकों के लिए यह समझना आवश्यक है कि संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकार और स्वतंत्रताएँ उनके सामाजिक जीवन को बेहतर बनाने में सहायक हैं। यह समझ उन्हें सामाजिक न्याय के महत्व से परिचित कराती है और उनमें जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न करती है।

7) **मजबूत लोकतंत्र का निर्माण :** संविधान के महत्व को समझना लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने में सहायक होता है। लोकतंत्र में जनता ही सर्वोच्च शक्ति होती है और संविधान नागरिकों को इस शक्ति का उपयोग करने का अधिकार देता है। संविधान के प्रति जागरूक नागरिक लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अधिक प्रभावी ढंग से भाग ले सकते हैं और अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं, जो लोकतंत्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यदि नागरिक संविधान के महत्व को समझेंगे, तो वे न केवल अपने अधिकारों का बेहतर उपयोग करेंगे, बल्कि अपने कर्तव्यों को भी अधिक अच्छी तरह समझ पाएँगे, जिससे लोकतंत्र मजबूत होगा और सामाजिक न्याय की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

· संविधान की रक्षा के लिए नागरिकों की जिम्मेदारी

संविधान की रक्षा के लिए नागरिकों की जिम्मेदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि संविधान न केवल सरकार के कार्य करने की पद्धति को निर्धारित करता है, बल्कि यह नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा भी करता है। संविधान की रक्षा में नागरिकों की भूमिका इस बात पर निर्भर करती है कि वे अपने संवैधानिक अधिकारों और कर्तव्यों को समझें तथा संविधान की भावना को बनाए रखने के लिए सक्रिय रूप से भाग लें।

1) **संविधान की शिक्षा और जागरूकता :** नागरिकों की पहली जिम्मेदारी यह है कि वे संविधान के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करें। संविधान के महत्व तथा उसमें दिए गए अधिकारों और कर्तव्यों को समझना आवश्यक है, ताकि वे संविधान की रक्षा के संबंध में अपनी जिम्मेदारियों का बेहतर ढंग से पालन कर सकें। जन-स्तर पर संवैधानिक शिक्षा का प्रसार और संविधान के मूल सिद्धांतों की जानकारी देना इस दिशा में सहायक हो सकता है।
2) **संवैधानिक अधिकारों की रक्षा :** नागरिकों का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य यह भी है कि वे अपने संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करें। यदि किसी व्यक्ति के संविधान प्रदत्त अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो नागरिकों को संवैधानिक और कानूनी उपायों का सहारा लेकर उन अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। स्वतंत्रता, समानता और धार्मिक स्वतंत्रता जैसे अधिकारों की रक्षा करना नागरिकों की जिम्मेदारी है।
3) **संवैधानिक मूल्यों का सम्मान :** संविधान की भावना को बनाए रखने के लिए नागरिकों को लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों का सम्मान करना चाहिए। यह समझना आवश्यक है कि संविधान के मूल मूल्य देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का आधार हैं, और उनका सम्मान करना राष्ट्र की स्थिरता के लिए अनिवार्य है।
4) **कानूनी प्रक्रिया में भागीदारी :** नागरिकों का एक अन्य कर्तव्य यह है कि वे कानूनी प्रक्रिया में भाग लेकर संविधान की रक्षा करें। यदि किसी संवैधानिक मुद्दे पर विवाद उत्पन्न होता है, तो नागरिक जनहित याचिका (PIL) जैसे माध्यमों से न्यायालय का सहारा लेकर अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। इस प्रकार वे संविधान के संरक्षण में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।
5) **विरोध के लिए कानूनी मार्ग अपनाना :** यदि सरकार या कोई अन्य संस्था संविधान का उल्लंघन करती है, तो नागरिकों का दायित्व है कि वे उसका विरोध करें, लेकिन यह विरोध संवैधानिक सीमाओं और कानून के दायरे में रहकर होना चाहिए। संवैधानिक तरीके से प्रदर्शन करना और संविधान-विरोधी नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाना नागरिकों की जिम्मेदारी है।
6) **लोकतंत्र में सक्रिय सहभागिता :** संविधान की रक्षा के लिए नागरिकों की एक महत्वपूर्ण भूमिका लोकतंत्र में सक्रिय भागीदारी है। मतदान के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करना, संसद और सरकार

के निर्णयों में रुचि लेना तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत बनाना संविधान की रक्षा में सहायक होता है। संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूक रहना और उनकी रक्षा के लिए अपने मताधिकार का प्रयोग करना लोकतंत्र की स्थिरता के लिए आवश्यक है।

7) **संविधान के अनुरूप सामूहिक जिम्मेदारी :** संविधान की रक्षा के लिए नागरिकों की सामूहिक जिम्मेदारी यह है कि वे अपने सामाजिक संबंधों में संविधान की उपस्थिति और उसके महत्व को स्वीकार करें। संविधान की रक्षा में व्यक्तिगत जिम्मेदारियों के साथ-साथ सामूहिक रूप से भी उसका समर्थन करना आवश्यक है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक संविधान का सम्मान करे और उसके अनुरूप आचरण करे।

8) **संविधान की निष्ठापूर्वक रक्षा :** संविधान की रक्षा में नागरिकों की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी यह है कि वे किसी भी असंवैधानिक कार्य का विरोध करें। संविधान-विरोधी कानूनों या कदमों के विरुद्ध वैधानिक विरोध और कानूनी कार्रवाई करना नागरिकों का महत्वपूर्ण कर्तव्य है, ताकि संविधान की वर्तमान स्थिति और उसकी गरिमा को बनाए रखा जा सके।

संविधान की रक्षा में नागरिकों की भूमिका केवल उनके अपने अधिकारों की सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पूरे सामाजिक तंत्र की स्थिरता के लिए भी आवश्यक है। जब नागरिक संविधान के अनुसार अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझते हैं तथा उसकी रक्षा के लिए प्रभावी ढंग से कार्य करते हैं, तब वे लोकतंत्र, न्याय और राष्ट्र की समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

<u>अध्याय 8 : संविधान और उसका व्यावहारिक अनुप्रयोग</u>

8.1 संविधान और नागरिकों के अधिकार

- **नागरिकों के अधिकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग**
- **मौलिक अधिकारों के अंतर्गत मुकदमे**
- **संविधान के अंतर्गत न्यायालयों की भूमिका**

8.2 दैनिक जीवन और संविधान का अनुप्रयोग

- **संविधान के विभिन्न भागों की व्यावहारिक व्याख्या**
- **दैनिक जीवन में संविधान का अनुप्रयोग**

अध्याय 8 : संविधान और उसका व्यावहारिक अनुप्रयोग

8.3 संविधान और नागरिकों के अधिकार

▪ नागरिकों के अधिकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

भारतीय संविधान में नागरिकों को दिए गए अधिकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के सम्मिलित सहयोग की आवश्यकता होती है। संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का उद्देश्य प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों की रक्षा करना है। व्यावहारिक रूप से इन अधिकारों का क्रियान्वयन तब तक संभव नहीं जब तक सरकार और न्यायालय इन अधिकारों को प्राथमिकता न दें और इनकी अवहेलना पर प्रभावी कार्रवाई न की जाए।

1) **मौलिक अधिकारों की सुरक्षा :** संविधान के भाग तृतीय में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, जैसे जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता, भाषा की स्वतंत्रता, और शिक्षा का अधिकार। इन अधिकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग तब होता है जब नागरिक किसी भी सरकारी अथवा राजकीय संस्था द्वारा इन अधिकारों के हनन के विरुद्ध न्यायपालिका की शरण लेते हैं। न्यायालय इन अधिकारों के उल्लंघन पर सरकारी कार्रवाइयों को रद्द कर सकते हैं और नागरिकों को उनके अधिकारों के संबंध में शीघ्र न्याय प्रदान करते हैं।

उदाहरण: उच्चतम न्यायालय का निर्णय “मेनका गांधी बनाम भारत संघ” (1978) विशेष महत्व रखता है, जिसमें न्यायालय ने संविधान में दिए गए व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या करते हुए कहा कि इसका अर्थ केवल शारीरिक स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि इसमें नागरिक के समस्त व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा सम्मिलित है, जैसे बोलने, सोचने और जीवन व्यतीत करने का अधिकार।

2) **न्यायपालिका की भूमिका और मौलिक अधिकारों का क्रियान्वयन :** मौलिक अधिकारों के व्यावहारिक अनुप्रयोग में न्यायपालिका सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब कोई व्यक्ति या समूह सरकार के किसी निर्णय या कानून के विरुद्ध मौलिक अधिकारों के हनन का सामना करता है, तो वह न्यायालय की शरण लेता है। न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे संविधान के अनुसार इन अधिकारों की रक्षा करें। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय नागरिकों को संविधान के अनुरूप निर्णय देने का उत्तरदायित्व रखते हैं।

उदाहरण: मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के प्रसिद्ध मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि जब किसी सरकारी कार्रवाई से नागरिकों के मौलिक अधिकार प्रभावित होते हों, तो न्यायालयों को उनके अधिकारों की रक्षा हेतु तत्काल हस्तक्षेप करना चाहिए।

3) **जनहित में हस्तक्षेप :** न्यायपालिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका जनहित की रक्षा करना है। जब सरकारी कार्रवाइयाँ, कानून या प्रशासनिक निर्णय जनता के अधिकारों और हितों को प्रभावित करते हैं, तब न्यायालय हस्तक्षेप कर सकते हैं। इस उद्देश्य हेतु जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL) की व्यवस्था भी विद्यमान है, जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति या संगठन सार्वजनिक महत्व के मामले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है। न्यायपालिका यह सुनिश्चित करती है कि सरकार और अन्य संस्थाएँ संविधान और कानून के अनुरूप कार्य करें तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों का सम्मान करें।

उदाहरण: हुसनआरा खातून बनाम राज्य बिहार (1979) के मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने विचाराधीन कैदियों के अधिकारों की रक्षा हेतु हस्तक्षेप किया और यह प्रतिपादित किया कि शीघ्र और निष्पक्ष सुनवाई प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है। इस निर्णय ने जनहित याचिकाओं (PIL) के महत्व को उजागर किया और जनहित की रक्षा में न्यायपालिका की भूमिका को और सुदृढ़ बनाया।

4) **मुकदमों का निपटारा और अधिकारों का क्रियान्वयन :** नागरिकों के अधिकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग न्यायालयों में दायर मुकदमों के माध्यम से होता है। जब किसी व्यक्ति को अपने अधिकारों के हनन का सामना करना पड़ता है, तो वह न्यायालय में वाद दायर करता है। न्यायालय इस मुकदमे की सुनवाई कर संविधान के अंतर्गत नागरिक के अधिकारों का क्रियान्वयन करता है। इस प्रक्रिया में न्यायपालिका की स्वतंत्र भूमिका यह सुनिश्चित करती है कि नागरिकों के अधिकारों का किसी भी रूप में शोषण न हो।

उदाहरण: चम्पकम दोराईराजन बनाम राज्य मद्रास (1951) में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संविधान के अंतर्गत मौलिक अधिकारों को विधायी कानूनों पर वरीयता प्राप्त है, और सरकार इन अधिकारों के विरुद्ध कानून नहीं बना सकती। इस निर्णय के फलस्वरूप सरकार को संविधान में प्रथम संशोधन करना पड़ा ताकि जनकल्याण योजनाओं को संरक्षण प्रदान किया जा सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब तक सरकार और न्यायपालिका मिलकर संवैधानिक अधिकारों का पालन न करें, इनका वास्तविक क्रियान्वयन संभव नहीं।

5) **राजकीय कार्रवाइयाँ और नागरिकों के अधिकार :** सरकार की विभिन्न कार्रवाइयाँ, जैसे नए कानूनों या नीतियों का क्रियान्वयन, भी नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित कर सकती हैं। इन कार्रवाइयों का उद्देश्य नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करना होता है, परंतु कभी-कभी सरकार के निर्णय इन अधिकारों का उल्लंघन कर सकते हैं। न्यायपालिका ऐसी कार्रवाइयों का पुनरावलोकन करती है और उन्हें संविधान के अनुरूप बनाए रखने हेतु आवश्यक कदम उठाती है।

उदाहरण: "अनुच्छेद 21" के अंतर्गत न्यायालयों ने सरकार की विभिन्न कार्रवाइयों पर निर्णय सुनाए हैं ताकि नागरिकों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा की जा सके।

6) **जनहित याचिका (PIL) :** जनहित याचिका (PIL) के माध्यम से साधारण जन भी न्यायालय में अपनी शिकायतें दर्ज करा सकते हैं, और इसके द्वारा न्यायालयों को नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का दायित्व सौंपा गया है। PIL के अंतर्गत न्यायालय केवल संबंधित व्यक्तियों के लिए ही नहीं, बल्कि समाज के व्यापक हित के लिए निर्णय लेते हैं, जिससे मौलिक अधिकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग और अधिक बढ़ता है।

उदाहरण: "एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ" (1981) के मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिका (PIL) के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करते हुए यह स्वीकार किया कि जनहित से संबंधित मामलों में कोई भी उत्तरदायी व्यक्ति या संगठन न्यायालय की शरण ले सकता है। इस निर्णय ने PIL को सुदृढ़ आधार प्रदान किया और कमज़ोर व वंचित वर्गों के लिए न्याय तक पहुँच को सुगम बनाया।

भारतीय संविधान नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जिनकी रक्षा न्यायपालिका, सरकार और कानून द्वारा की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय अधिकारों के उल्लंघन पर हस्तक्षेप करके न्याय प्रदान करते हैं। पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन (PIL) के माध्यम से जनहित के मामलों को भी अदालत में उठाया जा सकता है। इस प्रकार संविधान नागरिकों की स्वतंत्रता, समानता और न्याय की रक्षा करते हुए लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाता है।

▪ मौलिक अधिकारों के अंतर्गत मुकदमे

भारत के संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को महत्व दिया गया है और ये अधिकार व्यक्तित्व, समानता, स्वतंत्रता और न्याय की प्राप्ति के मूल सिद्धांतों पर आधारित हैं। इन अधिकारों के उल्लंघन अथवा इनकी सुरक्षा में कमी की स्थिति में नागरिक न्यायालयों की शरण लेते हैं। मौलिक अधिकारों के अंतर्गत मुकदमों का उद्देश्य इन अधिकारों की रक्षा करना और इनके व्यावहारिक प्रयोग को सुनिश्चित करना है। ये मुकदमे विभिन्न न्यायालयों में दायर किए जाते हैं, जिनमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय सम्मिलित हैं।

1) **मौलिक अधिकारों का उल्लंघन :** संविधान के भाग तृतीय में उल्लिखित मौलिक अधिकारों का उद्देश्य नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना है, जिनमें जीवन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, धर्म, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा, तथा अन्य महत्वपूर्ण अधिकार सम्मिलित हैं। जब कोई नागरिक इन अधिकारों का उल्लंघन अनुभव करता है, तो वह न्यायालय में वाद दायर कर सकता है।

उदाहरण: “मेनका गांधी बनाम भारत संघ” (1978) में उच्चतम न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) का दायरा केवल शारीरिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें अन्य अधिकार जैसे आवागमन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, और सूचना का अधिकार भी सम्मिलित है।

2) **न्यायपालिका की भूमिका :** न्यायपालिका का मूल कार्य यह है कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा हेतु हस्तक्षेप करे। यदि सरकारी कार्रवाइयाँ या कानून इन अधिकारों के विरुद्ध हों, तो न्यायालय उन्हें स्थगित अथवा निरस्त कर सकते हैं। संविधान के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के हनन पर न्यायालय उस व्यक्ति को न्याय प्रदान करने हेतु सरकारी कार्रवाइयों का पुनरावलोकन कर सकते हैं।

उदाहरण: “गोलकनाथ बनाम भारत संघ” (1967) के मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संविधान में मौलिक अधिकारों को परिवर्तित करने हेतु संवैधानिक संशोधन को सीमित नहीं किया जा सकता, और ये अधिकार सरकारी कार्रवाइयों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करते हैं।

3) **जनहित याचिका (PIL) :** जनहित याचिका (PIL) एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके माध्यम से किसी भी नागरिक या समूह के अधिकारों के हनन के विरुद्ध न्यायालय में वाद दायर किया जा सकता है। PIL के माध्यम से न्यायालय जनहित में हस्तक्षेप करते हैं और इन अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध

तत्काल कार्रवाई करते हैं। PIL को 1980 के दशक में न्यायपालिका द्वारा प्रवर्तित किया गया था और इसका उद्देश्य यह था कि यह समाज के दुर्बल वर्गों के अधिकारों की रक्षा करे।

उदाहरण: "एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ" (1981) के मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिका (PIL) के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करते हुए यह स्वीकार किया कि जनहित से संबंधित मामलों में कोई भी उत्तरदायी व्यक्ति या संगठन न्यायालय की शरण ले सकता है। इस निर्णय ने PIL को सुदृढ़ आधार प्रदान किया और कमज़ोर व वंचित वर्गों के लिए न्याय तक पहुँच को सुगम बनाया।

4) **व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा :** भारतीय संविधान नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देता है। यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो, तो वह न्यायालय की शरण ले सकता है। न्यायपालिका ऐसे मामलों में हस्तक्षेप कर नागरिकों को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करती है।

उदाहरण: मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) में उच्चतम न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) की व्याख्या व्यापक रूप से की जाएगी, तथा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता केवल विधि की न्यायसंगत, युक्तियुक्त और निष्पक्ष प्रक्रिया के अंतर्गत ही सीमित की जा सकती है। इस निर्णय ने मौलिक अधिकारों की सुरक्षा को और सुदृढ़ बनाया।

5) **न्यायालय की व्याख्यात्मक शक्ति :** न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या का अधिकार प्राप्त है। न्यायालय संवैधानिक प्रावधानों और मौलिक अधिकारों की सीमाओं का निर्धारण करते हैं ताकि संविधान की मूल भावना बनी रहे और नागरिकों के अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा हो सके।

उदाहरण: केशवानंद भारती बनाम राज्य केरल (1973) में उच्चतम न्यायालय ने "मूल ढाँचा सिद्धांत" (Basic Structure Doctrine) प्रस्तुत किया और प्रतिपादित किया कि संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है, परंतु संविधान के मूल ढाँचे को परिवर्तित नहीं कर सकती। यह निर्णय संविधान की व्याख्या में न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका का सर्वोत्तम उदाहरण है।

6) **सरकारी कार्रवाइयाँ और उनके प्रभाव :** जब सरकार कोई ऐसा कानून या नीति बनाती है जो मौलिक अधिकारों से टकराव रखती हो, तो न्यायालय उसका पुनरावलोकन कर सकता है। यदि कोई कानून या सरकारी कार्रवाई संविधान के विरुद्ध पाई जाए तो न्यायालय उसे शून्य घोषित कर सकता है।

उदाहरण: मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो बेगम (1985), जिसे सामान्यतः शाहबानो मुकदमा कहा जाता है, में उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा मुस्लिम महिला के भरण-पोषण के अधिकार को मान्यता दी। इस

निर्णय ने महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा तथा सरकारी कानूनों की न्यायिक समीक्षा के महत्व को उजागर किया।

मौलिक अधिकारों के अंतर्गत दायर मामले नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का महत्वपूर्ण साधन हैं। न्यायपालिका, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय, संविधान की व्याख्या करके अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। PIL जैसी व्यवस्था से जनहित के मामलों में भी न्याय प्राप्त करना संभव हुआ है, जिससे संविधान के मौलिक अधिकारों का प्रभावी क्रियान्वयन मजबूत हुआ है।

▪ संविधान के अंतर्गत न्यायालयों की भूमिका

भारतीय संविधान में न्यायालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि संविधान की व्याख्या करना और उसकी भावना के अनुरूप उसका क्रियान्वयन करना न्यायालयों का उत्तरदायित्व है। न्यायालय मौलिक अधिकारों की सुरक्षा, संविधान की अवहेलनाओं की जाँच, तथा सरकारी कार्रवाइयों को संविधान के अनुरूप निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संविधान के अंतर्गत न्यायालयों की भूमिका एक प्रहरी के समान है, जो संविधान की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करती है।

1) **संविधान की व्याख्या और क्रियान्वयन :** न्यायपालिका की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका संविधान की व्याख्या करना और उसके प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना है। न्यायालय संविधान के विभिन्न प्रावधानों और अनुच्छेदों की व्याख्या कर उनके सही अभिप्राय का निर्धारण करते हैं तथा यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकार और अन्य संस्थाएँ संविधान के अनुरूप कार्य करें। यदि कोई कानून या सरकारी कार्रवाई संविधान से टकराव रखती हो, तो न्यायपालिका उसे शून्य घोषित कर सकती है। इसी प्रकार मौलिक अधिकारों की सुरक्षा तथा संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखना भी न्यायपालिका का महत्वपूर्ण दायित्व है।

उदाहरण: केशवानंद भारती बनाम राज्य केरल (1973) में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद को संविधान में संशोधन का अधिकार प्राप्त है, परंतु वह संविधान के मूल ढाँचे (Basic Structure) को परिवर्तित नहीं कर सकती। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि लोकतंत्र, विधि का शासन, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और मौलिक अधिकार जैसे तत्व संविधान के मूल ढाँचे का अंग हैं। इस निर्णय ने संविधान की व्याख्या और उसकी सुरक्षा में न्यायपालिका की भूमिका को और सुदृढ़ बनाया तथा संवैधानिक सर्वोच्चता के सिद्धांत को सुदृढ़ किया।

2) **मौलिक अधिकारों की सुरक्षा** : भारतीय संविधान के भाग तृतीय (Part III) में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की गारंटी दी गई है। इन अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना न्यायपालिका के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों में से एक है। यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो तो वह उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32) अथवा उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226) की शरण ले सकता है। न्यायालय ऐसे मामलों में हस्तक्षेप कर नागरिकों को न्याय प्रदान करते हैं तथा यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकार और अन्य संस्थाएँ संविधान के अनुरूप कार्य करें। इस प्रकार न्यायपालिका मौलिक अधिकारों की संरक्षक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

उदाहरण: मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार) की व्यापक व्याख्या करते हुए प्रतिपादित किया कि यह अधिकार केवल शारीरिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं, बल्कि इसमें गरिमापूर्ण जीवन, आवागमन की स्वतंत्रता तथा अन्य संबद्ध अधिकार भी सम्मिलित हैं। इस निर्णय ने मौलिक अधिकारों की सुरक्षा को और सुदृढ़ बनाया तथा न्यायपालिका की भूमिका को उजागर किया।

3) **संविधान की सर्वोच्चता सुनिश्चित करने में न्यायपालिका :** न्यायपालिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखना है। न्यायालय यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकार, संसद और अन्य राजकीय संस्थाएँ संविधान की सीमाओं के भीतर रहकर अपने अधिकारों का प्रयोग करें। यदि कोई कानून, नीति या सरकारी कार्रवाई संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध हो, तो न्यायालय उसे असंवैधानिक घोषित कर शून्य कर सकता है। इस प्रकार न्यायपालिका संविधान की सर्वोच्चता, विधि के शासन और लोकतांत्रिक व्यवस्था की सुरक्षा में मूल भूमिका निभाती है।

उदाहरण: केशवानंद भारती बनाम राज्य केरल (1973) में उच्चतम न्यायालय ने "मूल ढाँचा सिद्धांत" (Basic Structure Doctrine) प्रस्तुत किया और प्रतिपादित किया कि यद्यपि संसद को संविधान में संशोधन का अधिकार प्राप्त है, तथापि वह संविधान के मूल ढाँचे को परिवर्तित नहीं कर सकती। इस निर्णय ने संविधान की सर्वोच्चता को सुदृढ़ किया और स्पष्ट किया कि संविधान की सुरक्षा और उसकी व्याख्या में न्यायपालिका निर्णायक भूमिका रखती है।

4) **अधिकारों का संतुलन और संघीय व्यवस्था की सुरक्षा** : भारत एक संघीय राज्य है, जहाँ अधिकार केंद्र और राज्यों के मध्य विभाजित किए गए हैं। इस व्यवस्था में न्यायपालिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि वह केंद्र और राज्यों के मध्य अधिकारों के संतुलन को बनाए रखे तथा संवैधानिक विवादों का निष्पक्ष समाधान प्रदान करे। उच्चतम न्यायालय को संविधान के अंतर्गत यह अधिकार प्राप्त है कि वह केंद्र और राज्यों अथवा विभिन्न राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादों का निर्णय करे। इस प्रकार न्यायपालिका संघीय ढाँचे की सुरक्षा और संवैधानिक संतुलन बनाए रखने में मुख्य भूमिका निभाती है।

उदाहरण: एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य सरकारों की बर्खास्तगी का अधिकार असीमित नहीं है और इसके प्रयोग की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि केंद्र सरकार इस अधिकार का मनमाना प्रयोग नहीं कर सकती। इस निर्णय ने संघीय व्यवस्था, राज्यों की स्वायत्तता और संविधान की सर्वोच्चता को और सुदृढ़ बनाया।

5) **संवैधानिक अधिकारों और सरकारी कार्रवाइयों पर निगरानी :** न्यायपालिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका सरकारी कार्रवाइयों, कानूनों और प्रशासनिक निर्णयों का पुनरावलोकन करना है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे संविधान के अनुरूप हैं। यदि सरकार अथवा कोई राजकीय संस्था ऐसी कार्रवाई करे जो संविधान के मूल सिद्धांतों अथवा नागरिकों के मौलिक अधिकारों के विरुद्ध हो, तो न्यायालय उसकी न्यायिक समीक्षा कर सकता है और आवश्यकता पड़ने पर उसे शून्य घोषित कर सकता है। इस प्रकार न्यायपालिका सरकार के अधिकारों पर संवैधानिक निगरानी बनाए रखती है और विधि के शासन को सुदृढ़ करती है।

उदाहरण: ए. डी. एम. जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला (1976), जिसे हैबियस कॉर्पस मुकदमा भी कहा जाता है, आपातकाल के दौरान मौलिक अधिकारों के निलंबन से संबंधित था। यद्यपि इस मुकदमे में उच्चतम न्यायालय ने उस समय सरकार के पक्ष का समर्थन किया, परंतु बाद में इस निर्णय को न्यायिक इतिहास की एक बड़ी भूल माना गया। तत्पश्चात न्यायमूर्ति के. एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017) में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मौलिक अधिकार और वैयक्तिक स्वतंत्रता संविधान के मूल सिद्धांत हैं और इनकी सुरक्षा हर स्थिति में आवश्यक है। इस प्रगति ने सरकारी कार्रवाइयों पर न्यायपालिका की प्रभावी निगरानी की भूमिका को और सुदृढ़ किया।

6) **सामूहिक हित की सुरक्षा में न्यायपालिका की भूमिका :** न्यायपालिका न केवल वैयक्तिक अधिकारों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि सामूहिक हित में भी निर्णय सुनाती है। जब न्यायालय यह देखते हैं कि किसी सरकारी कार्रवाई से जनता के व्यापक हित को क्षति पहुँच रही है, तो वे उस कार्रवाई को रोकने अथवा उसमें सुधार करने हेतु आदेश जारी करते हैं।

उदाहरण: एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ (1981) में न्यायालय ने कहा कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु सरकारी कार्रवाइयों को उचित रूप से क्रियान्वित करना आवश्यक है, और इसके माध्यम से न्यायपालिका ने जनहित में निर्णय दिए।

संविधान के अंतर्गत न्यायालय संविधान की व्याख्या करते हैं, मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हैं, संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखते हैं, संघीय व्यवस्था और शक्तियों के संतुलन की रक्षा करते हैं तथा सरकारी कार्यों की संवैधानिक समीक्षा करते हैं। इस प्रकार न्यायपालिका भारतीय लोकतंत्र और कानून के शासन की प्रमुख संरक्षक है।

8.2 दैनिक जीवन और संविधान का अनुप्रयोग

▪ संविधान के विभिन्न भागों की व्यावहारिक व्याख्या

भारत का संविधान देश के शासन, विधिक व्यवस्था और नागरिक अधिकारों का आधार है। संविधान के विभिन्न भागों के माध्यम से सरकार की संरचना, अधिकारों, हक़ों और उत्तरदायित्वों की व्याख्या की गई है। इन भागों की व्यावहारिक व्याख्या से यह समझने में सहायता मिलती है कि संवैधानिक सिद्धांत दैनिक जीवन और सरकारी व्यवस्था में किस प्रकार क्रियान्वित होते हैं।

1) **संघ और राज्य (भाग प्रथम : Union and its Territory) :** संविधान का प्रथम भाग भारत की संघीय संरचना, राज्यों तथा केंद्र के पारस्परिक संबंधों, और देश की भौगोलिक एकता की व्याख्या करता है।

व्यावहारिक उदाहरण: संविधान के अनुच्छेद 3 के अंतर्गत केंद्रीय संसद किसी भी राज्य की सीमाओं को परिवर्तित कर नया राज्य स्थापित कर सकती है। जैसे वर्ष 2014 में आंध्र प्रदेश का पुनर्गठन कर तेलंगाना को एक नया राज्य बनाया गया, तथा वर्ष 2019 में जम्मू-कश्मीर की संवैधानिक स्थिति परिवर्तित कर उसे केंद्रशासित प्रदेशों में विभाजित किया गया। ये कदम संविधान के भाग प्रथम की संघीय शक्ति को प्रदर्शित करते हैं।

2) **मौलिक अधिकार (भाग तृतीय : Fundamental Rights) :** मौलिक अधिकार प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता, समानता और मानवीय गरिमा की गारंटी देते हैं तथा राजकीय अधिकारों पर संवैधानिक सीमाएँ आरोपित करते हैं।

व्यावहारिक उदाहरण: अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है। यदि किसी व्यक्ति को विधिक प्रक्रिया के बिना हिरासत में लिया जाए तो यह मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा।

न्यायिक उदाहरण: मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) में उच्चतम न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि “विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया” न्यायसंगत, युक्तियुक्त और भेदभावरहित होनी चाहिए।

3) **वित्तीय संबंध और संसाधनों का विभाजन (भाग द्वादश) :** संविधान केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों, करों तथा राजस्व के विभाजन के सिद्धांत निर्धारित करता है ताकि संघीय व्यवस्था में वित्तीय संतुलन बना रहे।

व्यावहारिक उदाहरण: अनुच्छेद 280 के अंतर्गत गठित वित्त आयोग केंद्र और राज्यों के मध्य कर राजस्व के विभाजन संबंधी सिफारिशें प्रस्तुत करता है, जिनके आधार पर राज्यों को वित्तीय संसाधन प्रदान किए जाते हैं।

4) **कार्यपालिका (Executive) :** कार्यपालिका सरकार की नीतियों और कानूनों के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होती है। इसमें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रीगण और सरकारी अधिकारी सम्मिलित हैं।

व्यावहारिक उदाहरण: कोविड-19 महामारी के दौरान केंद्रीय मंत्रिमंडल ने विभिन्न नीतिगत निर्णय लिए और सरकारी संस्थाओं ने उनका क्रियान्वयन किया, जिससे कार्यपालिका की भूमिका का व्यावहारिक स्वरूप सामने आता है।

5) **विधायिका (संसद / Legislature)** : संसद कानून निर्माण, वित्तीय मामलों और सरकार की निगरानी के लिए उत्तरदायी है। इसमें लोकसभा और राज्यसभा सम्मिलित हैं।

व्यावहारिक उदाहरण: संसद विभिन्न कानून पारित करती है और आवश्यकतानुसार उनमें संशोधन करती है। महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नीतियों और सुधारों का क्रियान्वयन संसदीय स्वीकृति के पश्चात ही संभव होता है।

6) **न्यायपालिका (Judiciary) :** न्यायपालिका संविधान की व्याख्या, मौलिक अधिकारों की सुरक्षा तथा विधिक विवादों के समाधान हेतु उत्तरदायी है।

व्यावहारिक उदाहरण: एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ (1986) में उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षण के सिद्धांतों को प्रोत्साहित किया और जनहित याचिकाओं (PIL) के महत्व को सुदृढ़ किया।

7) **संवैधानिक संशोधन (Constitutional Amendments) :** संविधान में समय की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन लाने हेतु संशोधन की प्रक्रिया उपलब्ध कराई गई है।

व्यावहारिक उदाहरण: 61वें संवैधानिक संशोधन (1988) के माध्यम से मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की गई।

अतिरिक्त उदाहरण: 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों (1992) के माध्यम से पंचायती राज तथा नगरीय स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, जिससे स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को सुदृढ़ता प्राप्त हुई।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि संविधान के विभिन्न भाग मात्र सैद्धांतिक सिद्धांत नहीं हैं, बल्कि व्यावहारिक रूप से भारत की राजनीतिक, विधिक और प्रशासनिक व्यवस्था के आधार हैं तथा जनता के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

▪ दैनिक जीवन में संविधान का अनुप्रयोग

संविधान किसी देश का मूल विधान होता है, और इसके विभिन्न भाग सरकार, न्यायपालिका, विधायिका, तथा जनता के अधिकारों और कर्तव्यों को व्यवस्थित करते हैं। संविधान का प्रयोग केवल न्यायालयों अथवा सरकारी कार्यालयों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह जनता के दैनिक जीवन में भी उल्लेखनीय रूप से प्रभाव डालता है। संविधान के विभिन्न प्रावधान और सिद्धांत जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार क्रियान्वित होते हैं कि वे व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करते हैं। दैनिक जीवन में संविधान का प्रयोग विभिन्न स्तरों पर होता है, जिनमें सरकारी नीतियों से लेकर नागरिकों के अधिकारों तक सम्मिलित हैं।

1) **मौलिक अधिकारों की सुरक्षा :** संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की गारंटी दी गई है, जो प्रत्येक नागरिक के दैनिक जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। मौलिक अधिकारों के प्रावधानों के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और स्वतंत्रता की गारंटी, धार्मिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता के अधिकार तथा सुरक्षा के अधिकार प्राप्त होते हैं।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को बिना किसी कारण के हिरासत में लिया जाए तो वह संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार) के अंतर्गत न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को अपने धर्म के अनुसार उपासना करने का अधिकार प्राप्त है, और यदि किसी को इस अधिकार से वंचित किया जाए तो वह संविधान के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत सुरक्षा हेतु न्यायालय की शरण ले सकता है।

2) **सार्वजनिक सुरक्षा और कानून का प्रयोग :** संविधान की सहायता से जनता को कानून के समक्ष समान स्थिति प्रदान की जाती है, और संविधान में सरकारी संस्थाओं को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वे विधि के शासन को सुनिश्चित करें।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: पुलिस की कार्रवाइयों अथवा सरकार की प्रशासनिक नीतियों के अंतर्गत जनता के अधिकारों की सुरक्षा की जाती है। यदि किसी व्यक्ति को अवैध रूप से गिरफ्तार किया जाए अथवा उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाए तो वह संविधान के अंतर्गत तत्काल उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। इसी प्रकार, सार्वजनिक सुरक्षा हेतु विभिन्न कानून और सरकारी कार्रवाइयाँ संविधान के अनुरूप निर्मित की जाती हैं ताकि नागरिकों को हर प्रकार के उत्पीड़न से बचाया जा सके।

3) **शैक्षिक अधिकार** : भारत का संविधान प्रत्येक बालक के लिए शिक्षा के महत्व को स्वीकार करता है। 86वें संवैधानिक संशोधन (2002) के माध्यम से अनुच्छेद 21-A जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत 6 से 14

वर्ष की आयु के समस्त बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया गया। इसके अनुसार राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि वह प्रत्येक बालक को गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: सरकार ने इस अधिकार के क्रियान्वयन हेतु अनेक कदम उठाए हैं, जैसे सरकारी विद्यालयों में निःशुल्क शिक्षा, मध्याहन भोजन योजना और शिक्षा का अधिकार अधिनियम (Right to Education Act, 2009)। इन कदमों का उद्देश्य बालकों को शिक्षा की ओर प्रवृत्त करना और शैक्षिक अवसरों को सर्वसुलभ बनाना है। यदि किसी बालक को अकारण शिक्षा से वंचित रखा जाए तो उसके अधिकार की सुरक्षा हेतु न्यायालय की शरण ली जा सकती है।

4) **स्वास्थ्य संबंधी अधिकार :** यद्यपि भारत के संविधान में स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष रूप से मौलिक अधिकार के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया, तथापि उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए प्रतिपादित किया है कि गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार में स्वास्थ्य की मूलभूत सुविधाएँ भी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 47 राज्य को सार्वजनिक स्वास्थ्य के संवर्धन और जीवन स्तर सुधारने का निर्देश देता है।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: सरकारी अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों में उपचार की सुविधा प्रदान की जाती है। उदाहरणस्वरूप, सरकारी अस्पतालों में उपचार की सुविधाएँ जनता को उपलब्ध कराई जाती हैं, और सरकार विभिन्न योजनाओं जैसे "आयुष्मान भारत" के माध्यम से लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करती है। यदि किसी व्यक्ति के उपचार में बाधा डाली जाए अथवा उसे स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित रखा जाए, तो वह न्यायालय की शरण लेकर अपने अधिकारों की सुरक्षा कर सकता है।

5) **निर्वाचन संबंधी अधिकार :** भारतीय संविधान प्रत्येक वयस्क नागरिक को निर्वाचन में भाग लेने और अपने प्रतिनिधि को चुनने का अधिकार प्रदान करता है। यह अधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार है, क्योंकि इसके माध्यम से जनता सरकार के गठन में प्रत्यक्ष भूमिका निभाती है। संविधान के अनुच्छेद 326 के अंतर्गत वयस्क मताधिकार (Adult Suffrage) के सिद्धांत को स्वीकार किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक पात्र नागरिक को बिना किसी भेदभाव के मतदान का अधिकार प्राप्त है।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: भारत में प्रत्येक वयस्क नागरिक, जिसकी आयु निर्धारित विधिक सीमा को पूर्ण कर चुकी हो और जिसका नाम मतदाता सूची में दर्ज हो, निर्वाचन में मतदान कर सकता है। निर्वाचन प्रक्रिया की पारदर्शिता और निष्पक्षता सुनिश्चित करने हेतु निर्वाचन आयोग विभिन्न कदम उठाता है, जिनमें इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (EVM) का प्रयोग, मतदाता सूचियों का निर्माण तथा निर्वाचन आचार संहिता का क्रियान्वयन

सम्मिलित है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक को अपने मताधिकार के प्रभावी प्रयोग का अवसर प्रदान किया जाता है।

6) **महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा :** संविधान महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रावधान उपलब्ध कराता है, ताकि महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त हों और उन्हें किसी भी प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार से बचाया जा सके।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने हेतु सरकारी स्तर पर अनेक नीतियों और कानूनों को क्रियान्वित किया गया है, जैसे "कार्यस्थल से बाहर महिलाओं की सुरक्षा संबंधी कानून" और "समान वेतन संबंधी कानून" ताकि महिलाओं को कार्यस्थलों पर समान अधिकार प्राप्त हो सकें। यदि कहीं महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार हो अथवा उनके अधिकारों का उल्लंघन हो, तो वे न्यायालय में अपनी शिकायत दर्ज करा सकती हैं।

7) **धार्मिक स्वतंत्रता की सुरक्षा :** संविधान प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसके आधार पर किसी भी धर्म के अनुयायियों को अपनी मान्यताओं के अनुरूप स्वतंत्रता दी जाती है।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: विभिन्न त्योहारों पर सरकार की ओर से जनता को धार्मिक अवकाश प्रदान किए जाते हैं, तथा विभिन्न धार्मिक संगठनों को अपनी मान्यताओं के अनुसार गतिविधियाँ संचालित करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। यदि किसी व्यक्ति अथवा समूह के धार्मिक अधिकारों का उल्लंघन किया जाए, तो वह संविधान के अंतर्गत न्यायालय की शरण लेकर अपने अधिकारों की सुरक्षा कर सकता है।

8) **संवैधानिक सुधार और परिवर्तन :** संविधान के विभिन्न भागों को समय-समय पर सुधारों के माध्यम से परिवर्तित किया जा सकता है ताकि वे आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप बने रहें।

व्यावहारिक अनुप्रयोग: संविधान में संशोधनों की प्रक्रिया भारत की संसद के माध्यम से की जाती है, जैसे 73वें और 74वें संशोधनों के माध्यम से स्थानीय स्तर पर सरकार के अधिकारों में वृद्धि की गई ताकि ग्राम पंचायत और नगरपालिका संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान की जा सके। इसके अतिरिक्त, विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर आधुनिक कानूनों और नीतियों का क्रियान्वयन संविधान के अंतर्गत किया जाता है।

संविधान का दैनिक जीवन में प्रयोग केवल न्यायपालिका अथवा सरकार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की सुरक्षा हेतु मूल दस्तावेज़ है। इसका प्रत्येक भाग सार्वजनिक जीवन के हर स्तर पर प्रभाव डालता है और देश की न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका तथा जन-क्षेत्रों के मध्य संतुलन स्थापित करता है ताकि देश में न्याय, समानता और शांति स्थापित रखी जा सके।

अध्याय 9 : केंद्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

9.1 केंद्रीय एवं राज्य सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

- **कानून निर्माण और नीतियों का क्रियान्वयन**
- **केंद्र और राज्य के संबंध**
- **प्रशासनिक ढाँचे की व्यावहारिक भूमिका**
- **सार्वजनिक सेवाओं की आपूर्ति**
- **आपदाओं और आपातकालीन स्थितियों में सहयोग**

9.2 ग्रामीण एवं शहरी सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

- **पंचायती राज के सफल मॉडल**
- **नगर निगमों और नगरपालिका समितियों का कार्यनिष्पादन**
- **स्थानीय सरकारों की व्यावहारिक समस्याएँ और उनके समाधान के प्रयास**
- **ग्रामीण और शहरी सरकारों के मध्य सहयोग के उदाहरण**

अध्याय 9 : केंद्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

9.1 केंद्रीय एवं राज्य सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

▪ कानून निर्माण और नीतियों का क्रियान्वयन

1. केंद्रीय और राज्य सरकारों के विधायी अधिकार (संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची)

भारत एक संघीय राज्य है, जिसमें अधिकार केंद्र और राज्यों के मध्य विभाजित किए गए हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची (Seventh Schedule) में विधायी अधिकारों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया है: संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। इस विभाजन का मूल उद्देश्य यह है कि राष्ट्रीय महत्व के विषय केंद्र के अधिकार-क्षेत्र में रहें, स्थानीय प्रकृति के मामले राज्यों को सौंपे जाएँ, तथा कुछ विषयों पर केंद्र और राज्य संयुक्त रूप से कानून बना सकें। इस व्यवस्था के माध्यम से संघीय संतुलन और प्रभावी शासन सुनिश्चित किया गया है।

(1) **संघ सूची (Union List):** संघ सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिन पर केवल संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। राज्य विधायिका इन मामलों पर कानून नहीं बना सकती, क्योंकि इनका संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता और अंतरराष्ट्रीय मामलों से होता है। संघ सूची के प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं:

- **रक्षा (Defence)**
- **विदेश मामले (Foreign Affairs)**
- **अंतरराष्ट्रीय व्यापार (International Trade)**
- **मुद्रा और बैंकिंग (Currency and Banking)**
- **रेलवे और विमानन (Railways and Aviation)**
- **संचार और दूरसंचार (Telecommunications)**

चूँकि ये विषय संपूर्ण देश को प्रभावित करते हैं, अतः इन पर कानून बनाने का अधिकार केवल केंद्र सरकार और संसद के पास है।

(2) **राज्य सूची (State List):** राज्य सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिनका संबंध मूलतः राज्य के प्रशासन और स्थानीय आवश्यकताओं से होता है। इन मामलों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य विधायिका को प्राप्त है। राज्य सूची के प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं:

- **पुलिस और लोक व्यवस्था (Police and Public Order)**

- **लोक स्वास्थ्य और अस्पताल (Public Health and Hospitals)**
- **कृषि और सिंचाई (Agriculture and Irrigation)**
- **स्थानीय सरकार (Local Government)**
- **भूमि और संपत्ति के अधिकार (Land and Property Rights)**

सामान्य परिस्थितियों में केवल राज्य सरकारें ही इन विषयों पर कानून बना सकती हैं। तथापि, संविधान के अनुच्छेद 249 के अंतर्गत यदि राज्यसभा राष्ट्रीय हित में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों की दो-तिहाई बहुमत से संकल्प पारित करे, तो संसद को भी इन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। राज्यसभा का यह संकल्प एक बार में केवल एक वर्ष के लिए प्रभावी होता है (तथापि राज्यसभा चाहे तो प्रत्येक बार नया संकल्प पारित कर इसे और एक-एक वर्ष के लिए आगे बढ़ा सकती है)। इस संकल्प के अंतर्गत संसद द्वारा बनाया गया कानून स्थायी नहीं होता, बल्कि संकल्प की अवधि समाप्त होने के पश्चात भी अतिरिक्त छह माह तक प्रभावी रहता है, और उसके बाद स्वतः निष्प्रभावी हो जाता है।

(3) **समवर्ती सूची (Concurrent List):** समवर्ती सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिन पर केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। इस सूची का उद्देश्य ऐसे मामलों में सहयोग और समन्वय उत्पन्न करना है जो राष्ट्रीय तथा राज्य दोनों स्तरों पर महत्व रखते हैं। समवर्ती सूची के प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं:

- शिक्षा (Education)
- श्रम कानून और कर्मचारियों के अधिकार (Labour Laws and Employee Rights)
- दंड विधि और प्रक्रिया (Criminal Law and Procedure)
- पर्यावरण और वन (Environment and Forests)
- विवाह, तलाक और पारिवारिक कानून (Marriage and Divorce)

यदि किसी विषय पर केंद्र और राज्य दोनों ने कानून बनाया हो और दोनों कानूनों में विरोधाभास उत्पन्न हो जाए, तो संविधान के अनुच्छेद 254 के अनुसार केंद्रीय कानून को वरीयता प्राप्त होगी। तथापि, अनुच्छेद 254(2) के अंतर्गत, यदि राज्य के कानून को राष्ट्रपति (President) की स्वीकृति प्राप्त हो जाए, तो उस विशेष राज्य में केंद्रीय कानून के स्थान पर वही राज्य कानून प्रभावी माना जाएगा।

संक्षेप में, भारतीय संविधान में विधायी अधिकारों का विभाजन संघीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। संघ सूची राष्ट्रीय महत्व के मामलों को केंद्र को सौंपती है, राज्य सूची स्थानीय और राज्य संबंधी मामलों को राज्यों के अधिकार में देती है, जबकि समवर्ती सूची संयुक्त विधि-निर्माण की सुविधा प्रदान करती है। यह

व्यवस्था केंद्र और राज्यों के मध्य अधिकारों का संतुलन, प्रभावी शासन और राष्ट्रीय एकता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2. केंद्र सरकार की नीतियों का राज्यों के माध्यम से क्रियान्वयन

भारत में संघीय शासन-व्यवस्था विद्यमान है, जहाँ केंद्र सरकार राष्ट्रीय स्तर पर नीतियाँ, कानून और विकास योजनाएँ तैयार करती है, जबकि इनके क्रियान्वयन का मूल उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर होता है। राज्य सरकारें अपने प्रशासनिक ढाँचे, विभागों और स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से केंद्रीय नीतियों और योजनाओं को ज़मीनी स्तर पर क्रियान्वित करती हैं। इस सहयोग के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जाता है।

(1) **केंद्र प्रायोजित योजनाएँ (Centrally Sponsored Schemes - CSS):** केंद्र प्रायोजित योजनाएँ वे परियोजनाएँ हैं जिनमें वित्तीय संसाधन केंद्र और राज्य सरकारें संयुक्त रूप से प्रदान करती हैं, जबकि इनका व्यावहारिक क्रियान्वयन राज्य सरकारों के माध्यम से किया जाता है। इन योजनाओं का उद्देश्य राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों को स्थानीय स्तर पर प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करना और जनता को मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करना है।

- **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (MGNREGA / मनरेगा):** यह एक महत्वपूर्ण विधिक योजना है जो ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन परिवारों को एक वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिन के गारंटीशुदा रोज़गार की प्रदायगी सुनिश्चित करती है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना, निर्धनता में कमी लाना तथा गाँवों से शहरों की ओर अनावश्यक पलायन को रोकना है।
- **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)**: इस योजना का आरंभ वर्ष 2000 में किया गया। इसका मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों और दूरस्थ गाँवों को हर मौसम में उपयोग योग्य पक्की सड़कों के माध्यम से मुख्य राजमार्गों से जोड़ना है, ताकि परिवहन, व्यापार और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जा सके।
- **आयुष्मान भारत - प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PMJAY):** यह विश्व की सबसे बड़ी सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजनाओं में से एक है। इसके अंतर्गत पात्र और कम आय वाले परिवारों को गंभीर बीमारियों के उपचार हेतु वार्षिक 5 लाख रुपये तक की निःशुल्क और नकद-रहित चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है। (हाल की विस्तार योजना के अंतर्गत अब 70 वर्ष और उससे अधिक आयु के समस्त वरिष्ठ नागरिकों को भी इस योजना के दायरे में लाकर वार्षिक 5 लाख रुपये का पृथक कवर प्रदान किया गया है)।

- **स्वच्छ भारत मिशन (Swachh Bharat Mission):** इस राष्ट्रीय अभियान का उद्देश्य देश भर में स्वच्छता को बढ़ावा देना और खुले में शौच की प्रवृत्ति का उन्मूलन करना है। इसके अंतर्गत शौचालयों के निर्माण, स्वच्छता की बेहतर व्यवस्था और कचरे के प्रभावी निपटान पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(2) **केंद्रीय क्षेत्र की योजनाएँ (Central Sector Schemes):** केंद्रीय क्षेत्र की योजनाएँ वे परियोजनाएँ हैं जिनका संपूर्ण व्यय केंद्र सरकार स्वयं वहन करती है। इन योजनाओं का उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर विकास लक्ष्य प्राप्त करना और विभिन्न वर्गों को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करना है।

- **प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN):** इस योजना के अंतर्गत भूमिधारक किसान परिवारों को वित्तीय सहायता के रूप में वार्षिक 6,000 रुपये प्रदान किए जाते हैं। यह राशि सीधे लाभार्थी किसानों के बैंक खातों में 2,000 रुपये की तीन समान किस्तों के रूप में हस्तांतरित की जाती है, ताकि वे कृषि व्यय पूरा कर सकें।
- **स्टार्टअप इंडिया (Startup India):** इस योजना का उद्देश्य देश में नए व्यवसायों और नवाचारी परियोजनाओं को बढ़ावा देना है। इसके अंतर्गत नए उद्यमियों को कर में छूट, वित्तीय सहायता, सुगम ऋण और व्यावसायिक सुविधाओं की प्रदायगी के माध्यम से रोज़गार के नए अवसर उत्पन्न करने में सहायता दी जाती है।
- **बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ (Beti Bachao, Beti Padhao):** यह योजना बालिकाओं की सुरक्षा, शिक्षा और सशक्तिकरण हेतु आरंभ की गई। इसका उद्देश्य लैंगिक भेदभाव का उन्मूलन, बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देना तथा समाज में महिलाओं के अधिकारों से संबंधित जागरूकता उत्पन्न करना है। “मिशन शक्ति” (सम्बल) के दिशा-निर्देशों के अंतर्गत अब यह पूर्णतः (100%) केंद्रीय वित्तपोषण से संचालित होती है।

(3) **समवर्ती विषयों पर केंद्रीय कानूनों का राज्य स्तर पर क्रियान्वयन:** कुछ विषय ऐसे हैं जो संविधान की समवर्ती सूची में सम्मिलित हैं। इन पर संसद ऐसे केंद्रीय कानून निर्मित करती है जो संपूर्ण देश में एकसमान दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं, परंतु इनके आंतरिक नियम (Rules) बनाने और उन्हें ज़मीनी स्तर पर लागू करने का मुख्य अधिकार राज्य सरकारों के विभागों और प्रशासनिक संस्थाओं के पास होता है।

उदाहरण:

- **श्रम कानून (Labour Laws):** औद्योगिक संबंधों और श्रमिकों के अधिकारों पर केंद्रीय संहिताएँ विद्यमान हैं, परंतु प्रत्येक राज्य का श्रम विभाग (Labour Department) अपनी परिस्थितियों के अनुसार इनके नियम निर्धारित और क्रियान्वित करता है।
- **पर्यावरण संरक्षण कानून:** केंद्र के 'पर्यावरण संरक्षण अधिनियम' के अंतर्गत देश भर में कार्य होता है, परंतु इसका व्यावहारिक क्रियान्वयन प्रत्येक राज्य का अपना 'राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' (SPCB) करता है।
- **शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE Act):** केंद्र ने यह कानून बनाया, परंतु इसके अंतर्गत विद्यालयों में प्रवेश, शुल्क में छूट और अध्यापकों की नियुक्ति के वास्तविक नियम राज्य के शिक्षा विभाग निर्धारित और क्रियान्वित करते हैं।

संक्षेप में, केंद्र सरकार राष्ट्रीय स्तर पर नीतियाँ, कानून और विकास कार्यक्रम निर्मित करती है, जबकि राज्य सरकारें इनके व्यावहारिक क्रियान्वयन में मूल भूमिका निभाती हैं। वित्तीय सहयोग पर आधारित योजनाओं, केंद्र प्रायोजित परियोजनाओं और समवर्ती कानूनों के क्रियान्वयन के माध्यम से राज्य सरकारें राष्ट्रीय नीतियों को जनता तक पहुँचाती हैं। इस प्रकार केंद्र और राज्यों के मध्य पारस्परिक सहयोग भारत की संघीय व्यवस्था को प्रभावी और सुदृढ़ बनाता है।

3. राज्य कानूनों का निर्माण और उनका क्रियान्वयन

भारत की संघीय व्यवस्था में राज्य सरकारों को विधायी अधिकार संविधान की सातवीं अनुसूची (Seventh Schedule) के अंतर्गत प्राप्त हैं। राज्य मूलतः राज्य सूची (State List) और कुछ मामलों में समवर्ती सूची (Concurrent List) के विषयों पर कानून बना सकते हैं। राज्य विधानसभा कानून बनाती है, जबकि राज्य प्रशासन, न्यायपालिका और अन्य संस्थाएँ इन कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती हैं।

(1) **राज्य कानूनों का निर्माण:** राज्य कानूनों के निर्माण की प्रक्रिया राज्य विधायिका के माध्यम से संपन्न होती है।

- **राज्य विधानसभा में विधि-निर्माण:** राज्य विधानसभा को उन समस्त विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है जो राज्य सूची में सम्मिलित हैं। इन विषयों में पुलिस, लोक व्यवस्था, कृषि, लोक स्वास्थ्य, स्थानीय सरकार और भूमि से संबंधित मामले सम्मिलित हैं। राज्य समवर्ती सूची में सम्मिलित विषयों पर भी कानून बना सकते हैं, परंतु यदि किसी मामले में राज्य और केंद्रीय कानूनों

के मध्य विरोधाभास उत्पन्न हो जाए तो संविधान के अनुच्छेद 254 के अनुसार केंद्रीय कानून को वरीयता प्राप्त होती है।

- **राज्यपाल की स्वीकृति:** राज्य विधानसभा से कानून स्वीकृत होने के पश्चात इसे राज्यपाल के पास स्वीकृति हेतु भेजा जाता है। राज्यपाल स्वीकृति दे सकते हैं, कानून को पुनर्विचार हेतु वापस भेज सकते हैं अथवा कुछ विशेष मामलों में उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु सुरक्षित रख सकते हैं। राज्यपाल की स्वीकृति के पश्चात विधेयक कानून का दर्जा प्राप्त कर लेता है।

(2) **राज्य कानूनों के क्रियान्वयन की विधियाँ:** राज्य कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु विभिन्न प्रशासनिक और विधिक संस्थाएँ कार्य करती हैं।

(क) कानून लागू करने वाली संस्थाएँ

राज्य कानूनों के क्रियान्वयन में पुलिस, न्यायपालिका और निगरानी संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

- **राज्य पुलिस:** यह सीधे राज्य सरकार के अधीन होती है और अपराधों की रोकथाम, लोक व्यवस्था की स्थापना तथा राज्य कानूनों के क्रियान्वयन की मूल उत्तरदायी होती है।
- **न्यायपालिका (उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय):** भारत की एकीकृत न्यायिक व्यवस्था (Integrated Judiciary) के अंतर्गत ये न्यायालय जहाँ केंद्रीय कानूनों को क्रियान्वित करते हैं, वहीं राज्य कानूनों की व्याख्या और उनके अंतर्गत न्याय की प्रदायगी भी सुनिश्चित करते हैं।
- **लोकायुक्त (Lokayukta):** यह राज्य स्तर पर भ्रष्टाचार और प्रशासनिक अनियमितताओं की निगरानी करने वाली एक स्वायत्त संस्था है जो जन-शिकायतों की जाँच करती है।

(ख) स्थानीय सरकारें और नगरीय संस्थाएँ

राज्य कानूनों के क्रियान्वयन में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

नगर निगम और नगरपालिका परिषदें शहरी क्षेत्रों में स्वच्छता, जल-आपूर्ति, यातायात प्रबंधन तथा नगरीय कानूनों के क्रियान्वयन का कार्य करती हैं।

पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि भूमि, जल संसाधन, स्थानीय विकास तथा पंचायती कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती हैं।

(ग) राज्य विभाग और नौकरशाही

राज्य सरकार के विभिन्न विभाग अपने-अपने क्षेत्रों से संबंधित कानूनों को क्रियान्वित करते हैं।

गृह विभाग लोक व्यवस्था और आंतरिक सुरक्षा से संबंधित कानून क्रियान्वित करता है।

श्रम एवं रोज़गार विभाग श्रमिकों के अधिकारों और औद्योगिक कानूनों को क्रियान्वित कराता है।

शिक्षा विभाग शैक्षिक कानूनों और शिक्षा के अधिकार (RTE) जैसे विनियमों के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होता है।

स्वास्थ्य विभाग लोक स्वास्थ्य, चिकित्सा सुविधाओं और सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित कानून क्रियान्वित करता है।

(3) **राज्य कानूनों के क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियाँ:** राज्य सरकारों को कानूनों के क्रियान्वयन के दौरान विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं:

- **वित्तीय संसाधनों की कमी:** अनेक राज्यों को सीमित वित्तीय संसाधनों के कारण विकासात्मक और कल्याणकारी कानूनों को पूर्ण रूप से क्रियान्वित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।
- **केंद्र और राज्य के अधिकारों में टकराव:** समवर्ती सूची के कुछ मामलों में केंद्रीय और राज्य सरकारों के मध्य अधिकारों को लेकर मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं, जिससे कानून के क्रियान्वयन में जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं।
- **प्रशासनिक कमज़ोरियाँ:** भ्रष्टाचार, नौकरशाही की सुस्ती और प्रशासनिक अक्षमता कभी-कभी कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा बनती हैं।
- **जन-जागरूकता का अभाव:** अनेक नागरिक अपने विधिक अधिकारों और राज्य कानूनों से पूर्ण रूप से अवगत नहीं होते, जिसके कारण कानूनों के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते।

संक्षेप में, राज्य सरकारें भारतीय संघीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। वे राज्य सूची और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाती हैं और विभिन्न प्रशासनिक, न्यायिक तथा स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से इन कानूनों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करती हैं। यद्यपि वित्तीय, प्रशासनिक और संवैधानिक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, तथापि राज्य सरकारें जन-कल्याण, लोक व्यवस्था और विकासात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में मूल भूमिका निभाती हैं।

▪ केंद्र और राज्य के संबंध

1. संघीय ढाँचा और संवैधानिक अपेक्षाएँ

भारतीय शासन-व्यवस्था का ढाँचा संघीय (Federal) प्रकृति का है, परंतु इसमें कुछ एकात्मक (Unitary) विशेषताएँ भी सम्मिलित हैं। संविधान में केंद्र और राज्यों के मध्य अधिकारों के विभाजन को स्पष्ट किया गया है ताकि शासन-व्यवस्था प्रभावी ढंग से संचालित हो सके।

(1) **भारत में संघवाद की अवधारणा :** भारत का संविधान परंपरागत अर्थों में पूर्ण रूप से संघीय (Federal) नहीं, बल्कि एक "प्रबल केंद्र वाली संघीय व्यवस्था" (Federation with a Strong Centre) है। डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने भारतीय संघ को "यूनियन ऑफ स्टेट्स" कहा, जिसका अर्थ यह है कि राज्य संविधान के अंतर्गत अस्तित्व में आए हैं और वे स्वायत्त नहीं, बल्कि केंद्र के अधीन हैं। यह व्यवस्था अमेरिकी संघीय व्यवस्था (जहाँ राज्य स्वायत्त होते हैं) और ब्रिटिश एकात्मक व्यवस्था (जहाँ समस्त अधिकार केंद्र के पास होते हैं) के मध्य एक संतुलित स्वरूप प्रस्तुत करती है।

(2) **संवैधानिक प्रावधान और अधिकारों का विभाजन** : भारत में केंद्र और राज्य के संबंधों को संविधान की सातवीं अनुसूची (Seventh Schedule) के अंतर्गत तीन सूचियों में विभाजित किया गया है:

(i) **संघ सूची (Union List) -** केवल केंद्र सरकार के अधिकार: इस सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिन पर केवल केंद्र सरकार कानून बना सकती है। इसमें लगभग 100 विषय सम्मिलित हैं, जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:

- **रक्षा (Defence)**
- **विदेश मामले (Foreign Affairs)**
- **संचार (Communication)**
- **मुद्रा और वित्त (Currency & Finance)**
- **परमाणु ऊर्जा (Nuclear Energy)**

(ii) **राज्य सूची (State List) -** केवल राज्य सरकार के अधिकार: इस सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिन पर राज्य सरकारें कानून बना सकती हैं। इसमें 61 विषय सम्मिलित हैं, जैसे:

- **पुलिस और लोक व्यवस्था (Police & Public Order)**
- **लोक स्वास्थ्य (Public Health)**
- **कृषि और सिंचाई (Agriculture & Irrigation)**
- **संपत्ति संबंधी कानून (Land & Property Laws)**

(iii) **समवर्ती सूची (Concurrent List) -** साझा अधिकार: इस सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिन पर केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। यदि दोनों सरकारों के कानून परस्पर विरोधाभासी हो जाएँ तो केंद्र सरकार के कानून को वरीयता प्राप्त होती है। इसमें 52 विषय सम्मिलित हैं, जैसे:

- **दंड विधि और सिविल प्रक्रिया (Criminal & Civil Laws)**
- **विवाह और तलाक (Marriage & Divorce)**
- **श्रम कानून (Labour Laws)**
- **शिक्षा (Education)**
- **वन और पर्यावरण (Forests & Environment)**

(3) भारतीय संघीय ढाँचे की विशेषताएँ : भारतीय संघवाद के कुछ उल्लेखनीय पहलू निम्नलिखित हैं:

- **एक सुदृढ़ केंद्र :** केंद्र के पास राज्यों की तुलना में अधिक अधिकार हैं, विशेषतः संघ सूची में सम्मिलित विषयों पर उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वित्तीय संसाधनों का विभाजन भी अधिकांशतः केंद्र के नियंत्रण में होता है।
- **संवैधानिक सर्वोच्चता :** भारत में संघवाद संविधान के आधार पर स्थापित है, और कोई भी राज्य एकतरफा रूप से स्वायत्तता की घोषणा नहीं कर सकता।
- **एकल नागरिकता :** भारत में समस्त नागरिकों के लिए एक ही नागरिकता है, जबकि कुछ संघीय देशों जैसे अमेरिका में नागरिकों के पास राज्य की नागरिकता भी होती है।
- **राज्यपाल की भूमिका :** राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वे राज्य में केंद्र सरकार के प्रतिनिधि होते हैं, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि राज्य संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहकर कार्य करे।
- **संकट की स्थिति में केंद्र की सर्वोच्चता :** अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) के अंतर्गत यदि किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो केंद्र प्रत्यक्ष नियंत्रण संभाल सकता है।

2. केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संबंध (वित्त आयोग, जीएसटी परिषद)

भारत में केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संबंध संवैधानिक प्रावधानों, वित्तीय संस्थाओं और राजस्व के विभाजन के सिद्धांतों पर आधारित हैं। चूँकि भारतीय संघीय व्यवस्था में केंद्र को अधिक वित्तीय अधिकार प्राप्त हैं, अतः वित्तीय संसाधनों के विभाजन को संतुलित रखने हेतु विभिन्न संवैधानिक उपाय किए गए हैं, जिनमें वित्त आयोग और जीएसटी परिषद केंद्रीय महत्व रखते हैं।

(1) वित्त आयोग (Finance Commission)

परिचय: वित्त आयोग भारत के संविधान के अनुच्छेद 280 के अंतर्गत स्थापित एक संवैधानिक संस्था है, जिसका मूल कार्य केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों के विभाजन संबंधी सिफारिशें प्रस्तुत करना है। वित्त आयोग का गठन प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। इसमें एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य सम्मिलित होते हैं, जो विभिन्न वित्तीय और आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ होते हैं।

अधिकार और उत्तरदायित्व:

- **कर राजस्व का विभाजन:** भारत में कुछ राजस्व केंद्र के अधिकार-क्षेत्र में होते हैं (जैसे आयकर, निगम कर) और कुछ राज्यों के अधिकार में (जैसे कृषि आय पर कर, संपत्ति कर)। वित्त आयोग यह सिफारिश करता है कि केंद्र सरकार के कर का कितना प्रतिशत राज्यों को दिया जाए। 15वें और हाल के 16वें वित्त आयोग (अवधि 2026-2031) ने केंद्रीय करों के विभाज्य पूल से राज्यों का हिस्सा 41% बनाए रखने की सिफारिश की है, जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया है।
- **गारंटीशुदा अनुदान और विशेष सहायता:** कम आय वाले राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु विशेष अनुदान प्रस्तावित किए जाते हैं। विशिष्ट राज्यों को अतिरिक्त वित्तीय सहायता (Special Grants) देने पर भी सिफारिशें दी जाती हैं।
- **स्थानीय सरकारों की निधि:** ग्रामीण और नगरीय स्थानीय सरकारों (पंचायतों और नगरपालिकाओं) के लिए वित्तीय संसाधनों की प्रदायगी के सिद्धांत निर्धारित करना।
- **वित्तीय संतुलन बनाए रखना:** राज्यों की आवश्यकताओं और आय में अंतर को कम करने हेतु उपाय प्रस्तावित करना। राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) को नियंत्रित करने की विधियाँ प्रस्तावित करना।

वित्त आयोग का महत्व

- यह केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय विवादों को कम करने में सहायता करता है।
- दुर्बल राज्यों को अतिरिक्त वित्तीय सहायता देकर क्षेत्रीय विकास के अंतर को कम करता है।
- वित्तीय पारदर्शिता को बढ़ावा देता है, ताकि राजस्व का विभाजन न्यायसंगत रूप से हो।

(2) जीएसटी परिषद (GST Council)

परिचय: जीएसटी परिषद (GST Council) भारत में वस्तु एवं सेवा कर (Goods and Services Tax - GST) के क्रियान्वयन, प्रबंधन और नीति-निर्माण हेतु स्थापित एक संवैधानिक संस्था है। इसका गठन संविधान के अनुच्छेद 279-A के अंतर्गत किया गया। जीएसटी के क्रियान्वयन से पूर्व केंद्र और राज्य विभिन्न प्रकार के

अप्रत्यक्ष कर लगाते थे, जिससे कर व्यवस्था जटिल हो जाती थी। जीएसटी के क्रियान्वयन के पश्चात संपूर्ण देश में एक समान कर व्यवस्था स्थापित की गई। जीएसटी परिषद यह निर्णय करती है कि कर की दर क्या होगी, किन वस्तुओं और सेवाओं पर लागू होगी, तथा केंद्र और राज्यों के मध्य कर का विभाजन किस प्रकार किया जाएगा।

जीएसटी परिषद की संरचना: जीएसटी परिषद केंद्र और राज्यों के प्रतिनिधियों से मिलकर बनी एक संयुक्त संस्था है। इसका गठन निम्नलिखित सदस्यों से होता है:

1. **अध्यक्ष – केंद्रीय वित्त मंत्री (Union Finance Minister)**
2. **केंद्र सरकार का एक नामित मंत्री – सामान्यतः वित्त राज्य मंत्री**
3. **समस्त राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के वित्त मंत्री अथवा उनके नामित प्रतिनिधि**

जीएसटी परिषद में निर्णय और मतदान की संरचना: जीएसटी परिषद में निर्णय सामान्यतः सर्वसम्मति (Consensus) के आधार पर लिए जाते हैं, तथापि आवश्यकता पड़ने पर मतदान की प्रक्रिया भी अपनाई जा सकती है। परिषद का कोई भी निर्णय कम से कम तीन-चौथाई (75 प्रतिशत) भारित बहुमत से स्वीकृत किया जाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत केंद्र सरकार के पास कुल मतदान शक्ति का एक-तिहाई (33.3 प्रतिशत) हिस्सा होता है, जबकि समस्त राज्यों और विधायिका रखने वाले केंद्रशासित प्रदेशों के पास सम्मिलित रूप से दो-तिहाई (66.7 प्रतिशत) मतदान शक्ति होती है। इस मतदान संरचना की विशेष बात यह है कि न तो केंद्र सरकार अकेले किसी निर्णय को स्वीकृत करा सकती है और न ही राज्य केंद्र की स्वीकृति के बिना कोई निर्णय क्रियान्वित कर सकते हैं। इस प्रकार जीएसटी परिषद केंद्र और राज्यों के मध्य पारस्परिक सहयोग, परामर्श और सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है, जिसके माध्यम से कर संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय सर्वसम्मति और साझा उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर लिए जाते हैं।

अधिकार और उत्तरदायित्व

- **जीएसटी दरों का निर्धारण:** परिषद विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं पर लागू होने वाली जीएसटी दरों का निर्धारण करती है। हाल के “जीएसटी सुधार 2.0” के पश्चात पुराने चार स्लैब के स्थान पर अब मूलतः द्वि-स्तरीय व्यवस्था (5% और 18%) प्रचलित है। जबकि तंबाकू और विलासिता की वस्तुओं हेतु 40%

का एक विशेष स्लैब निर्धारित किया गया है, तथा अनेक दैनिक उपयोग की वस्तुओं को जीएसटी से पूर्णतः मुक्त (0%) रखा गया है।

- **राज्यों के वित्तीय हितों की सुरक्षा:** जीएसटी के आरंभ में राज्यों की कर आय में कमी की आशंका को दूर करने हेतु पाँच वर्षीय 'जीएसटी क्षतिपूर्ति निधि' स्थापित की गई थी, जिसे बाद में ऋणों के भुगतान हेतु बढ़ाया गया और वह 31 मार्च 2026 को औपचारिक रूप से समाप्त हो चुकी है। अब परिषद राज्यों की दीर्घकालिक वित्तीय स्थिरता और राजस्व की सुरक्षा हेतु वैकल्पिक संघीय नीतियों पर कार्य करती है।
- **केंद्र और राज्यों के मध्य राजस्व का विभाजन:**
  - CGST (Central GST) की आय केंद्र सरकार को प्राप्त होती है।
  - SGST (State GST) की आय संबंधित राज्य सरकार को प्राप्त होती है।
  - IGST (Integrated GST) अंतर-राज्यीय व्यापार पर लगाया जाता है और इसकी आय केंद्र तथा राज्यों के मध्य विभाजित की जाती है।
- **नीति-निर्माण और विधिक संशोधन:** जीएसटी परिषद समय-समय पर कर कानूनों में संशोधन, नई नीतियों के निर्माण और कर व्यवस्था में सुधारों की सिफारिश करती है ताकि व्यवस्था अधिक प्रभावी और पारदर्शी बनाई जा सके।

जीएसटी परिषद का महत्व:

- भारत में अप्रत्यक्ष कर की व्यवस्था को एकसमान और पारदर्शी बनाया।
- विभिन्न राज्यों के मध्य कर संबंधी मतभेदों को कम किया।
- व्यापार और वाणिज्य को सुगम बनाया।
- केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय विवादों में कमी लाई।
- राज्यों के वित्तीय हितों की सुरक्षा और वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित किया।
- सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) को बढ़ावा दिया।

4. अंतर-राज्य परिषद और नीति आयोग जैसी संवैधानिक संस्थाओं की भूमिका

भारत में संघीय ढाँचे की सुदृढ़ता और केंद्र व राज्यों के मध्य बेहतर सहयोग हेतु अनेक संवैधानिक व अर्ध-संवैधानिक संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। इनमें अंतर-राज्य परिषद (Inter-State Council) और नीति आयोग (NITI Aayog) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(1) अंतर-राज्य परिषद (Inter-State Council)

परिचय: अंतर-राज्य परिषद भारत के संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत स्थापित एक परामर्शदायी संस्था है। इसका मूल उद्देश्य केंद्र और राज्यों के मध्य सहयोग को बढ़ावा देना तथा राज्यों के पारस्परिक विवादों का समाधान करना है। यह एक संघीय मंच प्रदान करती है जहाँ राज्य और केंद्र सरकार मिलकर नीति-निर्माण पर विचार-विमर्श कर सकें।

अंतर-राज्य परिषद का गठन: यह परिषद निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनती है:

1. **अध्यक्ष - प्रधानमंत्री**
2. **सदस्य - समस्त राज्यों के मुख्यमंत्री, केंद्रशासित प्रदेशों के उपराज्यपाल तथा केंद्रीय मंत्री**
3. **स्थायी सचिवालय - जो गृह मंत्रालय के अंतर्गत कार्य करता है और प्रशासनिक मामले देखता है**

अधिकार और उत्तरदायित्व

- **केंद्र और राज्यों के मध्य समन्वय स्थापित करना:** संवैधानिक व प्रशासनिक मामलों पर परामर्श के माध्यम से अधिकारों के विभाजन को संतुलित बनाना। ऐसी नीतियों का सुझाव देना जो राज्यों और केंद्र के मध्य विवादों को कम कर सकें।
- **राज्यों के मध्य विवादों का समाधान:** यदि दो या अधिक राज्यों के मध्य जल-विभाजन, सीमा संबंधी मुद्दों अथवा अन्य विषयों पर मतभेद हो, तो परिषद मध्यस्थता (Mediation) की भूमिका निभाती है।
- **संघीय ढाँचे को सुदृढ़ बनाना:** संवैधानिक सुधारों, वित्तीय मामलों, आंतरिक सुरक्षा तथा अन्य नीतियों पर राज्यों को परामर्श में सम्मिलित करना।
- **नीतियों के क्रियान्वयन में राज्यों की सहभागिता:** परिषद केंद्र की विकास योजनाओं और स्कीमों के क्रियान्वयन में राज्यों की सहभागिता और भूमिका का मूल्यांकन करती है।

अंतर-राज्य परिषद का महत्व

- केंद्र और राज्यों के मध्य विवादों को सुलझाने में सहायक।
- नीति-निर्माण में राज्यों की सहभागिता को सुनिश्चित करती है।
- राज्यों के वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों की सुरक्षा में सहायक।

(2) नीति आयोग (NITI Aayog)

परिचय: नीति आयोग (National Institution for Transforming India) 2015 में स्थापित एक थिंक टैंक है, जिसे योजना आयोग (Planning Commission) के स्थान पर बनाया गया। यह भारत में नीति-निर्माण, आर्थिक विकास और सामाजिक सुधारों हेतु परामर्शदायी भूमिका निभाता है। इसका उद्देश्य केंद्र और राज्यों के मध्य सहयोग को बढ़ावा देना तथा राज्य-विशिष्ट (State-Specific) विकास योजनाएँ तैयार करना है।

नीति आयोग की संरचना

1. **अध्यक्ष - प्रधानमंत्री**
2. **उपाध्यक्ष - सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ**
3. **स्थायी सदस्य - अर्थशास्त्र, उद्योग और विकास संबंधी मामलों के विशेषज्ञ**
4. **राज्यों के मुख्यमंत्री - गवर्निंग काउंसिल के सदस्य**

अधिकार और उत्तरदायित्व

- **नीति-निर्माण और विकासात्मक योजना:** दीर्घकालिक और अल्पकालिक योजनाएँ तैयार करना जो राज्यों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप हों। नीति-निर्माण में ज़मीनी तथ्यों और आधुनिक शोध को सम्मिलित करना।
- **सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism):** राज्यों को विकासात्मक नीतियों में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित करना ताकि उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जा सके। राज्यों को निर्णय-निर्माण में अधिक अधिकार देना।
- **कल्याणकारी योजनाओं की निगरानी और विश्लेषण:** केंद्रीय और राज्य सरकारों की विकासात्मक योजनाओं की प्रभावी निगरानी और मूल्यांकन करना। डेटाबेस और शोध के माध्यम से सरकारी योजनाओं की उपयोगिता को परखना।
- **निजी क्षेत्र और वैश्विक संस्थाओं के साथ सहयोग:** अर्थव्यवस्था के विकास हेतु निजी क्षेत्र के साथ मिलकर कार्य करना। विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाओं के साथ विकासात्मक योजनाओं में सहयोग।

नीति आयोग का महत्व

- योजना आयोग की तुलना में अधिक लचीली और प्रभावी संस्था।
- नीति-निर्माण में राज्यों की आवश्यकताओं को वरीयता देने वाली व्यवस्था।
- आधुनिक शोध, डेटा और विश्लेषण के माध्यम से वास्तविक समस्याओं पर आधारित नीतियाँ बनाने वाली संस्था।

▪ प्रशासनिक ढाँचे की व्यावहारिक भूमिका

1. नौकरशाही, सिविल सेवाओं, और ज़िला प्रशासन के व्यावहारिक उत्तरदायित्व

नौकरशाही, सिविल सेवाएँ, और ज़िला प्रशासन सरकार के निर्णयों को ज़मीनी स्तर पर क्रियान्वित करने हेतु मूल ढाँचा प्रदान करते हैं। इनकी व्यावहारिक भूमिका को निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है:

(1) **नौकरशाही की व्यावहारिक भूमिका:** नौकरशाही सरकार की नीतियों के क्रियान्वयन, निर्णयों के पालन, तथा सार्वजनिक सेवाओं की प्रदायगी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- **नीति-निर्माण और परामर्श -** नौकरशाह सरकार को नीतिगत निर्णयों में परामर्श प्रदान करते हैं, नए कानूनों और योजनाओं हेतु शोध करते हैं, तथा उनके क्रियान्वयन की योजनाएँ तैयार करते हैं।
- **कानूनों और नीतियों का क्रियान्वयन -** नौकरशाह सरकार के आदेशों को प्रशासन के विभिन्न स्तरों तक पहुँचाते हैं और उनका पालन कराते हैं।
- **सार्वजनिक सेवाओं की निगरानी -** स्वास्थ्य, शिक्षा, अवसंरचना, और सामाजिक कल्याण की योजनाओं को बेहतर ढंग से क्रियान्वित करने हेतु निगरानी और रिपोर्टिंग की व्यवस्था संभालते हैं।
- **राज्य और केंद्र सरकारों के मध्य संपर्क -** नौकरशाही केंद्र और राज्य सरकार के मध्य नीतियों के समन्वय को सुनिश्चित करती है।

(2) **सिविल सेवाओं की व्यावहारिक भूमिका:** सिविल सेवाएँ, विशेषतः भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS), और भारतीय राजस्व सेवा (IRS), राष्ट्रीय प्रशासन की रीढ़ की हड्डी की हैसियत रखती हैं।

- **प्रशासनिक कार्यों का निष्पादन -** ज़िला और राज्य स्तर पर सरकारी संस्थाओं और विभिन्न विभागों का प्रबंधन संभालना।
- **कानून का क्रियान्वयन और व्यवस्था बनाए रखना -** IPS अधिकारी आंतरिक सुरक्षा, लोक व्यवस्था, और आपराधिक गतिविधियों की रोकथाम सुनिश्चित करते हैं।
- **वित्तीय मामले और राजस्व की वसूली -** IRS अधिकारी कर वसूली, वित्तीय नीतियों के क्रियान्वयन, और भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई में भूमिका निभाते हैं।
- **कल्याणकारी योजनाओं की निगरानी -** IAS अधिकारी सरकार की विकासात्मक और सामाजिक कल्याण योजनाओं को ज़िला स्तर पर क्रियान्वित करते हैं और उनके निष्पादन का मूल्यांकन करते हैं।

(3) **ज़िला प्रशासन के व्यावहारिक उत्तरदायित्व:** ज़िला प्रशासन सरकार के प्रशासनिक ढाँचे का सबसे निचला परंतु सर्वाधिक प्रभावी हिस्सा है, जो सामान्य नागरिकों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है। इसके प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं:

- **ज़िला मजिस्ट्रेट (DM) अथवा कलेक्टर की भूमिका** - ज़िले में समस्त सरकारी मामलों की निगरानी, कानून व लोक व्यवस्था बनाए रखना, तथा सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन।
- **ज़िला स्तर पर सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन -** शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, पंचायती राज, तथा अन्य विकासात्मक योजनाओं को क्रियान्वित करना।
- **आपदाओं के दौरान आपातकालीन कदम -** बाढ़, भूकंप, महामारी, तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के दौरान राहत कार्यों की निगरानी।
- **स्थानीय सरकारों के साथ सहयोग -** ज़िले में नगर निगमों और पंचायती राज संस्थाओं के साथ समन्वय स्थापित कर विकासात्मक कार्यों को आगे बढ़ाना।

ये तीनों तत्व अर्थात नौकरशाही, सिविल सेवाएँ, और ज़िला प्रशासन, सरकार के निर्णयों को व्यावहारिक रूप देने में केंद्रीय हैसियत रखते हैं और राष्ट्रीय प्रशासन को प्रभावी बनाने में सहायता प्रदान करते हैं।

2. केंद्र और राज्य के मध्य पुलिस, स्वास्थ्य, शिक्षा, और अवसंरचना में सहयोग

केंद्रीय और राज्य सरकारों के मध्य पुलिस, स्वास्थ्य, शिक्षा, और अवसंरचना जैसे क्षेत्रों में सहयोग राष्ट्रीय विकास और जन-कल्याण हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है। संवैधानिक रूप से कुछ क्षेत्र केंद्र के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं, कुछ राज्यों के, और कुछ में दोनों सरकारें संयुक्त रूप से कार्य करती हैं।

(1) **पुलिस और आंतरिक सुरक्षा में केंद्र और राज्य का सहयोग:** पुलिस का प्रबंधन राज्य सरकारों के अंतर्गत आता है, परंतु आंतरिक सुरक्षा और राष्ट्रीय अपराध संबंधी मुद्दों में केंद्र और राज्य मिलकर कार्य करते हैं।

- **केंद्रीय पुलिस बलों और राज्य पुलिस का सहयोग:** राज्य सरकार के अंतर्गत राज्य पुलिस कार्य करती है, जबकि सीआरपीएफ, बीएसएफ, और सीआईएसएफ जैसे केंद्रीय बल राज्यों को सहायता प्रदान करते हैं। आतंकवाद, नक्सलवाद, और आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियों से निपटने हेतु केंद्र और राज्य मिलकर कार्य करते हैं।
- **गुप्तचर सूचना का आदान-प्रदान और कानून का क्रियान्वयन:** गुप्तचर ब्यूरो (IB) और राज्य गुप्तचर इकाइयों के मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान। राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (NIA) और केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) कुछ विशिष्ट मामलों में राज्य पुलिस के साथ सहयोग करती हैं।

- **आपदाओं और आपातकालीन स्थितियों में पुलिस सहयोग:** दंगों, उपद्रवों, अथवा प्राकृतिक आपदाओं के दौरान केंद्र राज्यों को अर्धसैनिक बल प्रदान करता है। कोविड-19 लॉकडाउन के दौरान केंद्रीय और राज्य पुलिस ने मिलकर सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखी।

(2) **स्वास्थ्य क्षेत्र में केंद्र और राज्य का सहयोग:** लोक स्वास्थ्य और अस्पताल (Public Health and Hospitals) संवैधानिक रूप से राज्य सूची (State List) का हिस्सा हैं। तथापि, संक्रामक रोगों की रोकथाम और परिवार कल्याण जैसे कुछ उप-विषय समवर्ती अधिकार-क्षेत्र में आते हैं, जिस कारण केंद्र और राज्य दोनों मिलकर इस क्षेत्र में कार्य करते हैं।

- **राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीतियों का क्रियान्वयन:** आयुष्मान भारत योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM), और देशव्यापी टीकाकरण कार्यक्रम जैसे बड़े कदम केंद्र और राज्य के संयुक्त प्रयासों से क्रियान्वित किए जाते हैं। लोक स्वास्थ्य के मूलभूत ढाँचे को सुदृढ़ बनाने हेतु केंद्र सरकार राज्यों को बड़े पैमाने पर वित्तीय सहायता (Grants) प्रदान करती है।
- **केंद्र और राज्य के अंतर्गत स्वास्थ्य संस्थाएँ**: अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) जैसी संस्थाएँ केंद्र के अंतर्गत आती हैं, जबकि ज़िला अस्पताल और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र राज्य सरकारें संचालित करती हैं। महामारियों के नियंत्रण और टीकाकरण अभियानों में केंद्र और राज्य की संस्थाएँ मिलकर कार्य करती हैं।
- **आपातकालीन स्वास्थ्य हस्तक्षेप:** कोविड-19, डेंगू, मलेरिया, तथा अन्य महामारियों के दौरान केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय राज्यों को निधि और चिकित्सा संसाधन प्रदान करता है। डॉक्टरों, नर्सिंग स्टाफ, तथा वेंटिलेटरों का वितरण केंद्र और राज्य के सहयोग से किया जाता है।

(3) **शिक्षा क्षेत्र में केंद्र और राज्य का सहयोग:** शिक्षा भी समवर्ती सूची में सम्मिलित है, अतः केंद्र और राज्य दोनों शिक्षा के विकास में भूमिका निभाते हैं।

- **राष्ट्रीय शैक्षिक नीतियों का क्रियान्वयन:** नई शिक्षा नीति (NEP 2020) का क्रियान्वयन केंद्र और राज्य के परामर्श से हुआ। सर्व शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन, तथा छात्रवृत्ति योजनाएँ केंद्र और राज्यों के सहयोग से संचालित की जाती हैं।
- **शैक्षिक संस्थाएँ और अधिकारों का विभाजन:** केंद्र सरकार IIT, IIM, NIT, तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) जैसी संस्थाएँ संचालित करती है। राज्य सरकारें विद्यालयी शिक्षा, महाविद्यालय, तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा संभालती हैं।

- **शैक्षिक सुधार और संयुक्त कदम:** राज्यों के साथ मिलकर पाठ्यक्रम में सुधार और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के संवर्धन हेतु कार्य किया जाता है। डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन लर्निंग, तथा स्मार्ट क्लासरूम की योजनाएँ केंद्र और राज्य मिलकर क्रियान्वित करते हैं।

(4) **अवसंरचना में केंद्र और राज्य का सहयोग:** देश के विकास हेतु मूलभूत ढाँचे जैसे सड़कें, रेलवे, बिजली, जल, और नगरों के विकास में केंद्र और राज्य का सहयोग आवश्यक है।

- **बड़ी अवसंरचना योजनाएँ:** भारतमाला परियोजना, अमृत योजना, स्मार्ट सिटीज़ मिशन, तथा प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना जैसी परियोजनाएँ केंद्र और राज्य सरकारों के सहयोग से पूर्ण होती हैं। राज्य सरकारें स्थानीय स्तर पर नगरीय विकास, मेट्रो परियोजनाओं, तथा सीवरेज व्यवस्थाओं को क्रियान्वित करती हैं।
- **केंद्र और राज्य के अंतर्गत परियोजनाएँ**: रेलवे, राष्ट्रीय राजमार्ग, तथा बड़े बाँध केंद्र सरकार की निगरानी में होते हैं। राज्य की सड़कें, स्थानीय परिवहन, तथा जल-आपूर्ति राज्य सरकारों के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं।

(5) **वित्तपोषण और नीति में सहयोग:** केंद्र सरकार बड़ी विकास परियोजनाओं हेतु राज्यों को वित्तपोषण, सब्सिडी, तथा तकनीकी सहायता प्रदान करती है।

पीपीपी मॉडल (Public-Private Partnership) के अंतर्गत केंद्र और राज्य मिलकर अवसंरचना परियोजनाएँ तैयार करते हैं। पुलिस, स्वास्थ्य, शिक्षा, तथा अवसंरचना के क्षेत्र में केंद्र और राज्य सरकारों का सहयोग राष्ट्रीय विकास हेतु आवश्यक है। संवैधानिक अधिकार-क्षेत्र के अनुसार इन क्षेत्रों में नीतियों के क्रियान्वयन, वित्तीय संसाधनों के विभाजन, तथा प्रशासनिक स्तर पर समन्वय के माध्यम से देश के समस्त क्षेत्रों में विकास सुनिश्चित किया जाता है।

3. राज्यपाल, मुख्यमंत्री, और अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की व्यावहारिक भूमिका

राज्य सरकार का प्रशासनिक ढाँचा राज्यपाल, मुख्यमंत्री, तथा अन्य प्रशासनिक संस्थाओं से मिलकर बनता है, जो राज्य में नीति-निर्माण और शासन के विभिन्न पहलुओं को व्यावहारिक रूप देने में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। संविधान में राज्य सरकार के अधिकारों और उत्तरदायित्वों को स्पष्ट किया गया है, ताकि जन-कल्याण सुनिश्चित किया जा सके।

(1) **राज्यपाल की व्यावहारिक भूमिका:** राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है और उसे राष्ट्रपति द्वारा नामित किया जाता है। इसकी भूमिका औपचारिक (ceremonial) भी होती है और कुछ मामलों में व्यावहारिक (executive) भी।

- **संवैधानिक उत्तरदायित्व और अधिकार:**
  - **मुख्यमंत्री की नियुक्ति:** राज्यपाल राज्य विधानसभा में बहुमत रखने वाली पार्टी के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है।
  - **विधायी प्रक्रिया:** राज्यपाल राज्य विधानसभा से स्वीकृत विधेयकों की पुष्टि करता है और विशिष्ट विधेयकों को राष्ट्रपति के पास भेज सकता है।
  - **आपातकालीन अधिकार:** यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए तो राज्यपाल अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन (President's Rule) लागू करने की सिफारिश भेज सकता है।
- **प्रशासनिक और नीतिगत भूमिका:**
  - **नीतिगत मामलों में परामर्श:** राज्यपाल राज्य सरकार को परामर्श देता है और प्रशासनिक मामलों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने का प्रयास करता है।
  - **वित्तीय अधिकार:** राज्य विधानसभा में बजट तथा अन्य वित्तीय विधेयकों (Money Bills) को प्रस्तुत करने की पूर्व स्वीकृति देना। (ध्यान रहे कि वित्तीय आपातकाल लागू करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति के पास होता है)।
  - **विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति:** अधिकांश राज्यों में राज्यपाल सरकारी विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति होते हैं और कुलपतियों की नियुक्ति में भूमिका निभाते हैं।

व्यावहारिक उदाहरण: अनेक अवसरों पर राज्यपाल ने राज्य सरकारों के निर्णयों पर पुनर्विचार किया है, जैसे किसी विवादास्पद विधेयक को राष्ट्रपति के पास भेजना अथवा विधानसभा भंग करने की सिफारिश करना।

(2) **मुख्यमंत्री की व्यावहारिक भूमिका:** मुख्यमंत्री राज्य का कार्यकारी प्रमुख होता है और उसकी व्यावहारिक भूमिका नीति-निर्माण, विकासात्मक योजनाओं के क्रियान्वयन, तथा प्रशासनिक मामलों की निगरानी पर आधारित होती है।

- **प्रशासनिक और शासकीय अधिकार:**
  - **मंत्रिमंडल का नेतृत्व:** मुख्यमंत्री अपने मंत्रिमंडल के मंत्रियों की सहायता से राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में नीतियों का क्रियान्वयन कराता है।

- ○ **विधि-निर्माण में भूमिका:** मुख्यमंत्री विधानसभा में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयकों की निगरानी करता है और उन्हें क्रियान्वित कराने में केंद्रीय भूमिका निभाता है।
- ○ **केंद्र और राज्य के संबंध:** मुख्यमंत्री केंद्र से निधि, नीतिगत सहायता, तथा विकासात्मक योजनाओं हेतु वार्ता करता है।

- **जन-कल्याण संबंधी कदम:**
  - ○ **राज्य विकासात्मक योजनाएँ:** मुख्यमंत्री शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, तथा अवसंरचना हेतु विभिन्न योजनाएँ क्रियान्वित करता है।
  - ○ **भ्रष्टाचार और प्रशासनिक सुधार:** पारदर्शिता और जवाबदेही की व्यवस्था को बेहतर बनाने हेतु कदम उठाता है।
  - ○ **आपातकालीन स्थितियों में भूमिका:** प्राकृतिक आपदाओं, महामारियों, अथवा अन्य संकटों के दौरान मुख्यमंत्री राज्य तंत्र को सक्रिय करता है।

व्यावहारिक उदाहरण: विभिन्न राज्यों में मुख्यमंत्रियों ने लोक स्वास्थ्य में सुधार हेतु विशिष्ट योजनाएँ क्रियान्वित की हैं, जैसे तमिलनाडु में "अम्मा कैंटीन" अथवा दिल्ली में "मोहल्ला क्लिनिक" की स्थापना।

(3) **अन्य प्रशासनिक संस्थाएँ और उनकी व्यावहारिक भूमिका:** राज्य सरकार के विभिन्न विभाग और संस्थाएँ सार्वजनिक सेवाओं के क्रियान्वयन में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। इनमें नौकरशाही, सिविल सेवाएँ, तथा ज़िला प्रशासन सम्मिलित हैं।

1) नौकरशाही और सिविल सेवाएँ

- **नीति का क्रियान्वयन:** नौकरशाही सरकारी नीतियों को व्यावहारिक रूप देती है और क्षेत्रीय स्तर पर उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित करती है।
- **सरकारी विभागों की निगरानी:** विभिन्न विभागों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा कृषि के कार्यनिष्पादन को बेहतर बनाने में सहायता करती है।
- **पारदर्शिता और जवाबदेही**: सरकार के निर्णयों को प्रभावी बनाने तथा भ्रष्टाचार के उन्मूलन हेतु सुधारात्मक कदम उठाती है।

2) ज़िला प्रशासन

- **ज़िला मजिस्ट्रेट (DM) अथवा कलेक्टर**: ज़िले में सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन, कानून व प्रशासन, तथा विकासात्मक कार्यों की निगरानी करता है।

- **पुलिस की भूमिका:** ज़िला पुलिस अधीक्षक (SP) सार्वजनिक अनुशासन बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभाता है।
- **नगरीय संस्थाएँ:** नगर निगम तथा पंचायती राज संस्थाएँ नगरीय और ग्रामीण स्तर पर विकासात्मक कार्यों को संभालती हैं।

राज्य सरकार के प्रशासनिक ढाँचे में राज्यपाल एक संवैधानिक प्रहरी, मुख्यमंत्री एक नीति-निर्माता और क्रियान्वयनकर्ता, तथा नौकरशाही व ज़िला प्रशासन इन नीतियों के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होते हैं। केंद्र और राज्य के मध्य संतुलन और समन्वय बेहतर शासन हेतु आवश्यक है, ताकि जन-समस्याओं का प्रभावी समाधान निकाला जा सके।

▪ सार्वजनिक सेवाओं की आपूर्ति

1. केंद्र सरकार की कल्याणकारी योजनाएँ और उनका व्यावहारिक क्रियान्वयन (आयुष्मान भारत, मनरेगा, स्वच्छ भारत मिशन)

केंद्र सरकार की कल्याणकारी योजनाएँ देश में जन-कल्याण सुनिश्चित करने हेतु तैयार की जाती हैं। इन योजनाओं का क्रियान्वयन राज्य सरकारों तथा ज़िला प्रशासन के सहयोग से किया जाता है। यहाँ तीन महत्वपूर्ण कल्याणकारी योजनाओं–आयुष्मान भारत, मनरेगा, तथा स्वच्छ भारत मिशन–का अवलोकन प्रस्तुत किया जा रहा है, जो स्वास्थ्य, रोज़गार, तथा स्वच्छता के क्षेत्रों में उल्लेखनीय भूमिका निभाती हैं।

(1) आयुष्मान भारत योजना (Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana - PMJAY)

पृष्ठभूमि: यह योजना 2018 में आरंभ की गई थी और इसे विश्व का सबसे बड़ा स्वास्थ्य बीमा कार्यक्रम कहा जाता है। इसका उद्देश्य निर्धन और दुर्बल वर्गों को निःशुल्क तथा गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करना है।

- **व्यावहारिक क्रियान्वयन:**
  - प्रत्येक पात्र परिवार को पाँच लाख रुपये तक का वार्षिक स्वास्थ्य बीमा प्रदान किया जाता है।
  - हाल की विस्तार योजना के पश्चात अब 55 करोड़ से अधिक व्यक्ति इस योजना के दायरे में आते हैं।
  - सितंबर 2024 से 70 वर्ष और उससे अधिक आयु के समस्त वरिष्ठ नागरिकों को भी इसमें सम्मिलित कर वार्षिक 5 लाख रुपये का पृथक कवर दिया गया है।
  - देश भर के पैनल में सम्मिलित (Empaneled) सरकारी और निजी अस्पतालों में इसके अंतर्गत निःशुल्क उपचार की सुविधा दी जाती है।
  - स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्र स्थापित किए गए हैं ताकि मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएँ घर के निकट उपलब्ध हो सकें।
  - इस योजना का क्रियान्वयन राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण (NHA) के माध्यम से किया जाता है, जबकि राज्य स्तर पर पृथक एजेंसियाँ विद्यमान हैं।
- **चुनौतियाँ और सुधार की गुंजाइश:**
  - अनेक पात्र व्यक्तियों को इस योजना की जानकारी नहीं है।
  - कुछ निजी अस्पताल इस योजना के अंतर्गत मरीज़ों का उपचार करने से बचते हैं।
  - योजना की सफलता सुनिश्चित करने हेतु सख्त निगरानी और प्रभावी क्रियान्वयन आवश्यक है।

(2) मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम - MGNREGA)

पृष्ठभूमि: यह योजना 2005 में आरंभ की गई थी ताकि ग्रामीण जनता को कम से कम 100 दिन का रोज़गार प्रदान किया जा सके और ग्रामीण विकास कार्यों में उनकी सहभागिता सुनिश्चित की जा सके।

- **व्यावहारिक क्रियान्वयन:**
  - ग्रामीण श्रमिकों को 100 दिन का गारंटीशुदा रोज़गार दिया जाता है, जिसमें खुदाई, सड़क निर्माण, नहरें, तथा अन्य विकासात्मक कार्य सम्मिलित हैं।
  - नकद भुगतान के स्थान पर राशि सीधे बैंक खातों में हस्तांतरित की जाती है।
  - ग्रामीण विकासात्मक परियोजनाएँ जैसे तालाब खोदना, सड़क बनाना, तथा जल-संग्रहण संरचनाएँ बनाना इस योजना के अंतर्गत किए जाते हैं।
  - स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायतें इस योजना के क्रियान्वयन की निगरानी करती हैं।
- **चुनौतियाँ और सुधार की गुंजाइश:**
  - भ्रष्टाचार और फर्जी श्रमिकों (Bogus Workers) की समस्या विद्यमान है।
  - कुछ क्षेत्रों में मज़दूरी समय पर प्राप्त नहीं होती, जिससे श्रमिकों का उत्साह भंग होता है।
  - पारदर्शिता और प्रभावी निगरानी के माध्यम से इस योजना को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

(3) स्वच्छ भारत मिशन (Swachh Bharat Mission - SBM)

पृष्ठभूमि: यह योजना 2014 में आरंभ की गई, जिसका उद्देश्य खुले में शौच का उन्मूलन, स्वच्छता का संवर्धन, तथा स्वच्छ वातावरण प्रदान करना था।

- **व्यावहारिक क्रियान्वयन:**
  - देश भर में 11 करोड़ से अधिक शौचालय निर्मित किए गए ताकि खुले में शौच की प्रथा समाप्त की जा सके।
  - नगरों और गाँवों में कचरे के वैज्ञानिक आधार पर स्वच्छता तथा अपशिष्ट प्रबंधन व्यवस्था प्रस्तुत की गई।
  - विद्यालयों, अस्पतालों, तथा सार्वजनिक स्थलों पर स्वच्छता अभियान चलाए गए।
  - राज्य और ज़िला स्तर पर निगरानी समितियाँ गठित की गईं ताकि इस योजना का क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जा सके।

- **चुनौतियाँ और सुधार की गुंजाइश:**
  - कुछ क्षेत्रों में निर्मित शौचालय जल अथवा जल-निकासी की समस्याओं के कारण निष्क्रिय हैं।
  - जनता में स्वच्छता के संबंध में और अधिक जागरूकता उत्पन्न करने की आवश्यकता है।
  - निरंतर निगरानी और स्वच्छता की आदतों को बढ़ावा देकर इस मिशन को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

2. राज्य सरकारों के अंतर्गत जन-कल्याण की योजनाएँ और उनका प्रभाव

राज्य सरकारें अपनी आवश्यकताओं और क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार जन-कल्याण की विभिन्न परियोजनाएँ संचालित करती हैं, जो केंद्रीय योजनाओं के साथ-साथ विशिष्ट राज्यों की समस्याओं के समाधान हेतु बनाई जाती हैं। ये योजनाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, महिला कल्याण, तथा अन्य सामाजिक मामलों को समाहित करती हैं। यहाँ कुछ उल्लेखनीय राज्य कल्याणकारी योजनाओं और उनके व्यावहारिक प्रभावों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) मदर थाई थित्तम (तमिलनाडु की अम्मा योजना) - तमिलनाडु

पृष्ठभूमि: तमिलनाडु सरकार ने निर्धन जनता को सस्ता भोजन, आवास, तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करने हेतु अनेक योजनाएँ आरंभ की हैं, जिनमें "अम्मा कैंटीन" (Amma Canteen) सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

- **व्यावहारिक क्रियान्वयन:**
  - राज्य भर में सब्सिडी युक्त भोजन केंद्र स्थापित किए गए, जहाँ अत्यंत कम मूल्य पर भोजन उपलब्ध है।
  - निर्धन और श्रमिक वर्ग इस योजना से सीधे लाभान्वित हो रहा है।
  - राज्य में अन्य योजनाएँ जैसे अम्मा जल योजना (सस्ता पेयजल) तथा अम्मा फार्मेसी (सस्ती दवाइयाँ) भी सफलतापूर्वक संचालित की जा रही हैं।
- **प्रभाव:**
  - निर्धनों और श्रमिकों के लिए सस्ते भोजन की प्रदायगी संभव हुई।
  - खाद्य की कमी और कुपोषण (Malnutrition) पर नियंत्रण पाने में सहायता मिली।
  - अन्य राज्यों ने भी इस मॉडल से प्रेरित होकर अपने यहाँ इसी प्रकार की योजनाएँ प्रस्तुत कीं।

(2) राजस्थान जन आधार योजना (पूर्व भामाशाह योजना) - राजस्थान

पृष्ठभूमि: राजस्थान सरकार ने महिलाओं की वित्तीय सहभागिता और सरकारी लाभों के प्रत्यक्ष हस्तांतरण (DBT) हेतु पहले "भामाशाह योजना" आरंभ की थी, जिसे बाद में परिवर्तित कर दिसंबर 2019 से "जन आधार योजना" के नाम से क्रियान्वित किया गया है।

- **व्यावहारिक क्रियान्वयन:**
  - परिवार की महिला मुखिया को "जन आधार कार्ड" के माध्यम से घर की मुखिया स्वीकार किया जाता है और उसी के बैंक खाते को मुख्य पहचान से जोड़ा जाता है।
  - महिलाओं को विभिन्न सरकारी योजनाओं से प्राप्त होने वाली वित्तीय सहायता, राशन, पेंशन, तथा छात्रवृत्तियाँ सीधे उनके बैंक खातों में हस्तांतरित की जाती हैं।
  - यह कार्ड राज्य के समस्त नागरिकों हेतु एक एकल पहचान और वित्तीय दस्तावेज़ का कार्य करता है।
- **प्रभाव**:
  - भ्रष्टाचार और बिचौलियों (Middlemen) का उन्मूलन हुआ क्योंकि राशि सीधे पात्र व्यक्तियों के खाते में पहुँचती है।
  - महिलाओं को वास्तविक अर्थों में वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त हुई, जिससे उनकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हुई।

(3) कृष्णा मराठवाड़ा सिंचाई परियोजना (Krishna Marathwada Irrigation Project) - महाराष्ट्र

पृष्ठभूमि: महाराष्ट्र का मराठवाड़ा क्षेत्र गंभीर अकाल और जल-संकट से ग्रस्त रहा है। इस दीर्घकालिक समस्या का स्थायी समाधान करने हेतु राज्य सरकार ने "कृष्णा मराठवाड़ा लिफ्ट सिंचाई योजना" प्रस्तुत की, ताकि कृष्णा बेसिन के जल को मोड़कर सूखाग्रस्त क्षेत्रों की सिंचाई की जा सके।

- **व्यावहारिक क्रियान्वयन:**
  - इस योजना के अंतर्गत कृष्णा नदी के उप-द्रोणी और उजनी बाँध से जल उठाकर (Lift Irrigation) मराठवाड़ा के दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचाने हेतु अरबों रुपये की अवसंरचना और सुरंगें निर्मित की गई हैं।
  - इसके माध्यम से मराठवाड़ा के प्रमुख ज़िलों (जैसे धाराशिव/उस्मानाबाद और बीड) के लाखों हेक्टेयर कृषि क्षेत्र को जल प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
  - स्थानीय जलसंभर प्रबंधन तथा ग्राम पंचायतों के सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल और सिंचाई नेटवर्क को जोड़ा जा रहा है।

- **प्रभाव:**
    - अकालग्रस्त ज़िलों में किसानों को फसलों हेतु स्थायी जल प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ है।
    - जल की गंभीर कमी के कारण जो किसान नगरों की ओर पलायन (Migration) करने को विवश थे, उसमें स्पष्ट कमी आई है।

(4) अन्य योजनाएँ

- **कन्याश्री प्रकल्प योजना** - पश्चिम बंगाल: यह योजना पश्चिम बंगाल सरकार ने निर्धन बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु आरंभ की। इसके अंतर्गत पात्र छात्राओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है ताकि वे अपनी शिक्षा जारी रख सकें और अल्पायु में विवाह से बच सकें। इसका प्रभाव यह हुआ कि राज्य में बालिकाओं की विद्यालयी शिक्षा में सुधार आया और अल्पायु विवाहों में कमी देखने को मिली।
- **लाडली लक्ष्मी योजना** - मध्य प्रदेश: यह योजना मध्य प्रदेश में बालिकाओं के बेहतर भविष्य को सुनिश्चित करने हेतु प्रस्तुत की गई। इसके अंतर्गत माता-पिता को बालिका के जन्म से लेकर उसकी शिक्षा पूर्ण होने तक वित्तीय सहायता दी जाती है। इस योजना से महिलाओं के शैक्षिक अवसरों में वृद्धि हुई और राज्य में बालिकाओं के जन्म को सकारात्मक दृष्टि से देखने की सोच को बढ़ावा मिला।
- **मोहल्ला क्लिनिक योजना** - दिल्ली: दिल्ली सरकार ने लोक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने हेतु मोहल्ला क्लिनिक स्थापित किए जहाँ जनता को निःशुल्क मूलभूत चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। यह योजना विशेषतः कम आय वाले वर्ग के लिए लाभदायक सिद्ध हुई और स्वास्थ्य क्षेत्र में सुधार देखने को मिला।

ये समस्त योजनाएँ राज्यों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार की गई हैं और इनके सकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं। तथापि, बेहतर पारदर्शिता, प्रभावी क्रियान्वयन, तथा भ्रष्टाचार के उन्मूलन के बिना इन योजनाओं की पूर्ण सफलता संभव नहीं।

3. ज़मीनी स्तर पर सार्वजनिक सेवाओं की प्रदायगी में आने वाली कठिनाइयाँ

सार्वजनिक सेवाएँ जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार, अवसंरचना (Infrastructure) तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में विभिन्न बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। ये बाधाएँ प्रशासनिक, वित्तीय, सामाजिक तथा तकनीकी प्रकृति की हो सकती हैं। नीचे इन कठिनाइयों का विवरण और उनके प्रभावों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) **वित्तीय संसाधनों की कमी:** सार्वजनिक सेवाओं की प्रदायगी हेतु पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, परंतु प्रायः राज्य और स्थानीय सरकारों को बजट की कमी का सामना करना पड़ता है। इस कारण अनेक कल्याणकारी परियोजनाएँ या तो विलंबित हो जाती हैं अथवा पूर्ण रूप से बंद हो जाती हैं।

प्रभाव:

- जनता को मूलभूत सुविधाओं में कमी का सामना करना पड़ता है।
- विकासात्मक परियोजनाएँ अधूरी रह जाती हैं।
- अवसंरचना की कमी सार्वजनिक समस्याओं में वृद्धि करती है।

(2) **भ्रष्टाचार और अपर्याप्त प्रबंधन:** भ्रष्टाचार एक बड़ी बाधा है जो सार्वजनिक कल्याणकारी परियोजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में रुकावट बनती है। निधियों का दुरुपयोग, सरकारी अधिकारियों की उपेक्षा, तथा अपारदर्शी प्रक्रिया सार्वजनिक सुविधाओं की प्रदायगी में समस्याएँ उत्पन्न करते हैं।

प्रभाव:

- जनता को निर्धारित सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं।
- भ्रष्टाचार के कारण विकासात्मक बजट का बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाता है।
- भ्रष्टाचार के कारण जनता का सरकारी संस्थाओं पर विश्वास कम हो जाता है।

(3) **अनियोजित नगरीय जनसंख्या में वृद्धि:** तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या और अनियोजित नगरीय बस्तियाँ अवसंरचना पर दबाव डालती हैं, जिससे सार्वजनिक सेवाओं में व्यवधान उत्पन्न होता है।

प्रभाव:

- यातायात की समस्याएँ, जल और विद्युत की कमी, तथा स्वच्छता में गिरावट।
- सरकारी विद्यालयों और अस्पतालों में क्षमता से अधिक रोगियों और छात्रों का दबाव।
- अव्यवस्थित नगरीय नियोजन के कारण जल-निकासी, आवास तथा मूलभूत सुविधाओं में कठिनाइयाँ।

(4) **ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में सुविधाओं का असंतुलन:** ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाएँ जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा तथा रोज़गार के अवसर कम होते हैं, जिससे नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में उल्लेखनीय अंतर उत्पन्न हो जाता है।

प्रभाव:

- ग्रामीण जनता को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त करने हेतु नगरों का रुख करना पड़ता है।
- नगरों में जनसंख्या का दबाव बढ़ता है, जो अतिरिक्त समस्याओं को जन्म देता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों का विकास मंद गति का शिकार हो जाता है।

(5) **जन-जागरूकता और पारदर्शिता का अभाव:** अनेक सार्वजनिक सेवाओं से लोग अनभिज्ञ होते हैं, जिस कारण वे सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते।

प्रभाव:

- पात्र व्यक्तियों तक सरकारी सुविधाएँ नहीं पहुँच पातीं।
- नौकरशाही और बिचौलियों (Middlemen) का अनावश्यक हस्तक्षेप बढ़ जाता है।
- जन-अविश्वास बढ़ता है और लोग वैकल्पिक अनौपचारिक साधनों पर निर्भर होने लगते हैं।

(6) **केंद्र और राज्य के मध्य अधिकारों का विभाजन:** कई बार केंद्र और राज्य सरकारों के मध्य संसाधनों और अधिकारों के विभाजन को लेकर विवाद उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे सार्वजनिक सेवाओं में बाधा आती है।

प्रभाव:

- विकासात्मक परियोजनाएँ राजनीतिक खींचतान का शिकार हो जाती हैं।
- बजट की स्वीकृति और निधियों के जारी होने में विलंब होता है।
- जन-कल्याण नीतियों का क्रियान्वयन कमज़ोर हो जाता है।

(7) **पर्यावरणीय और प्राकृतिक चुनौतियाँ:** प्राकृतिक आपदाएँ जैसे बाढ़, भूकंप तथा सूखा सार्वजनिक सेवाओं की प्रदायगी को प्रभावित कर सकती हैं। पर्यावरणीय प्रदूषण तथा जलवायु परिवर्तन भी अवसंरचना और संसाधनों पर दबाव डालते हैं।

प्रभाव:

- स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में वृद्धि होती है, जैसे प्रदूषण के कारण बीमारियाँ बढ़ जाती हैं।
- मूलभूत सुविधाएँ जैसे जल, विद्युत तथा परिवहन प्रभावित होते हैं।

- आपदाओं के परिणामस्वरूप विकासात्मक परियोजनाएँ प्रभावित होती हैं और पुनर्वास कार्यों में विलंब होता है।

▪ आपदाओं और आपातकालीन स्थितियों में सहयोग

1. प्राकृतिक आपदाओं और राष्ट्रीय संकटों में केंद्र और राज्यों के मध्य सहयोग

केंद्र और राज्यों के मध्य सहयोग की प्रभावी व्यवस्था किसी भी प्राकृतिक आपदा अथवा राष्ट्रीय संकट के दौरान त्वरित और समन्वित प्रतिक्रिया हेतु आवश्यक होती है। भारतीय संविधान में आपदा प्रबंधन को राज्य सरकारों का मूल उत्तरदायित्व घोषित किया गया है, परंतु राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग के बिना प्रभावी कदम संभव नहीं।

(1) संवैधानिक और विधिक ढाँचा: आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) तथा राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (SDMA) की स्थापना की गई। सातवीं अनुसूची के अनुसार, लोक स्वास्थ्य और स्थानीय प्रशासन राज्य सरकार का उत्तरदायित्व है, जबकि बड़े स्तर के संकटों में केंद्र हस्तक्षेप कर सकता है।

(2) प्राकृतिक आपदाओं के दौरान सहयोग के स्वरूप

- **वित्तपोषण और वित्तीय सहायता:**
  - केंद्र राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि (NDRF) से राज्यों को निधि प्रदान करता है।
  - राज्य राज्य आपदा अनुक्रिया निधि (SDRF) के माध्यम से स्थानीय स्तर पर कार्य करते हैं।
  - भूकंप, बाढ़, चक्रवात, सूखा आदि के दौरान राज्य केंद्रीय सहायता की माँग कर सकते हैं।
- **बचाव और राहत अभियान:**
  - प्राकृतिक आपदाओं में राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया बल (NDRF) तत्काल कार्रवाई करता है।
  - राज्य सरकारें राज्य पुलिस, अग्निशमन दल, तथा स्थानीय एजेंसियों को सक्रिय करती हैं।
  - सेना और अर्धसैनिक बलों को भी आपातकालीन आधार पर तैनात किया जा सकता है।
- **पूर्व चेतावनी प्रणाली और योजना:**
  - भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (IMD), राष्ट्रीय भूकंपविज्ञान केंद्र तथा अन्य संस्थाएँ मौसम और भूकंप की पूर्वानुमान कर राज्य सरकारों को समय पर सूचना देते हैं।
  - बाढ़ प्रबंधन हेतु केंद्रीय जल आयोग (CWC) राज्यों के साथ मिलकर कार्य करता है।
  - तूफानों के दौरान भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केंद्र (INCOIS) सूचनाएँ प्रदान करता है।
- **दीर्घकालिक कदम और पुनर्वास:**

- प्राकृतिक आपदाओं के पश्चात अवसंरचना (Infrastructure) की बहाली हेतु केंद्र और राज्य संयुक्त परियोजनाएँ तैयार करते हैं।
- राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर नीति-निर्माण जैसे स्मार्ट सिटीज़ मिशन में आपदा-सुरक्षित योजना को सम्मिलित किया गया है।
- NDMA और SDMA आपदाओं से निपटने की योजनाएँ तैयार करते हैं ताकि भविष्य में हानि कम हो।

(3) **राष्ट्रीय संकटों में केंद्र-राज्य सहयोग**

- **महामारी और लोक स्वास्थ्य संकट:**
  - कोविड-19 जैसी महामारी के दौरान केंद्रीय और राज्य सरकारों ने टीकाकरण अभियान, लॉकडाउन नीति, तथा चिकित्सा सहायता में सहयोग किया।
  - राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM) के अंतर्गत केंद्र ने राज्यों को निधि और संसाधन प्रदान किए।
- **सुरक्षा और आतंकवाद संबंधी संकट:**
  - नक्सली हिंसा अथवा आतंकवादी हमलों में केंद्र और राज्यों के मध्य गुप्तचर सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है।
  - राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (NIA) और केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल (CAPF) राज्य पुलिस के साथ मिलकर कार्रवाई करते हैं।
- **आर्थिक संकट और कृषि आपदाएँ:**
  - सूखे और फसलों की तबाही के दौरान केंद्र प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से राज्यों को सहायता प्रदान करता है।
  - अर्थव्यवस्था में संकट की स्थिति में केंद्र और राज्य जीएसटी परिषद के माध्यम से वित्तीय नीतियों पर परामर्श करते हैं।

2. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) और राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (SDMA) की भूमिका

भारत में प्राकृतिक आपदाओं और अन्य आपातकालीन स्थितियों से निपटने हेतु आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) तथा राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (SDMA) की स्थापना की गई थी। इन संस्थाओं का उद्देश्य आपदाओं की रोकथाम, तैयारी, प्रतिक्रिया, तथा पुनर्वास हेतु प्रभावी रणनीति तैयार करना और उसे क्रियान्वित करना है।

(1) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) की भूमिका: NDMA भारत में आपदाओं से निपटने हेतु केंद्रीय स्तर पर नीति-निर्माण और रणनीति की उत्तरदायी प्राधिकरण है। यह सीधे प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है।

NDMA के प्रमुख कर्तव्य और भूमिका:

- **नीति-निर्माण और योजना:**
  - राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति (NPDM) का निर्माण और क्रियान्वयन।
  - विभिन्न आपदाओं (भूकंप, बाढ़, चक्रवात, महामारी, औद्योगिक दुर्घटनाएँ आदि) से निपटने हेतु विशिष्ट दिशा-निर्देश तैयार करना।
  - राज्यों को आपदा प्रबंधन की बेहतर योजना हेतु तकनीकी और वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- **आपदा राहत और अनुक्रिया कार्रवाई:**
  - राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया बल (NDRF) का नेतृत्व और परिचालन निर्देश।
  - केंद्रीय और राज्य संस्थाओं के साथ समन्वय के माध्यम से बचाव अभियानों में सहायता प्रदान करना।
  - सेना, अर्धसैनिक बलों, तथा अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर राहत कार्रवाइयों को प्रभावी बनाना।
- **पूर्व चेतावनी प्रणाली और जन-जागरूकता:**
  - मौसमीय और भूकंप की चेतावनी हेतु भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (IMD), भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केंद्र (INCOIS), तथा केंद्रीय जल आयोग (CWC) जैसी संस्थाओं के साथ सहयोग।
  - विद्यालयों, महाविद्यालयों, तथा स्थानीय स्तर पर जन-जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन।
  - आपातकालीन चेतावनी प्रणाली, मोबाइल ऐप्स, तथा संचार माध्यमों से समय पर सूचनाओं का प्रसारण।
- **पुनर्वास और पुनर्निर्माण:**
  - आपदा-प्रभावित क्षेत्रों में अवसंरचना (सड़कें, मकान, विद्यालय, अस्पताल) की बहाली की योजनाएँ।
  - पीड़ितों हेतु वित्तीय सहायता तथा पुनर्वास पैकेजों की घोषणा।
  - राज्यों को पुनर्वास प्रक्रिया में तकनीकी तथा वित्तीय सहायता प्रदान करना।

अनुसंधान और तकनीक का संवर्धन:

  - भूकंप, बाढ़, तथा अन्य आपदाओं के अनुसंधान हेतु संस्थानों के साथ साझेदारी।
  - ड्रोन, उपग्रह इमेजिंग, तथा अन्य तकनीकों का प्रयोग कर आपदाओं की पूर्व निगरानी और प्रतिक्रिया को बेहतर बनाना।

- आपदा-प्रतिरोधी अवसंरचना के संवर्धन हेतु योजनाएँ।

(2) **राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (SDMA) की भूमिका:** SDMA राज्य स्तर पर आपदाओं से निपटने हेतु राज्य सरकार के अधीन एक स्वायत्त संस्था होती है। इसका नेतृत्व राज्य के मुख्यमंत्री करते हैं और इसके अधिकार-क्षेत्र में राज्य के समस्त ज़िले तथा स्थानीय सरकारें आती हैं।

SDMA के प्रमुख कर्तव्य और भूमिका:

- **राज्य स्तर पर नीति और योजना:**
  - राज्य में प्राकृतिक आपदाओं के संभावित जोखिमों की पहचान तथा उसके अनुरूप आपदा प्रबंधन योजना तैयार करना।
  - राज्य एजेंसियों, ज़िला प्रशासन, तथा स्थानीय सरकारों के साथ मिलकर सुरक्षात्मक कदमों को सुनिश्चित करना।
  - NDMA की नीतियों के अनुरूप राज्य स्तर पर व्यावहारिक रणनीति तैयार करना।
- **राज्य आपदा अनुक्रिया बल (SDRF) का नेतृत्व:**
  - SDMA के अंतर्गत राज्य स्तर पर गठित राज्य आपदा अनुक्रिया बल (SDRF) कार्य करता है, जो किसी भी आपातकालीन स्थिति और आपदा स्थल पर तत्काल कार्रवाई करने हेतु उत्तरदायी होता है।
  - यह बल स्थानीय पुलिस, अग्निशमन दल, होम गार्ड्स, तथा अन्य ज़िला प्रशासनिक संस्थाओं के साथ मिलकर बचाव और राहत अभियानों की निगरानी करता है।
- **आपदा चेतावनी प्रणाली और जन-जागरूकता:**
  - राज्य के भीतर भूकंप, बाढ़, चक्रवात, तथा अन्य आपदाओं की समय पर सूचना देने हेतु चेतावनी प्रणाली की स्थापना।
  - स्थानीय स्तर पर समुदायों का प्रशिक्षण तथा विद्यालयों में आपदा प्रबंधन अभ्यासों (drills) का आयोजन।
- **पुनर्वास और राहत निधि का प्रबंधन:**
  - राज्य आपदा अनुक्रिया निधि (SDRF) के माध्यम से प्रभावित क्षेत्रों में राहत कार्रवाइयाँ।
  - अवसंरचना (पुल, सड़कें, मकान, अस्पताल) की तत्काल मरम्मत तथा पुनर्निर्माण की योजनाएँ।
  - पीड़ितों हेतु वित्तीय सहायता तथा पुनर्वास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।

- **ज़िला स्तर पर कदम:**
    - प्रत्येक राज्य में ज़िला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (DDMA) कार्य करता है जो ज़िला मजिस्ट्रेट के अधीन होता है।
    - स्थानीय सरकारों, पंचायतों, तथा नगर निगमों के माध्यम से मूल स्तर पर आपदाओं से निपटने के कदम।

NDMA और SDMA के मध्य समन्वय

NDMA और SDMA के मध्य समन्वय आवश्यक है ताकि राज्य सरकारों को केंद्रीय स्तर पर नीतियों तथा संसाधनों की सहायता प्राप्त हो सके। इनके मध्य सहयोग के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं:

1. राष्ट्रीय और राज्य आपदा प्रबंधन योजनाओं में सहभागिता
2. प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान और बचाव हेतु डेटा साझाकरण
3. राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया बल (NDRF) और राज्य आपदा अनुक्रिया बल (SDRF) के मध्य संयुक्त अभ्यास
4. वित्तीय सहायता तथा पुनर्वास योजनाओं में केंद्र और राज्य के मध्य सहयोग
5. अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नीति को अद्यतन करने में सहभागिता

महामारियों जैसे कोविड-19 में संयुक्त कदम

महामारी जैसी आपातकालीन स्थितियों में केंद्रीय और राज्य सरकारों के मध्य समन्वय अत्यंत आवश्यक होता है ताकि जनता के स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, तथा दैनिक जीवन पर न्यूनतम प्रभाव पड़े। कोविड-19 एक वैश्विक महामारी थी जिसका सामना भारत सहित संपूर्ण विश्व ने किया, और इस दौरान केंद्र और राज्यों के मध्य विभिन्न स्तरों पर सहयोग देखने को मिला।

1. **नीति-निर्माण और विधिक कदम**

- **आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत केंद्रीय स्तर पर कदम:**
    - केंद्र सरकार ने मार्च 2020 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत कोविड-19 को राष्ट्रीय आपदा घोषित किया, जिससे केंद्र को देशव्यापी कदमों का अधिकार प्राप्त हुआ।
    - राष्ट्रीय कार्यकारी समिति (NEC) ने राज्यों हेतु दिशा-निर्देश जारी किए।

- विभिन्न लॉकडाउन चरणों का क्रियान्वयन तथा राज्यों हेतु विशिष्ट निर्देश निर्धारित किए गए।

- **राज्य स्तर पर व्यावहारिक कदम:**
  - राज्यों को अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप लॉकडाउन तथा कर्फ्यू लागू करने का अधिकार दिया गया।
  - लोक स्वास्थ्य राज्य सूची का विषय होने के कारण, प्रत्येक राज्य ने अपने स्तर पर अस्पतालों, क्वारंटीन केंद्रों, तथा स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि की।

2. **स्वास्थ्य क्षेत्र में सहयोग**

- **टीकाकरण कार्यक्रम: 'कोविड-19 टीका अभियान':**
  - केंद्र ने टीका निर्माता कंपनियों को वित्तीय तथा शोध सहायता प्रदान की (जैसे कोविशील्ड और कोवैक्सीन)।
  - टीके के वितरण हेतु को-विन (Co-WIN) पोर्टल बनाया गया, जिसके माध्यम से राज्यों में टीकाकरण की प्रभावी व्यवस्था स्थापित की गई।
  - राज्यों ने स्थानीय स्तर पर टीकाकरण शिविर स्थापित किए और जनता को जागरूक किया।
- **अस्पतालों और चिकित्सा सुविधाओं में सुधार:**
  - केंद्र सरकार ने ऑक्सीजन एक्सप्रेस, DRDO अस्पताल, तथा अस्थायी ICU की व्यवस्था की।
  - राज्यों ने स्थानीय अस्पतालों में बेड, वेंटिलेटर, तथा ऑक्सीजन सिलेंडरों की उपलब्धता सुनिश्चित की।
  - निजी और सरकारी अस्पतालों के मध्य सहयोग के अंतर्गत परीक्षण, टीकाकरण, तथा उपचार केंद्र स्थापित किए गए।
- **औषधियों और चिकित्सा उपकरणों का वितरण:**
  - केंद्र सरकार ने राज्यों को रेमडेसिविर, फेविपिराविर, तथा अन्य आवश्यक औषधियाँ प्रदान कीं।
  - राज्यों ने स्थानीय स्तर पर औषधियों के वितरण तथा मूल्यों पर नियंत्रण रखा ताकि कालाबाज़ारी को रोका जा सके।

3. **अर्थव्यवस्था और वित्तीय सहायता में सहयोग**

- **केंद्र सरकार के राहत पैकेज:**
  - प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना के अंतर्गत निर्धनों को निःशुल्क राशन तथा वित्तीय सहायता प्रदान की गई।

- एमएसएमई (MSME) क्षेत्र हेतु 3 लाख करोड़ का आर्थिक पैकेज दिया गया ताकि व्यवसाय पुनर्जीवित हो सकें।
- राज्यों को आपदा राहत निधि (SDRF) के माध्यम से अतिरिक्त बजट दिया गया।

- **राज्य सरकारों की जन-कल्याणकारी योजनाएँ:**
  - अनेक राज्यों ने बेरोज़गार श्रमिकों हेतु नकद हस्तांतरण तथा निःशुल्क राशन योजनाएँ आरंभ कीं।
  - कुछ राज्यों ने प्रवासी श्रमिकों हेतु विशेष रेलगाड़ियाँ तथा बसें प्रदान कीं।
  - किसानों को वित्तीय सहायता तथा सब्सिडी प्रदान की गई।

4. **आवागमन और लॉकडाउन संबंधी कदम**

- **अंतर-राज्यीय यात्रा प्रतिबंध तथा आवागमन की निगरानी:**
  - केंद्र सरकार ने रेलवे, हवाई यात्रा, तथा अंतर-राज्यीय बस सेवाओं पर प्रतिबंध लगाए और बाद में क्रमशः इनमें छूट दी।
  - राज्यों ने अपनी परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न स्तरों पर लॉकडाउन तथा रात्रि कर्फ्यू लागू किया।
  - प्रवासी श्रमिकों हेतु 'श्रमिक स्पेशल रेलगाड़ियाँ' चलाई गईं ताकि वे अपने घर लौट सकें।
- **ई-पास और ई-गवर्नेंस व्यवस्था:**
  - केंद्र सरकार ने आरोग्य सेतु (Aarogya Setu) ऐप प्रस्तुत किया ताकि प्रभावित व्यक्तियों को ट्रैक किया जा सके।
  - अनेक राज्यों ने ई-पास व्यवस्था लागू की ताकि आवश्यक सेवाओं के कार्मिक सुगमता से यात्रा कर सकें।

5. **जन-जागरूकता और सोशल मीडिया का प्रयोग**

- **केंद्र सरकार के कदम:**
  - 'दो गज़ दूरी, मास्क है ज़रूरी' जैसे अभियान चलाए गए।
  - टेलीविज़न, रेडियो, तथा समाचार-पत्रों के माध्यम से कोविड प्रोटोकॉल की जानकारी दी गई।
- **राज्य सरकारों के कदम:**
  - स्थानीय भाषाओं में जागरूकता अभियान, टेली-कॉलिंग सेवाएँ, तथा स्वयंसेवक समूहों के माध्यम से लोगों का मार्गदर्शन किया गया।
  - स्थानीय स्तर पर गैर-सरकारी संगठनों (NGOs), मस्जिदों, मंदिरों, तथा सामुदायिक केंद्रों के माध्यम से जागरूकता अभियान चलाए गए।

9.2 ग्रामीण एवं शहरी सरकारों का व्यावहारिक अनुप्रयोग

▪ पंचायती राज के सफल मॉडल

भारत में पंचायती राज के अनेक सफल मॉडल सामने आए हैं, जिन्होंने ग्रामीण विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं:

1. **केरल मॉडल:** केरल में पंचायती राज को प्रभावी बनाने हेतु जन योजना अभियान (People's Plan Campaign) आरंभ किया गया, जिसके अंतर्गत स्थानीय सरकारों को अधिक स्वायत्तता प्रदान की गई। विकासात्मक योजना-निर्माण में जन-सहभागिता को बढ़ावा दिया गया। वित्तीय संसाधनों और योजना-निर्माण का 40 प्रतिशत हिस्सा पंचायतों को सौंपा गया। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा मूलभूत सुविधाओं में सुधार लाया गया।
2. **कर्नाटक मॉडल:** कर्नाटक में अशोक मेहता समिति की सिफारिशों के अंतर्गत 1980 के दशक में पंचायती राज को सुदृढ़ बनाया गया। त्रि-स्तरीय पंचायती व्यवस्था को सक्रिय किया गया। स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि हुई। 'ग्राम सभा' को अधिकार देकर जनता की सहभागिता सुनिश्चित की गई।
3. **महाराष्ट्र मॉडल:** महाराष्ट्र में पंचायती राज के अंतर्गत ज़िला परिषदों (Zilla Parishads) को सुदृढ़ बनाया गया, जिससे विकासात्मक कार्यों में तीव्रता आई। महात्मा गांधी मनरेगा (MGNREGA) जैसी योजनाओं का सफल क्रियान्वयन किया गया। स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास हुआ।
4. **राजस्थान मॉडल:** राजस्थान में पंचायती राज का आरंभ 1959 में नागौर ज़िले से हुआ, तथा बाद में इसे संपूर्ण देश में एक मॉडल के रूप में अपनाया गया। ग्राम सभा को सुदृढ़ बनाकर जन-समस्याओं के त्वरित समाधान पर ध्यान दिया गया। महिलाओं तथा दलितों की प्रतिनिधित्व में वृद्धि की गई। सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit) के माध्यम से पारदर्शिता सुनिश्चित की गई।
5. **मध्य प्रदेश मॉडल:** मध्य प्रदेश ने पंचायती राज को सुदृढ़ बनाने हेतु 'गाँव की सरकार' की अवधारणा प्रस्तुत की। ग्राम पंचायतों को स्वायत्त बनाया गया। ग्रामीण विकास परियोजनाओं में स्थानीय सरकारों की सहभागिता सुनिश्चित की गई। डिजिटल गवर्नेंस तथा पारदर्शिता को बढ़ावा दिया गया।

ये मॉडल भारत में पंचायती राज की सफलता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और अन्य राज्यों हेतु एक आदर्श नमूना प्रस्तुत करते हैं।

पंचायती राज की चुनौतियाँ

यद्यपि भारत में केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, तथा मध्य प्रदेश जैसे सफल पंचायती राज मॉडल सामने आए हैं, तथापि अब भी अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं जो स्थानीय सरकारों के प्रभावी कार्यनिष्पादन में बाधा बनती हैं।

- **वित्तीय संसाधनों की कमी**
    - अधिकांश पंचायतें राज्य और केंद्र सरकार की निधियों पर निर्भर होती हैं, जो प्रायः अपर्याप्त होती हैं।
    - स्थानीय सरकारों को कर वसूली के सीमित अधिकार प्राप्त हैं, जिस कारण वे आत्मनिर्भर नहीं बन पातीं।
    - अनेक राज्यों में बजट के असमान विभाजन के कारण दुर्बल पंचायतें विकासात्मक कार्य प्रभावी ढंग से नहीं कर पातीं।
- **अधिकारों की कमी और राज्य सरकारों का नियंत्रण**
    - राज्य सरकारें प्रायः पंचायती राज के निर्णयों में हस्तक्षेप करती हैं, जिससे स्थानीय स्वायत्तता प्रभावित होती है।
    - सरकारी अधिकारियों को अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं, जबकि निर्वाचित ग्राम पंचायत प्रतिनिधि प्रशासनिक दृष्टि से दुर्बल महसूस करते हैं।
    - अनेक स्थानों पर नौकरशाही का विलंब तथा जटिल नियम-कानून विकासात्मक कार्यों में बाधा बनते हैं।
- **भ्रष्टाचार और पारदर्शिता का अभाव**
    - विकासात्मक निधियों तथा सरकारी योजनाओं में भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद सामान्य समस्याएँ हैं।
    - सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit) तथा पारदर्शिता के कदम हर स्थान पर प्रभावी ढंग से क्रियान्वित नहीं हो रहे।
    - स्थानीय स्तर पर संसाधनों के अन्यायपूर्ण विभाजन के कारण कुछ वर्ग वंचित रह जाते हैं।
- **जन-सहभागिता और जागरूकता की कमी**
    - ग्राम सभा की बैठकों में जनता की सहभागिता कम होती है, जिससे पारदर्शिता और जवाबदेही प्रभावित होती है।
    - सामान्य नागरिकों को सरकारी योजनाओं तथा पंचायती राज के अधिकारों के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं होती, जिस कारण वे अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाते।

- अनेक क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की सीमित शैक्षिक योग्यता के कारण वे अपनी पंचायत के निर्णयों को प्रभावित नहीं कर पाते।

- **महिलाओं और दुर्बल वर्गों की प्रतिनिधित्व संबंधी समस्याएँ**
  - यद्यपि संविधान के अंतर्गत महिलाओं तथा दलितों हेतु आरक्षित स्थान रखे गए हैं, परंतु व्यावहारिक रूप से उन्हें निर्णय-निर्माण में कम अवसर दिए जाते हैं।
  - अनेक स्थानों पर "प्रतिनिधित्व की आड़" (Proxy Representation) की समस्या पाई जाती है, जहाँ महिला प्रतिनिधि केवल नाम की सीमा तक विद्यमान होती हैं और वास्तविक निर्णय उनके पुरुष रिश्तेदार लेते हैं।
- **अवसंरचना और डिजिटल सुविधाओं की कमी**
  - अनेक ग्राम पंचायतों में डिजिटल गवर्नेंस, इंटरनेट, तथा आधुनिक अवसंरचना की कमी पाई जाती है।
  - ऑनलाइन सरकारी सेवाओं तथा योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु तकनीकी दक्षता और संसाधनों की कमी एक बड़ी चुनौती है।
  - ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं (सड़कें, बिजली, पानी) की कमी पंचायती राज के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा बनती है।

▪ नगर निगमों और नगरपालिका समितियों का कार्यनिष्पादन

भारत में नगरीय सरकारों की व्यवस्था मूलतः नगर निगमों (Municipal Corporations) तथा नगरपालिका समितियों (Municipal Councils/Committees) से मिलकर बनी है। इन संस्थाओं का उद्देश्य नगरीय क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं की प्रदायगी, विकासात्मक योजना-निर्माण, तथा नगरीय प्रशासन को बेहतर बनाना है। विभिन्न शहरों में इनका कार्यनिष्पादन भिन्न-भिन्न रहा है, कुछ उल्लेखनीय सफल उदाहरण तथा सामने आने वाली चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं:

1. नगर निगमों का कार्यनिष्पादन

नगर निगम बड़े शहरों में नगरीय सुविधाओं का प्रबंधन संभालते हैं और अनेक सफल मॉडल सामने आए हैं:

1) **इंदौर नगर निगम (मध्य प्रदेश)**

- निरंतर स्वच्छता सर्वेक्षण पुरस्कार (Swachh Survekshan Awards) जीतने वाला भारत का सबसे स्वच्छ शहर।
- कचरे के प्रभावी प्रबंधन हेतु 3R मॉडल (Reduce, Reuse, Recycle) का सफल क्रियान्वयन।
- नगरीय विकास हेतु सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP Model) को बढ़ावा देना।

2) **सूरत नगर निगम (गुजरात)**

- स्मार्ट सिटी परियोजना के अंतर्गत आधुनिक तकनीक का प्रयोग।
- नगरीय सुविधाओं, यातायात प्रबंधन, तथा आपदाओं के विरुद्ध प्रभावी योजना-निर्माण।
- स्वच्छता, लोक स्वास्थ्य तथा अवसंरचना में उल्लेखनीय सुधार।

3) **पुणे नगर निगम (महाराष्ट्र)**

- डिजिटल गवर्नेंस हेतु GIS (Geographic Information System) का प्रयोग।
- नगरीय यातायात तथा परिवहन हेतु बस रैपिड ट्रांज़िट प्रणाली (BRTS) का क्रियान्वयन।
- नागरिकों की सहभागिता बढ़ाने हेतु ऑनलाइन पोर्टल तथा ई-गवर्नेंस का प्रभावी प्रयोग।

चुनौतियाँ

- वित्तीय संसाधनों की कमी, जिस कारण अनेक विकासात्मक परियोजनाएँ अधूरी रह जाती हैं।
- अनियोजित नगरीय बस्तियाँ, जिनके कारण नगरीय अवसंरचना पर अनावश्यक दबाव बढ़ रहा है।

- भ्रष्टाचार तथा अपर्याप्त गवर्नेंस, जिसके परिणामस्वरूप विकासात्मक कार्यों में बाधा आती है।

2. नगरपालिका समितियों का कार्यनिष्पादन

भारत में नगरपालिका समितियाँ (अथवा बल्दिया) सामान्यतः छोटे और मध्यम स्तर के शहरों अथवा कस्बों (जिनकी जनसंख्या सामान्यतः 25,000 से 3 लाख के मध्य होती है) में नगरीय सरकार का उत्तरदायित्व संभालती हैं।

1) **कराड नगरपालिका परिषद (महाराष्ट्र)**

- यह परिषद देश भर के छोटे शहरों की श्रेणी में 'स्वच्छ सर्वेक्षण' (Swachh Survekshan) में निरंतर अग्रणी स्थान पर रही है।
- इसने कचरे के 100% पृथक्करण (Segregation) तथा गीले कचरे से जैविक खाद बनाने की उत्कृष्ट व्यवस्था स्थापित की है।

2) **पालवंचा नगरपालिका परिषद (तेलंगाना)**

- पेयजल आपूर्ति तथा पर्यावरण-अनुकूल कदमों में उत्कृष्ट कार्यनिष्पादन।
- परिषद ने 'मिशन भागीरथ' के अंतर्गत प्रत्येक घर तक स्वच्छ पेयजल पहुँचाया तथा सार्वजनिक स्थलों पर बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण (Greenery) को बढ़ावा दिया।

3) **विनुकोंडा नगरपालिका परिषद (आंध्र प्रदेश)**

- डिजिटल गवर्नेंस तथा कर वसूली में पारदर्शिता।
- परिषद ने नगरीय सेवाओं, जैसे संपत्ति कर के भुगतान तथा जन्म व मृत्यु प्रमाणपत्रों को पूर्णतः ऑनलाइन तथा सुगम बना दिया है।

चुनौतियाँ

- **सीमित वित्तीय संसाधन:** बड़े शहरों (नगर निगमों) की तुलना में इन समितियों के अपने आय के साधन अत्यंत सीमित होते हैं, जिस कारण ये निधियों हेतु पूर्णतः राज्य सरकारों पर निर्भर करती हैं और विकासात्मक कार्यों में विलंब होता है।

- **प्रशासनिक तथा तकनीकी क्षमताओं की कमी:** छोटे शहरों में आधुनिक तकनीक (जैसे GIS मैपिंग अथवा स्मार्ट अपशिष्ट प्रबंधन) संचालित करने हेतु विशेषज्ञ स्टाफ की कमी तथा नौकरशाही की सुस्ती एक बड़ी समस्या है।
- **जन-सहभागिता का अभाव:** वार्ड समितियों के सक्रिय न होने के कारण स्थानीय नीति-निर्माण में सामान्य नागरिकों की राय सम्मिलित नहीं हो पाती, जिससे गली-मोहल्लों की वास्तविक समस्याओं के समाधान में कठिनाई होती है।

▪ स्थानीय सरकारों की व्यावहारिक समस्याएँ और उनके समाधान के प्रयास

स्थानीय सरकारें किसी भी देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था की मूल इकाई होती हैं। इनका मूल उद्देश्य नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जन-सुविधाएँ प्रदान करना, विकासात्मक योजनाओं का क्रियान्वयन तथा स्थानीय स्तर पर गवर्नेंस को प्रभावी बनाना है। तथापि, भारत में स्थानीय सरकारों को अनेक व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिस कारण इनकी कार्यक्षमता प्रभावित होती है। सरकार तथा विभिन्न संस्थाएँ इन समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न कदम भी उठा रही हैं।

स्थानीय सरकारों की व्यावहारिक समस्याएँ

1. **वित्तीय संसाधनों की कमी:** स्थानीय सरकारों हेतु संसाधनों की सबसे बड़ी बाधा निधियों की कमी है। कर वसूली की व्यवस्था अप्रभावी होने के कारण स्थानीय सरकारें राज्य तथा केंद्र सरकार के अनुदानों पर निर्भर रहती हैं। अनेक विकासात्मक परियोजनाएँ निधियों की अनुपलब्धता के कारण पूर्ण नहीं हो पातीं।
2. **अधिकारों की सीमितता:** स्थानीय सरकारों के पास स्वायत्त रूप से निर्णय लेने का अधिकार सीमित होता है। अनेक महत्वपूर्ण मामलों में राज्य तथा केंद्र सरकार का हस्तक्षेप होता है, जिससे स्थानीय स्तर पर निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। अधिकारों के स्पष्ट विभाजन के अभाव में विकासात्मक परियोजनाओं में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।
3. **भ्रष्टाचार और अपर्याप्त गवर्नेंस:** स्थानीय सरकारों में पारदर्शिता तथा जवाबदेही का अभाव प्रायः भ्रष्टाचार का कारण बनता है। निधियों के दुरुपयोग, रिश्वतखोरी, तथा भाई-भतीजावाद जैसी समस्याएँ पाई जाती हैं। विकासात्मक परियोजनाएँ प्रायः भ्रष्टाचार के कारण विलंबित हो जाती हैं।
4. **अनियोजित नगरीय विकास:** बड़े शहरों में अव्यवस्थित विकास के कारण अवसंरचना पर दबाव बढ़ गया है। अनियोजित बस्तियाँ, यातायात की समस्याएँ, तथा अपर्याप्त नगरीय सुविधाएँ नगरीय सरकारों हेतु बड़ी चुनौतियाँ हैं। पर्यावरण तथा जल-निकासी की समस्याएँ भी इसी का परिणाम हैं।
5. **तकनीकी और प्रशासनिक कमियाँ:** अनेक स्थानीय सरकारों में आधुनिक ई-गवर्नेंस तथा डिजिटल प्रबंधन व्यवस्था का अभाव है। नगरपालिका अधिकारियों तथा स्टाफ के प्रशिक्षण तथा तकनीकी दक्षता में कमी भी समस्याओं को जन्म देती है। जन-शिकायतों के निवारण हेतु कोई प्रभावी व्यवस्था विद्यमान नहीं होती।

इन समस्याओं के समाधान के प्रयास

(1) वित्तीय संसाधनों में सुधार

- **सरकारी कदम:**
    - 73वें तथा 74वें संवैधानिक संशोधनों के पश्चात स्थानीय सरकारों को प्रत्यक्ष वित्तीय संसाधन प्रदान किए गए।
    - वित्त आयोग (Finance Commission) की सिफारिशों के अंतर्गत स्थानीय संस्थाओं को अनुदान प्राप्त होते हैं।
    - संपत्ति कर तथा अन्य नगरीय करों की व्यवस्था को बेहतर बनाया जा रहा है।

(2) स्थानीय सरकारों को अधिक अधिकार प्रदान करना

- **राज्य तथा केंद्र सरकारों की ओर से सुधार:**
    - अधिकारों के विकेंद्रीकरण (Decentralization) की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु नीति-निर्माण किया जा रहा है।
    - अनेक राज्यों में स्थानीय सरकारों को प्रत्यक्ष रूप से विकासात्मक योजनाएँ बनाने का अधिकार दिया जा रहा है।
    - नगर विकास योजना (CDP) के अंतर्गत नगरीय सरकारों को सशक्त बनाया जा रहा है।

(3) भ्रष्टाचार के उन्मूलन हेतु पारदर्शिता

- **जवाबदेही व्यवस्था में सुधार:**
    - सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI Act) के अंतर्गत जनता को स्थानीय सरकारों के निर्णयों तक पहुँच प्राप्त हो रही है।
    - ऑनलाइन लोक गवर्नेंस व्यवस्थाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं ताकि वित्तीय मामलों में पारदर्शिता बनाए रखी जा सके।
    - लोकायुक्त (Lokayukta) तथा सतर्कता आयोग जैसी संस्थाएँ स्थानीय सरकारों में भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई कर रही हैं।

(4) नगरीय योजना-निर्माण में सुधार

- **योजना-निर्माण संबंधी कदम:**

- “स्मार्ट सिटीज़ मिशन” के अंतर्गत आधुनिक नगरीय योजना-निर्माण को बढ़ावा दिया जा रहा है।
- GIS (Geographic Information System) तथा अन्य आधुनिक तकनीकों को नगरीय योजना-निर्माण में सम्मिलित किया जा रहा है।
- अनियोजित बस्तियों के विकास हेतु नगरीय नवीनीकरण परियोजनाएँ (Urban Renewal Projects) आरंभ की जा रही हैं।

(5) प्रशासनिक क्षमताओं में सुधार

- **अधिकारियों का प्रशिक्षण तथा ई-गवर्नेंस का संवर्धन:**
  - “ई-गवर्नेंस” तथा डिजिटल सेवाओं के संवर्धन हेतु अनेक परियोजनाएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं।
  - नगरपालिका अधिकारियों तथा स्टाफ के प्रशिक्षण हेतु राष्ट्रीय नगरीय मामलों संस्थान (NIUA) जैसी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं।
  - जन-शिकायतों के निवारण हेतु ऑनलाइन पोर्टल तथा मोबाइल एप्लिकेशन प्रस्तुत किए गए हैं।

▪ ग्रामीण और शहरी सरकारों के मध्य सहयोग के उदाहरण

ग्रामीण और नगरीय (शहरी) सरकारें किसी भी देश की स्थानीय गवर्नेंस का अनिवार्य अंग हैं। यद्यपि इनका कार्यक्षेत्र तथा अधिकार-क्षेत्र भिन्न होता है, तथापि अनेक मामलों में इनके मध्य सहयोग तथा समन्वय आवश्यक होता है ताकि राष्ट्रीय विकास सुनिश्चित किया जा सके। भारत में पंचायती राज तथा नगरपालिका गवर्नेंस के मध्य विभिन्न स्तरों पर सहयोग के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

1. मूलभूत सुविधाओं की प्रदायगी में सहयोग

- **संयुक्त विकासात्मक परियोजनाएँ:**
  - ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में जल, विद्युत, स्वच्छता, तथा लोक स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं हेतु संयुक्त परियोजनाएँ तैयार की जाती हैं।
  - अनेक राज्यों में जल-विभाजन तथा जल-निकासी व्यवस्था में ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों का सहयोग देखा जाता है।
  - ज़िला विकास समितियाँ (District Development Committees) ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों को परस्पर संबद्ध रखती हैं।
- **परिवहन और अवसंरचना:**
  - ग्रामीण सड़कों को नगरीय सड़कों से जोड़ने हेतु परियोजनाएँ तैयार की जाती हैं।
  - बस तथा रेल सेवाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों को नगरीय केंद्रों से जोड़ा जाता है ताकि रोज़गार तथा आर्थिक विकास के अवसर उत्पन्न किए जा सकें।
  - प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना जैसी परियोजनाएँ ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों के मध्य सहयोग का उदाहरण हैं।

2. अर्थव्यवस्था और वाणिज्यिक गतिविधियों में सहयोग

- **कृषि उत्पादन और नगरीय मंडियों का संबंध:**
  - ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन हेतु नगरीय मंडियों की भूमिका महत्वपूर्ण है, जहाँ किसान अपनी उपज बेचते हैं।
  - मंडी बोर्ड तथा कृषि मंडियाँ (Agricultural Market Boards) ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों के सहयोग से संचालित होती हैं।
  - ई-नाम (e-NAM) प्लेटफॉर्म के माध्यम से किसानों को देश भर के क्रेताओं से जोड़ा जा रहा है।

- **ग्रामीण उद्योगों का विकास:**
    - स्वरोज़गार योजनाएँ (Self-Employment Schemes) जैसे मुद्रा योजना ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देने हेतु नगरीय सरकारों के साथ मिलकर कार्य कर रही हैं।
    - दस्तकारी तथा लघु व्यवसायों को नगरीय केंद्रों में बढ़ावा देने हेतु नगर निगम तथा ग्रामीण संस्थाएँ संयुक्त कदम उठाती हैं।

3. पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन

- **संयुक्त पर्यावरणीय परियोजनाएँ:**
    - वनों के संरक्षण, स्वच्छ जल की उपलब्धता, तथा कचरे के पुनर्चक्रण हेतु ग्रामीण तथा नगरीय सरकारें संयुक्त परियोजनाएँ तैयार करती हैं।
    - नगरीय अपशिष्ट को ग्रामीण क्षेत्रों में खाद में परिवर्तित करने की परियोजनाएँ (Composting Units) पर्यावरणीय स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।
    - नदियों तथा झीलों की सफाई की परियोजनाओं में ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों का सहयोग होता है, जैसे "नमामि गंगे कार्यक्रम"।
- **जलवायु परिवर्तन से निपटने के कदम:**
    - नगरीय प्रदूषण के प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों पर भी पड़ते हैं, अतः पर्यावरण संरक्षण हेतु संयुक्त नीतियाँ अपनाई जाती हैं।
    - ग्रीन बेल्ट्स (Green Belts) तथा नगरीय कृषि जैसी परियोजनाएँ ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों के सहयोग से संचालित की जा रही हैं।

4. स्वास्थ्य और शिक्षा में सहयोग

- **मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएँ:**
    - ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों (PHCs) तथा नगरीय अस्पतालों के मध्य रोगी-रेफरल प्रणाली को प्रभावी बनाया जा रहा है।
    - टेलीमेडिसिन सेवाएँ ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।
    - आशा (ASHA) तथा आंगनवाड़ी कार्यक्रम नगरीय तथा ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने में सरकारों के सहयोग का उदाहरण हैं।
- **शिक्षा और कौशल विकास:**
    - ग्रामीण छात्रों हेतु नगरीय शैक्षिक संस्थानों में छात्रवृत्ति तथा प्रवेश की सुविधा प्रदान की जा रही है।

- ग्रामीण कौशल विकास केंद्र (Skill Development Centers) नगरीय उद्योगों से जोड़ने में सहायता करते हैं।
- ऑनलाइन शिक्षा तथा डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से ग्रामीण छात्रों को नगरीय शिक्षा व्यवस्था से जोड़ा जा रहा है।

5. नीति और गवर्नेंस में सहयोग

- **ज़िला स्तर पर समन्वय:**
  - ज़िला स्तर पर संयुक्त प्रशासनिक समितियाँ ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों को संबद्ध करने में सहायता करती हैं।
  - डिजिटल गवर्नेंस तथा साझा डेटाबेस के माध्यम से विकासात्मक परियोजनाओं की निगरानी की जा रही है।
  - सुशासन कार्यक्रमों जैसे "स्मार्ट गाँव" तथा "स्मार्ट सिटीज़ मिशन" में ग्रामीण तथा नगरीय सरकारें मिलकर कार्य कर रही हैं।
- **विधिक तथा प्रशासनिक स्तर पर सहयोग:**
  - ग्रामीण तथा नगरीय पुलिस का पारस्परिक सहयोग कानून व व्यवस्था बनाए रखने में सहायता करता है।
  - राज्य सरकारें स्थानीय सरकारों की समस्याओं के समाधान हेतु संयुक्त मंच गठित कर रही हैं।
  - पंचायती राज तथा नगरपालिका अधिनियम में संशोधन कर इनके मध्य समन्वय को और सुदृढ़ बनाया जा रहा है।

उपसंहार

1. **संविधान हमारे लिए क्यों महत्वपूर्ण है?**
2. **संविधान को समझने और उसकी सुरक्षा करने का महत्व**

उपसंहार

1. संविधान हमारे लिए क्यों महत्वपूर्ण है?

संविधान हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह देश की नींव है और राज्य की समस्त व्यवस्था का मार्गदर्शन प्रदान करता है। संविधान केवल एक विधिक दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि यह उन सिद्धांतों और नियमों का संग्रह है जो देश के समस्त नागरिकों, सरकारों तथा संस्थाओं की कार्रवाइयों को व्यवस्थित करते हैं। यह देश के लोकतंत्र, न्याय, समानता, तथा स्वतंत्रता को बनाए रखने हेतु एक सुदृढ़ ढाँचा प्रदान करता है।

1) **अधिकारों की सुरक्षा:** संविधान हमारे मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करता है और यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक नागरिक को समानता, स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा अन्य अधिकार प्राप्त हों। संविधान के अंतर्गत दिए गए अधिकार प्रत्येक नागरिक को उनके स्थान, रंग, वंश अथवा धर्म के भेदभाव के बिना समान रूप से प्राप्त होते हैं।
2) **विधिक ढाँचा प्रदान करता है:** संविधान के माध्यम से सरकार की समस्त शाखाओं को निर्धारित किया गया है, अर्थात विधायिका, कार्यपालिका, तथा न्यायपालिका को पृथक-पृथक अधिकार दिए गए हैं ताकि इनमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न हो और प्रत्येक संस्था अपने अधिकार-क्षेत्र में रहकर कार्य करे। संविधान इन संस्थाओं के मध्य संतुलन बनाए रखता है ताकि कोई भी संस्था दूसरे पर हावी न हो और व्यवस्था में स्थिरता बनी रहे।
3) **लोकतंत्र की नींव:** संविधान लोकतंत्र का संरक्षक है। यह जनता की इच्छा को सत्ता प्राप्ति का साधन बनाता है। निर्वाचन के माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है, और संविधान इस संपूर्ण प्रक्रिया को विधि के अनुरूप व्यवस्थित करता है। संविधान के कारण लोकतंत्र में पारदर्शिता तथा समानता बनी रहती है, और जनता के अधिकारों की सुरक्षा होती है।
4) **सामाजिक न्याय का गारंटर:** संविधान सामाजिक न्याय की गारंटी देता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समानता, अधिकार तथा अवसर प्राप्त होते हैं। यह अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों, तथा दुर्बल समूहों के अधिकारों की रक्षा करता है और देश में सांप्रदायिकता तथा असमानता के विरुद्ध कार्य करता है। संविधान की उपस्थिति यह सुनिश्चित करती है कि समस्त व्यक्तियों को समान व्यवहार तथा अवसर प्राप्त हों।
5) **सामाजिक सद्भाव का निर्माण**: संविधान देश के विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक तथा जातीय समूहों के मध्य सद्भाव का वातावरण स्थापित करने में सहायता करता है। यह समस्त नागरिकों को सम्मान, समानता तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों के अंतर्गत एकजुट करता है ताकि विभिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्ति एक सुदृढ़ तथा संबद्ध समाज का निर्माण कर सकें।

6) **संवैधानिक अधिकारों का निर्धारण:** संविधान सरकार के अधिकारों तथा सीमाओं का निर्धारण करता है, ताकि सरकारी संस्थाएँ अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करें। यह एक जाँच एवं संतुलन (Check and Balance) की व्यवस्था प्रदान करता है जिसके माध्यम से शक्ति का संतुलन बनाए रखा जाता है और किसी भी संस्था को निरंकुश कदम उठाने से रोका जाता है।
7) **जागरूकता और उत्तरदायित्वों का निर्धारण:** संविधान प्रत्येक नागरिक को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों से अवगत कराता है, ताकि वे अपने संवैधानिक उत्तरदायित्वों को समझें और देश के कल्याण में सहभागी बनें। नागरिकों को यह ज्ञात होता है कि संविधान के अंतर्गत उनके क्या अधिकार हैं और उनके द्वारा किए गए कदम किस सीमा तक संविधान के अनुरूप हैं।
8) **देश के विकास में सहायता**: संविधान राज्य की विभिन्न संस्थाओं के साथ सहयोग का वातावरण उत्पन्न करता है ताकि देश के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास को व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ाया जा सके। संविधान के कारण सरकार को विकासात्मक परियोजनाओं हेतु रणनीति बनाने, संसाधनों का विभाजन करने, तथा जन-कल्याण कार्यों को विस्तृत करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

संविधान हमारे जीवन का अंग है क्योंकि यह न केवल हमारे अधिकारों की सुरक्षा करता है, बल्कि हमारे देश की अखंडता तथा विकास की नींव भी है। जब हम संविधान के महत्व को समझते हैं और उसके अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं, तब हम एक सुदृढ़, लोकतांत्रिक तथा न्यायप्रिय समाज की स्थापना कर सकते हैं।

2. संविधान को समझने और उसकी सुरक्षा करने का महत्व

संविधान को समझना तथा उसकी सुरक्षा करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि संविधान देश की स्थिरता, न्याय, तथा लोकतंत्र की नींव प्रदान करता है। यदि नागरिक संविधान के महत्व को समझें और उसकी सुरक्षा हेतु सक्रिय रहें, तो वे न केवल अपने अधिकारों का पूर्ण लाभ उठा सकते हैं, बल्कि देश में न्याय तथा विधि के शासन को भी सुदृढ़ बना सकते हैं। संविधान की सुरक्षा तथा उसकी सही व्याख्या देश के विकास, शांति, तथा सद्भाव हेतु आवश्यक हैं।

1) **अधिकारों का सही उपयोग:** संविधान का उद्देश्य नागरिकों को उनके अधिकार प्रदान करना है, और यदि लोग संविधान को समझेंगे तो वे अपने अधिकारों का पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार, जैसे स्वतंत्रता, समानता, तथा सुरक्षा, की समझ से नागरिक अपने अधिकारों हेतु आवाज़ उठा सकते हैं और किसी भी असंवैधानिक कार्य के विरुद्ध प्रतिरोध कर सकते हैं।
2) **संवैधानिक मूल्यों की सुरक्षा:** संविधान की भावना में लोकतंत्र, स्वतंत्रता, तथा न्याय सम्मिलित हैं। यदि नागरिक संविधान की वास्तविक भावना को समझें और उसकी सुरक्षा करें, तो वे उन मूल्यों को संरक्षित रख सकेंगे जो देश के विकास तथा कल्याण हेतु आवश्यक हैं। संविधान की रक्षा करना उन सिद्धांतों की रक्षा करना है जो सामाजिक सद्भाव तथा विधि के शासन को बनाए रखते हैं।
3) **विधिक सुरक्षा का महत्व:** संविधान का उद्देश्य सरकार तथा उसकी संस्थाओं को सीमित करना है ताकि वे शक्ति का दुरुपयोग न करें। यदि नागरिक संविधान को समझेंगे तो वे इस बात की निगरानी कर सकेंगे कि सरकार अपने अधिकारों के भीतर रहकर कार्य करे। संविधान की सुरक्षा यह सुनिश्चित करती है कि सरकार की किसी भी संस्था को निरंकुश कदम उठाने का अवसर न मिले।
4) **सामाजिक न्याय का संवर्धन:** संविधान में विभिन्न वर्गों के अधिकारों की सुरक्षा की गई है, जैसे अल्पसंख्यक समूहों, महिलाओं, दलितों तथा पिछड़े वर्गों के अधिकार। संविधान को समझकर नागरिक इन वर्गों के अधिकारों की रक्षा हेतु आवाज़ उठा सकते हैं, और उनके अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध संवैधानिक तरीके से कदम उठा सकते हैं। संविधान की सुरक्षा सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने हेतु आवश्यक है।
5) **लोकतांत्रिक व्यवस्था की सुदृढ़ता:** संविधान लोकतंत्र की नींव है, और इसकी सुरक्षा लोकतंत्र की सुदृढ़ता हेतु आवश्यक है। यदि नागरिक संविधान के महत्व को समझते हैं और उसके अनुरूप कार्य करते हैं, तो वे लोकतांत्रिक संस्थाओं की सुरक्षा में सहायक सिद्ध होते हैं। संविधान के अंतर्गत निर्वाचन, अधिकारों, तथा सरकार की प्रक्रिया का सम्मान करना लोकतंत्र की सुदृढ़ता हेतु आवश्यक है।
6) **संवैधानिक व्याख्या और उसका मार्गदर्शन:** संविधान की सही व्याख्या करना आवश्यक है ताकि उसकी भावना को संरक्षित रखा जा सके और उसके अनुरूप सरकार की कार्रवाइयाँ संपन्न की जा सकें। यदि

नागरिक संविधान को समझें और उसकी व्याख्या का पालन करें तो वे सरकार की ओर से किसी भी गलत कदम का मुकाबला कर सकते हैं और संविधान की सुरक्षा में सहायता कर सकते हैं।

7) **शांति और व्यवस्था की स्थापना:** संविधान की सुरक्षा से सामाजिक शांति बनी रहती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति संविधान के महत्व को समझे और उसके अनुरूप कार्य करे, तो वह देश में शांति, सुकून, तथा स्थिरता को बढ़ावा दे सकता है। संविधान की सुरक्षा का अर्थ है कि देश में विधि तथा न्याय के शासन को सुनिश्चित किया जाए।

8) **नागरिकों का उत्तरदायित्व:** संविधान को समझना तथा उसकी सुरक्षा करना प्रत्येक नागरिक का उत्तरदायित्व है। यह एक राष्ट्रीय कर्तव्य है जिसके माध्यम से व्यक्ति तथा राज्य के मध्य संबंध सुदृढ़ होता है। जब नागरिक संविधान के महत्व को समझते हैं और उसकी सुरक्षा हेतु कदम उठाते हैं, तब वे अपने देश के विकास तथा समृद्धि में योगदान देते हैं।

संविधान को समझना तथा उसकी सुरक्षा करना केवल एक विधिक अपेक्षा नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक नागरिक का नैतिक कर्तव्य भी है। यह इस बात को सुनिश्चित करता है कि देश में विधि का शासन बना रहे, अधिकार सुरक्षित रहें, तथा लोकतंत्र सुदृढ़ हो। जब हम संविधान के महत्व को समझते हैं और उसकी सुरक्षा करते हैं, तब हम अपने देश के विकास की नींव को सुदृढ़ बनाते हैं और एक न्यायप्रिय समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं।

परिशिष्ट

1. संविधान के भाग, महत्वपूर्ण अनुच्छेदों तथा अनुसूचियों का विवरण
2. महत्वपूर्ण संवैधानिक शब्दावली
3. आगे के अध्ययन हेतु पुस्तकें तथा संसाधन
4. अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड
5. वक्फ़ बोर्ड

परिशिष्ट

1. संविधान के भाग, महत्वपूर्ण अनुच्छेदों तथा अनुसूचियों का विवरण

भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। उस समय संविधान में 395 अनुच्छेद (Articles), 22 भाग (Parts), तथा 8 अनुसूचियाँ (Schedules) सम्मिलित थीं। संविधान को विभिन्न अवसरों पर संशोधनों तथा परिवर्तनों के माध्यम से आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया।

आज (2026) में, भारतीय संविधान में 448 अनुच्छेद, 25 भाग, तथा 12 अनुसूचियाँ विद्यमान हैं। इन संशोधनों के कारण संविधान का दायरा विस्तृत हुआ और इसमें विभिन्न क्षेत्रों का विवरण सम्मिलित किया गया ताकि देश की राजनीतिक, सामाजिक, तथा आर्थिक आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से पूरा किया जा सके।

ये परिवर्तन संविधान की लचीलेपन तथा विकासशील देश की अपेक्षाओं के अनुरूप हैं, ताकि भारत के संविधान की संरचना तथा इसके सिद्धांत जन-हित में सुदृढ़ तथा सुसंगत बने रहें।

(1) **भाग (Parts)**

संविधान के भाग (Parts) वास्तव में संविधान के संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, जो संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों (Articles) को विशिष्ट विषयों अथवा श्रेणियों के अंतर्गत व्यवस्थित करते हैं। ये भाग संविधान की विभिन्न विशेषताओं तथा सिद्धांतों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करते हैं, ताकि संविधान को समझने तथा उसका क्रियान्वयन करने में सुगमता हो। प्रत्येक भाग एक विशिष्ट विधिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र का विवरण प्रस्तुत करता है, और यह संविधान के विभिन्न पहलुओं जैसे सरकार की संरचना, नागरिकों के अधिकार, सरकारी अधिकार, तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालता है।

1. **Part I: The Union and Its Territory (भाग प्रथम: संघ तथा उसका राज्यक्षेत्र)**

इस भाग में भारत की सीमाओं, इसके प्रांतों, तथा इसके संगठन का उल्लेख किया गया है। इसमें संविधान के अंतर्गत केंद्र सरकार के अधिकार-क्षेत्र की व्याख्या की गई है।

2. **Part II: Citizenship (भाग द्वितीय: नागरिकता)**

इस भाग में भारतीय नागरिकता प्राप्त करने की प्रक्रिया तथा नागरिकता के अधिकारों और उत्तरदायित्वों का विवरण दिया गया है।

3. Part III: Fundamental Rights (भाग तृतीय: मौलिक अधिकार)

यह भाग भारत के नागरिकों के मौलिक अधिकारों से संबंधित है, जैसे समानता, स्वतंत्रता, तथा सुरक्षा के अधिकार। इसमें इन अधिकारों की सुरक्षा की व्याख्या की गई है, जिनके उल्लंघन पर न्यायपालिका नागरिकों को न्याय प्रदान करती है।

4. Part IV: Directive Principles of State Policy (भाग चतुर्थ: राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांत)

इस भाग में राज्य को उन मार्गदर्शक सिद्धांतों का पालन करने का निर्देश दिया गया है जो सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास, तथा जन-कल्याण हेतु हैं। ये सिद्धांत न्यायिक रूप से अप्रवर्तनीय (Non-justiciable) होते हैं, अर्थात इनके क्रियान्वयन हेतु न्यायालय का द्वार नहीं खटखटाया जा सकता, परंतु ये सरकार के नीतिगत निर्णयों का मूल मार्गदर्शन करते हैं।

5. Part IV-A: Fundamental Duties (भाग चतुर्थ-क: मौलिक कर्तव्य)

इसमें नागरिकों के कर्तव्यों को स्पष्ट किया गया है, जो संविधान के अनुसार राष्ट्र तथा राज्य के साथ संबंधों में ईमानदारी तथा उत्तरदायित्व की अपेक्षा करते हैं।

6. Part V: The Union (भाग पंचम: संघ)

इस भाग में केंद्र सरकार की संरचना का विवरण दिया गया है, जिसमें राष्ट्रपति के उत्तरदायित्व, केंद्रीय प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल, तथा संसद (लोकसभा और राज्यसभा) के अधिकार सम्मिलित हैं।

7. Part VI: The States (भाग षष्ठ: राज्य)

इसमें राज्य सरकारों का प्रशासन, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, तथा राज्य विधानसभा के अधिकारों की व्याख्या की गई है।

8. Part VII: The States in Part B of the First Schedule (भाग सप्तम: प्रथम अनुसूची के भाग ख के राज्य)

यह भाग राज्यों की विशिष्ट व्यवस्थाओं के संबंध में था, परंतु वर्तमान काल में इसका प्रभाव नहीं रहा।

9. Part VIII: The Union Territories (भाग अष्टम: संघ राज्यक्षेत्र)

इसमें केंद्रशासित प्रदेशों (Union Territories) का विवरण तथा उनके प्रशासनिक ढाँचे की व्याख्या की गई है।

10. Part IX: Panchayats (भाग नवम: पंचायतें)

इस भाग में पंचायती राज के सिद्धांतों की व्याख्या की गई है और स्थानीय सरकार के अधिकार को सुदृढ़ बनाने हेतु सिद्धांत दिए गए हैं।

11. Part IX-A: Municipalities (भाग नवम-क: नगरपालिकाएँ)

इसमें नगरपालिकाओं के कार्य, संगठन, तथा उनके अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

12. Part X: The Scheduled Areas and Tribal Areas (भाग दशम: अनुसूचित क्षेत्र तथा जनजातीय क्षेत्र)

इस भाग में जनजातीय क्षेत्रों के संगठन, उनके अधिकारों, तथा संविधान के अंतर्गत विशेष संरक्षणों का विवरण दिया गया है।

13. Part XI: Relations between the Union and the States (भाग एकादश: संघ तथा राज्यों के मध्य संबंध)

इसमें केंद्र तथा राज्यों के मध्य अधिकारों का विभाजन, उनके संबंध, तथा राज्यों की विधि-निर्माण की सीमाओं की व्याख्या की गई है।

14. **Part XII: Finance, Property, Contracts, and Suits (भाग द्वादश: वित्त, संपत्ति, संविदाएँ तथा वाद)**

इसमें वित्तीय मामले, संपत्ति, संविदाएँ, तथा न्यायालयों में मुकदमों का विवरण दिया गया है, जो राज्यों तथा केंद्र के मध्य मामलों की व्याख्या करता है।

15. **Part XIII: Trade, Commerce, and Intercourse within the Territory of India (भाग त्रयोदश: भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य तथा समागम)**

इस भाग में भारत के भीतर व्यापार तथा आवागमन के नियमों तथा विनियमों की व्याख्या की गई है।

16. **Part XIV: Services under the Union and the States (भाग चतुर्दश: संघ तथा राज्यों के अधीन सेवाएँ)**

इसमें सरकारी कर्मचारियों के अधिकार, उनकी भर्ती, तथा उनके अधिकारों का विवरण है जो केंद्रीय तथा राज्य सरकारों के अंतर्गत कार्य करते हैं।

17. **Part XIV-A: Tribunals (भाग चतुर्दश-क: अधिकरण)**

इसमें विभिन्न अधिकरणों (Tribunals) की स्थापना तथा उनके अधिकारों की व्याख्या की गई है।

18. **Part XV: Elections (भाग पंचदश: निर्वाचन)**

इस भाग में भारत की निर्वाचन प्रक्रिया तथा निर्वाचन आयोग की भूमिका का विवरण है, जैसे निर्वाचनों का संगठन तथा विनियम।

19. **Part XVI: Special Provisions Relating to Certain Classes (भाग षोडश: कतिपय वर्गों से संबंधित विशेष उपबंध)**

इसमें दलितों, जनजातियों, तथा अन्य पिछड़े वर्गों हेतु विशिष्ट संवैधानिक प्रावधानों तथा संरक्षणों का उल्लेख किया गया है।

20. Part XVII: Official Language of the Republic of India (भाग सप्तदश: भारतीय गणराज्य की राजभाषा)

इसमें भारत की राजभाषाओं के संबंध में विवरण दिया गया है, तथा इस बात का उल्लेख किया गया है कि इन भाषाओं का प्रयोग किस प्रकार किया जाएगा।

21. Part XVIII: Emergency Provisions (भाग अष्टादश: आपातकालीन उपबंध)

इसमें आपातकालीन परिस्थितियों में संविधान के विभिन्न प्रावधानों के निलंबन तथा इसके अंतर्गत केंद्र सरकार को विशेष अधिकार दिए जाने की व्याख्या की गई है।

22. Part XIX: Miscellaneous Provisions (भाग एकोनविंश: प्रकीर्ण उपबंध)

इसमें संविधान के विभिन्न प्रकीर्ण प्रावधान हैं, जिनमें राज्यों तथा केंद्र के संबंध, विशिष्ट राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना, तथा अन्य विधिक विनियम सम्मिलित हैं।

23. Part XX: Amendment of the Constitution (भाग विंशतितम: संविधान का संशोधन)

इसमें संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है और इन संशोधनों की पद्धति का वर्णन किया गया है।

24. Part XXI: Temporary, Transitional, and Special Provisions (भाग एकविंशतितम: अस्थायी, संक्रमणकालीन तथा विशेष उपबंध)

इस भाग में संविधान के कुछ विशेष प्रावधान हैं जो अस्थायी, संक्रमणकालीन तथा विशेष परिस्थितियों से संबंधित हैं।

25. Part XXII: Short Title, Commencement, and Repeals (भाग द्वाविंशतितम: संक्षिप्त नाम, प्रारंभ तथा निरसन)

इसमें संविधान के प्रारंभिक प्रावधानों का उल्लेख है, जैसे संविधान के क्रियान्वयन का आरंभ तथा पूर्ववर्ती कानूनों के निरसन का विवरण।

ये 25 भाग भारत के संविधान का विवरण प्रस्तुत करते हैं तथा इनमें संविधान के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या की गई है, जैसे सरकार की संरचना, नागरिकों के अधिकार, राज्य नीति के सिद्धांत, तथा संविधान के संशोधन की प्रक्रिया।

(2) अनुच्छेद (Articles)

अनुच्छेद (Articles) संविधान के वे प्रावधान हैं जो संविधान के विभिन्न सिद्धांतों, अधिकारों, तथा प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन करते हैं। ये संविधान की नींव होते हैं और इसके समस्त आदेशों, नियमों, तथा कानूनों का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक अनुच्छेद किसी विशिष्ट विषय पर प्रकाश डालता है और संविधान के विशिष्ट प्रावधानों अथवा कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है।

भारत के संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेदों का विवरण:

अनुच्छेद 1 (Article 1): भारत की सीमाओं की परिभाषा: यह अनुच्छेद भारत की सीमाओं तथा राज्यों की सीमाओं की व्याख्या करता है। इसमें भारत के क्षेत्र को एक संघीय देश की हैसियत से निर्धारित किया गया है और इसे एक संपूर्ण देश के रूप में स्वीकार किया गया है।

अनुच्छेद 14 (Article 14): समानता का अधिकार: यह अनुच्छेद समस्त नागरिकों को विधि के समक्ष समानता का अधिकार देता है। इसमें कहा गया है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को अकारण भेदभाव का शिकार नहीं बनाएगा।

अनुच्छेद 19 (Article 19): स्वतंत्रता का अधिकार: इस अनुच्छेद में नागरिकों को छह मौलिक स्वतंत्रताएँ दी गई हैं, जिनमें अभिव्यक्ति, शांतिपूर्ण तथा निरायुध सभा, संघ अथवा संगठन बनाने, संपूर्ण भारत में स्वतंत्र आवागमन, किसी भी हिस्से में निवास करने, तथा कोई भी पेशा अथवा व्यवसाय अपनाने की स्वतंत्रता सम्मिलित है। (ध्यान रहे कि धार्मिक स्वतंत्रता अनुच्छेद 25 से 28 में है।)

अनुच्छेद 21 (Article 21): जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार: यह अनुच्छेद नागरिकों को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है। इसमें कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन

अथवा स्वतंत्रता से अनुचित रूप से वंचित नहीं किया जा सकता, सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार।

अनुच्छेद 32 (Article 32): संवैधानिक उपचारों का अधिकार: यह अनुच्छेद नागरिकों को संविधान के अंतर्गत अधिकारों की सुरक्षा हेतु न्यायालय की शरण लेने का अधिकार देता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत, उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है।

अनुच्छेद 50 (Article 50): न्यायपालिका और कार्यपालिका का पृथक्करण: राज्य नीति के इस निदेशक तत्त्व के अंतर्गत राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह देश की लोक सेवाओं में न्यायपालिका (Judiciary) को कार्यपालिका (Executive) से पृथक रखने हेतु कदम उठाए।

अनुच्छेद 76 (Article 76): महान्यायवादी (Attorney General) की भूमिका: यह अनुच्छेद महान्यायवादी (सरकार के विधिक सलाहकार) की नियुक्ति तथा उनके अधिकारों की व्याख्या करता है। यह महान्यायवादी को केंद्र सरकार की ओर से विधिक परामर्श देने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 368 (Article 368): संविधान में संशोधन: यह अनुच्छेद संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन करता है। इसके अंतर्गत, संसद संविधान में परिवर्तन कर सकती है, परंतु इसके लिए एक विशिष्ट प्रक्रिया की आवश्यकता होती है।

अनुच्छेद 352 (Article 352): राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency): युद्ध, बाह्य आक्रमण, अथवा सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion) की स्थिति में राष्ट्रपति संपूर्ण देश अथवा उसके किसी भाग में राष्ट्रीय आपातकाल लागू कर सकते हैं। इस दौरान केंद्र के अधिकार अत्यधिक बढ़ जाते हैं और नागरिकों के कुछ मौलिक अधिकार निलंबित हो जाते हैं।

अनुच्छेद 356 (Article 356): राष्ट्रपति शासन (President’s Rule / राज्य आपातकाल): यदि किसी राज्य का राज्यपाल यह रिपोर्ट दे कि वहाँ की सरकार संविधान के अनुरूप कार्य करने में असफल हो गई है, तो राष्ट्रपति उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकते हैं। इस स्थिति में राज्य सरकार निलंबित हो जाती है और राज्य का नियंत्रण सीधे केंद्र सरकार के हाथ में आ जाता है।

अनुच्छेद 360 (Article 360): वित्तीय आपातकाल (Financial Emergency): यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि देश अथवा उसके किसी हिस्से की वित्तीय स्थिरता (Financial Stability) अथवा साख संकट में है, तो वे वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर सकते हैं। इस दौरान सरकारी कर्मचारियों तथा न्यायाधीशों के वेतन में कटौती की जा सकती है (ध्यान रहे कि भारत के इतिहास में अब तक कभी भी वित्तीय आपातकाल लागू नहीं किया गया)।

अनुच्छेद 265 (Article 265): विधि के बिना कर पर प्रतिबंध: इस अनुच्छेद के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि कोई भी कर केवल और केवल विधि के प्राधिकार (Authority of Law) के माध्यम से ही अधिरोपित अथवा वसूल किया जा सकता है, इसके बिना नहीं।

ये अनुच्छेद संविधान का आधार होते हैं और इनके माध्यम से विभिन्न अधिकारों, प्रक्रियाओं, तथा सिद्धांतों को क्रियान्वित किया जाता है। प्रत्येक अनुच्छेद एक विशिष्ट कानून अथवा सिद्धांत का विस्तार से वर्णन करता है जो भारत की संवैधानिक व्यवस्था के आधार को सुदृढ़ करता है।

(3) **अनुसूचियाँ (Schedules)**

अनुसूचियाँ संविधान के उन भागों को कहा जाता है जो विशिष्ट विवरण, कानून, अथवा नियम प्रदान करते हैं। ये संविधान का अंग होते हैं और संविधान के विभिन्न सिद्धांतों तथा प्रावधानों की व्याख्या हेतु सम्मिलित किए गए हैं। प्रत्येक अनुसूची किसी विशिष्ट विषय अथवा मामले का विवरण देती है और इसके माध्यम से संविधान में उल्लिखित महत्वपूर्ण बिंदुओं का व्यावहारिक विवरण प्रदान किया जाता है।

भारत के संविधान की 12 अनुसूचियाँ:

Schedule 1 (अनुसूची 1): The States and the Union Territories (राज्य तथा केंद्रशासित प्रदेश)

भारत के समस्त राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों के नामों तथा उनकी सीमाओं का निर्धारण करती है। यदि किसी राज्य अथवा केंद्रशासित प्रदेश के नाम अथवा सीमा में परिवर्तन करना हो तो इसी अनुसूची में संशोधन किया जाता है।

Schedule 2 (अनुसूची 2): Emoluments, Allowances and Privileges of the President, Governors, Speaker, Judges etc. (राष्ट्रपति, राज्यपालों, अध्यक्ष, न्यायाधीशों आदि के वेतन, भत्ते तथा विशेषाधिकार)

राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपालों, लोकसभा तथा विधानसभाओं के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष, राज्यसभा तथा विधान परिषदों के सभापति तथा उपसभापति, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) के वेतन तथा विशेषाधिकार निर्धारित करती है। (नोट: इसमें उपराष्ट्रपति का उल्लेख उपराष्ट्रपति के रूप में नहीं होता, बल्कि उन्हें राज्यसभा के सभापति के रूप में वेतन प्राप्त होता है)।

Schedule 3 (अनुसूची 3): Forms of Oaths or Affirmations (शपथ अथवा प्रतिज्ञान के प्रारूप)

केंद्रीय मंत्रियों, संसद के निर्वाचनों के उम्मीदवारों, संसद सदस्यों (MPs), उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG), राज्य मंत्रियों, राज्य विधानसभा निर्वाचनों के उम्मीदवारों, तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की शपथ के प्रारूप प्रदान करती है। (नोट: राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, तथा राज्यपालों की शपथ इस अनुसूची में नहीं है, इनकी शपथ क्रमशः संविधान के अनुच्छेद 60, 69, तथा 159 में दर्ज है)।

Schedule 4 (अनुसूची 4): Allocation of Seats in the Council of States (Rajya Sabha) (राज्यसभा में सीटों का आवंटन)

राज्यसभा (संसद का उच्च सदन) में विभिन्न राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों को सीटों का विभाजन बताती है। यह विभाजन जनसंख्या के आधार पर होता है।

Schedule 5 (अनुसूची 5): Provisions as to the Administration and Control of Scheduled Areas and Scheduled Tribes (अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण संबंधी उपबंध)

वे क्षेत्र जिन्हें Scheduled Areas कहा जाता है (जहाँ जनजातीय जनसंख्या अधिक है) उनके प्रशासन, विकास, तथा जनजातियों के अधिकारों की सुरक्षा से संबंधित सिद्धांत निर्धारित करती है। राज्यपाल को विशेष अधिकार दिए जाते हैं।

Schedule 6 (अनुसूची 6): Provisions as to the Administration of Tribal Areas in the States of Assam, Meghalaya, Tripura and Mizoram (असम, मेघालय, त्रिपुरा तथा मिज़ोरम राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन संबंधी उपबंध)

विशेष रूप से असम, मेघालय, त्रिपुरा, तथा मिज़ोरम में स्थित जनजातीय क्षेत्रों हेतु स्वायत्त ज़िला परिषदों (Autonomous District Councils) की स्थापना तथा उनके अधिकारों का वर्णन करती है। ये परिषदें विधि-निर्माण, न्यायपालिका, तथा राजस्व संबंधी सीमित अधिकार रखती हैं।

Schedule 7 (अनुसूची 7): Division of Powers Between the Union and the States (संघ तथा राज्यों के मध्य अधिकारों का विभाजन)

केंद्रीय, राज्य, तथा साझा अधिकारों को तीन सूचियों में विभाजित करती है:

i. **Union List (संघ सूची):** केवल संसद कानून बना सकती है।
ii. **State List (राज्य सूची):** केवल राज्य कानून बना सकते हैं।
iii. **Concurrent List (समवर्ती सूची):** दोनों कानून बना सकते हैं, परंतु टकराव की स्थिति में केंद्रीय कानून प्रभावी होगा।

Schedule 8 (अनुसूची 8): The Official Languages (राजभाषाएँ)

भारत में सरकारी स्तर पर मान्यता प्राप्त 22 भाषाओं की सूची देती है। आरंभ में 14 भाषाएँ थीं, परंतु बाद में संशोधनों के माध्यम से 22 हो गईं। ये भाषाएँ मूलतः राज्यों की राजभाषाओं के चयन तथा देश के सांस्कृतिक व साहित्यिक विकास हेतु हैं (केंद्र सरकार के अपने कार्यालयी कार्यों हेतु हिंदी तथा अंग्रेज़ी का प्रयोग होता है)।

Schedule 9 (अनुसूची 9): Validation of Certain Acts and Regulations (कतिपय अधिनियमों तथा विनियमों का विधिमान्यकरण)

ऐसे कानूनों की सूची प्रदान करती है जो मौलिक अधिकारों से टकराव रख सकते हैं, परंतु फिर भी उन्हें न्यायिक चुनौती से सुरक्षित रखने हेतु सम्मिलित किया गया था। भूमि सुधार तथा समाजवादी प्रकृति के कानूनों को इसमें सम्मिलित किया गया था और इसे पहली बार 1951 में जोड़ा गया था। (महत्वपूर्ण सुधार: उच्चतम न्यायालय के 2007 के निर्णय के पश्चात अब इस अनुसूची के कानूनों की भी न्यायिक समीक्षा हो सकती है, यदि वे संविधान के मूल ढाँचे को क्षति पहुँचाएँ)।

Schedule 10 (अनुसूची 10): Provisions as to Disqualification on Ground of Defection (दल-बदल के आधार पर निरर्हता संबंधी उपबंध)

दल बदलने (Defection) अथवा पार्टी के विरुद्ध कार्य करने वाले संसद अथवा विधानसभा सदस्यों को अयोग्य घोषित करने के सिद्धांत प्रदान करती है। 52वें संवैधानिक संशोधन (1985) के अंतर्गत सम्मिलित की गई।

Schedule 11 (अनुसूची 11): The Panchayats (पंचायतें)

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय सरकारों अर्थात पंचायतों के अधिकारों, कार्यों, तथा ढाँचे की व्याख्या करती है। 73वें संवैधानिक संशोधन (1992) के माध्यम से सम्मिलित की गई। इसमें 29 विषयों की सूची दी गई है जिन पर पंचायतें कार्य कर सकती हैं।

Schedule 12 (अनुसूची 12): The Municipalities (नगरपालिकाएँ)

नगरीय क्षेत्रों की स्थानीय सरकारों अर्थात नगरपालिकाओं की स्थापना, संरचना, अधिकारों, तथा उत्तरदायित्वों का विवरण प्रदान करती है। 74वें संवैधानिक संशोधन (1992) के माध्यम से सम्मिलित की गई। इसमें 18 विषयों की सूची दी गई है, जैसे नगरीय योजना-निर्माण, जल-आपूर्ति, स्वच्छता, परिवहन, शिक्षा आदि।

ये समस्त अनुसूचियाँ संविधान का अंग हैं तथा इनका उद्देश्य भारत की संवैधानिक व्यवस्था को बेहतर तथा प्रभावी बनाना है। प्रत्येक अनुसूची अपने विशिष्ट विषय के अंतर्गत संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या तथा क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है।

2. महत्वपूर्ण संवैधानिक शब्दावली

1. **संविधान (Constitution):** यह एक विधिक दस्तावेज़ है जो देश की सरकारी संरचना, नागरिकों के अधिकारों, तथा सरकार के कार्यों के सिद्धांतों को व्यवस्थित करता है। संविधान किसी देश के राजनीतिक जीवन की नींव है।
2. **प्रस्तावना (Preamble):** संविधान का प्रारंभिक भाग जिसमें इसके उद्देश्यों तथा महत्व का वर्णन किया जाता है। भारत के संविधान की प्रस्तावना में न्याय (सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक), स्वतंत्रता, समानता, तथा बंधुत्व जैसे महत्वपूर्ण मूल्यों का प्रतिबिंब दिया गया है।
3. **मौलिक अधिकार (Fundamental Rights):** संविधान में नागरिकों के हित में दर्ज अधिकार जो उन्हें राजकीय संस्थाओं के असंवैधानिक कार्य से सुरक्षा प्रदान करते हैं। भारत में ये अधिकार अनुच्छेद 12 से 35 तक सम्मिलित हैं।
4. **राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy):** ये सिद्धांत संविधान में वर्णित हैं जिनका उद्देश्य सरकार को सामाजिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक न्याय प्रदान करने हेतु मार्गदर्शन देना है। ये निर्देश विधिक रूप से अनिवार्य नहीं हैं परंतु ये सरकार के नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करते हैं।
5. **रिट (Writ):** रिट एक विधिक आदेश है जो न्यायालय किसी व्यक्ति अथवा संस्था को किसी विशेष कार्य अथवा आदेश का पालन करने अथवा किसी कार्य को रोकने हेतु जारी करता है। भारत में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने का अधिकार प्राप्त है। रिट के विभिन्न प्रकार हैं:

   1) **बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus):** यह रिट किसी व्यक्ति को अवैध रूप से बंदी बनाने के विरुद्ध जारी की जाती है।

   2) **परमादेश (Mandamus):** यह रिट किसी सरकारी संस्था अथवा अधिकारी को उनके विधिक कर्तव्यों को पूर्ण करने हेतु जारी की जाती है।

   3) **प्रतिषेध (Prohibition):** यह रिट किसी न्यायालय अथवा सरकारी संस्था को किसी असंवैधानिक कार्य से रोकने हेतु जारी की जाती है।

   4) **उत्प्रेषण (Certiorari):** यह रिट किसी निचले न्यायालय अथवा संस्था से अनुरोध करती है कि वह अपना निर्णय वापस ले अथवा उस पर पुनर्विचार करे।

   5) **अधिकार-पृच्छा (Quo Warranto):** यह रिट किसी व्यक्ति के अधिकारों अथवा पद की विधिक हैसियत पर प्रश्न उठाने हेतु जारी की जाती है।

6. **लोकतंत्र (Democracy):** एक शासन-व्यवस्था जहाँ जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन कर सरकार चलाने का अधिकार प्रदान करती है। भारत में लोकतंत्र का सिद्धांत संविधान के अंतर्गत सुदृढ़ किया गया है।
7. **पंथनिरपेक्षता (Secularism):** एक सिद्धांत जिसके अंतर्गत राज्य का अपना कोई राजकीय धर्म नहीं होता और वह समस्त धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है। भारत के संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में इसे 42वें संशोधन (1976) के माध्यम से स्पष्ट रूप से सम्मिलित किया गया है।
8. **अनुच्छेद (Article):** संविधान में विद्यमान विशिष्ट प्रावधान अथवा सामग्री को अनुच्छेद कहा जाता है। भारत के संविधान में विभिन्न अनुच्छेद हैं जो विभिन्न अधिकारों, कर्तव्यों, तथा सरकार के अधिकारों का निर्धारण करते हैं।
9. **संवैधानिक उपचार (Constitutional Remedies):** ये वे अधिकार तथा कदम हैं जिनका प्रयोग नागरिक संविधान के उल्लंघन की स्थिति में अपने अधिकारों की सुरक्षा हेतु कर सकते हैं। अनुच्छेद 32 तथा 226 में संवैधानिक उपचार की विधियाँ दर्ज हैं।
10. **न्यायपालिका (Judiciary):** वह संस्था जो संविधान की व्याख्या करती है और कानूनों के उल्लंघन की स्थिति में न्याय प्रदान करती है। भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संविधान के माध्यम से संरक्षित किया गया है।
11. **निर्वाचन प्रक्रिया (Electoral Process)**: यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है। निर्वाचन प्रक्रिया में मतदान, निर्वाचन क्षेत्र, तथा उम्मीदवारों का चयन सम्मिलित है।
12. **समानता (Equality):** संविधान में दर्ज सिद्धांत के अनुसार, समस्त नागरिकों को विधि के समक्ष समान व्यवहार मिलना चाहिए। भारत में समानता के अधिकार की गारंटी अनुच्छेद 14 में दी गई है।
13. **राष्ट्रीय ध्वज (National Flag):** भारत का राष्ट्रीय ध्वज इस देश की पहचान का प्रतिनिधित्व करता है और इसका सम्मान संविधान में अनिवार्य घोषित किया गया है।
14. **संविधान का संरक्षण (Protection of the Constitution):** यह सिद्धांत संविधान की सुरक्षा तथा इसके उल्लंघन को रोकने हेतु सरकारी संस्थाओं तथा नागरिकों के उत्तरदायित्वों का वर्णन करता है।

3. आगे के अध्ययन हेतु पुस्तकें तथा संसाधन

हिंदी पुस्तकें:

1. **"हमारा संविधान"**

लेखक: सुभाष कश्यप

सुभाष कश्यप भारतीय संविधान के एक प्रसिद्ध शोधकर्ता तथा विश्लेषक हैं। उन्होंने भारतीय संविधान के विवरण को सुगम भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति इसे समझ सके। उनकी यह पुस्तक भारत के संविधान की समस्त महत्वपूर्ण धाराओं, संविधान के महत्व, तथा इसके विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करती है।

यह पुस्तक संविधान की प्रारंभिक समझ हेतु अत्यंत उपयोगी है और इसमें संविधान के विभिन्न अधिकारों, न्यायपालिका की भूमिका, तथा संवैधानिक ढाँचे पर विस्तार से चर्चा की गई है।

पुस्तक में संविधान के मूल सिद्धांतों, इसके इतिहास, तथा इसके महत्व पर बल दिया गया है, जो विशेषतः प्रतियोगी परीक्षाओं के विद्यार्थियों हेतु एक महत्वपूर्ण साधन है।

सुभाष कश्यप की यह पुस्तक हिंदी भाषा में लिखी गई है, जिसमें संविधान की मूल धाराओं तथा इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि को सरल भाषा में वर्णित किया गया है।

2. **"भारत का संविधान - एक परिचय"**

लेखक: डी. डी. बसु

डी. डी. बसु भारतीय संविधान के एक विख्यात विशेषज्ञ हैं और उनकी गणना भारत के संवैधानिक कानूनों के महत्वपूर्ण शोधकर्ताओं में की जाती है। उनकी यह पुस्तक भारत के संविधान की एक व्यापक तथा विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक में संविधान की समस्त महत्वपूर्ण धाराओं, संशोधनों, तथा संवैधानिक कार्यों पर गहराई से चर्चा की गई है। डी. डी. बसु ने संविधान के व्यावहारिक तथा विधिक महत्व को समझाने हेतु इसमें संविधान के इतिहास, निर्माण, तथा संवैधानिक संस्थाओं की भूमिका को स्पष्ट किया है।

इस पुस्तक में संविधान की विभिन्न धाराओं की व्याख्या की गई है, जैसे मौलिक अधिकार, राज्य के अधिकार, संवैधानिक न्यायालयों की भूमिका, तथा संविधान में किए गए संशोधन।

डी. डी. बसु की पुस्तक विशेषतः विधि के विद्यार्थियों तथा शोधकर्ताओं हेतु एक महत्वपूर्ण साधन है और संवैधानिक कानून की जटिल अवधारणाओं को समझने में सहायता प्रदान करती है।

अंग्रेज़ी पुस्तकें:

1. **"Introduction to the Constitution of India"**

लेखक: डी. डी. बसु (D.D. Basu)

यह पुस्तक भारत के संविधान का व्यापक परिचय प्रस्तुत करती है, जिसमें संविधान का निर्माण, इसकी विशेषताएँ, तथा मूल सिद्धांत सम्मिलित हैं।

2. **"The Constitution of India"**

लेखक: पी. एम. बक्षी (P.M. Bakshi)

यह पुस्तक भारत के संविधान की एक विस्तृत तथा व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करती है, जिसमें इसका इतिहास, निर्माण, तथा विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या की गई है।

3. **"Indian Polity"**

लेखक: एम. लक्ष्मीकांत (M. Laxmikanth)

एक प्रसिद्ध पुस्तक जो संविधान के समस्त महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालती है, विशेषतः भारतीय शासन-व्यवस्था के संरचनात्मक पक्ष पर।

4. **"Constitutional Law of India"**

लेखक: डॉ. जे. एन. पांडेय (Dr. J.N. Pandey)

संविधान की विधिक व्याख्या तथा इसके विभिन्न अंगों पर एक विस्तृत पुस्तक जो संविधान को समझने हेतु महत्वपूर्ण है।

ऑनलाइन संसाधन:

1. **“Constitution of India - CLPR Archive”**

यह एक निजी परंतु अत्यंत विश्वसनीय तथा प्रामाणिक डिजिटल पोर्टल है। यहाँ संविधान सभा की बहसों (Constituent Assembly Debates), संविधान के इतिहास, तथा प्रत्येक अनुच्छेद के विकास (Evolution) की संपूर्ण तथा गहन जानकारी प्रदान की जाती है। यह संवैधानिक शोध हेतु एक उत्कृष्ट ज्ञान-स्रोत है।

वेबसाइट: https://www.constitutionofindia.net

2. **“Legislative Department - Government of India Website”**

यह भारत सरकार की मूल आधिकारिक वेबसाइट है जहाँ से संविधान की मूल तथा नवीनतम दस्तावेज़ी फाइलें डाउनलोड की जा सकती हैं और प्रत्येक अनुच्छेद का पूर्ण आधिकारिक विवरण उपलब्ध है।

वेबसाइट: legislative.gov.in

3. **“National Portal of India - Constitutional Framework”**

सरकार की वेबसाइट पर संविधान की मूल विशेषताओं तथा प्रावधानों के बारे में जानकारी प्रदान की जाती है।

अन्य संसाधन:

1. **यूट्यूब पर वीडियो:** अनेक यूट्यूब चैनल भारतीय संविधान के संबंध में वीडियो प्रदान करते हैं, जैसे “Unacademy” तथा “Study IQ” जो संविधान की विभिन्न धाराओं तथा उनके व्यावहारिक प्रयोग की व्याख्या करते हैं।
2. **MOOC पाठ्यक्रम:** अनेक ऑनलाइन पाठ्यक्रम भारत के संविधान पर उपलब्ध हैं, जिन्हें “SWAYAM” तथा “Coursera” जैसे प्लेटफ़ॉर्म्स पर निःशुल्क अथवा सदस्यता के आधार पर पूर्ण किया जा सकता है।

4. अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड

पृष्ठभूमि तथा स्थापना

भारत में यूनिफ़ॉर्म सिविल कोड के क्रियान्वयन के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1972 में एक विधिक संकट उत्पन्न हुआ। उस समय के विधि मंत्री एच. आर. गोखले ने एक विधेयक संसद में प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार गोद लिए हुए पुत्र को सगे पुत्र के समस्त अधिकार प्राप्त हो जाते थे। चूँकि यह विधेयक समस्त धर्मों हेतु समान था, अतः मुसलमानों के विभिन्न वर्गों में बेचैनी उत्पन्न हुई क्योंकि यह इस्लामी उत्तराधिकार कानून के विरुद्ध था।

इस समस्या की गंभीरता को देखते हुए दारुल उलूम देवबंद के भूतपूर्व महत्तमिम, क़ारी मुहम्मद तैयब क़ासमी ने 13-14 मार्च 1972 को देवबंद में विचारकों की एक बैठक बुलाई, जिसमें देश भर के उलेमा तथा बुद्धिजीवी सम्मिलित हुए। बैठक में यह तय हुआ कि चूँकि मुस्लिम पारिवारिक कानूनों की सुरक्षा हेतु सबसे सुदृढ़ आवाज़ मुंबई से उठ रही है, अतः वहाँ एक प्रतिनिधि सम्मेलन आयोजित किया जाए।

तदनुसार 27-28 दिसंबर 1972 को मुंबई में एक विशाल सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें लाखों जन-समुदाय के साथ-साथ विभिन्न विचारधाराओं के प्रतिनिधि, जिनमें देवबंदी, बरेलवी, अहल-ए-हदीस, शिया, दाऊदी बोहरा, सुलैमानी बोहरा, जमात-ए-इस्लामी हिंद तथा जमीयत उलेमा-ए-हिंद के नेता सम्मिलित थे, ने भाग लिया। सर्वसम्मति से अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड की स्थापना का निर्णय हुआ और 7 अप्रैल 1973 को हैदराबाद, दक्कन में इसकी विधिवत स्थापना हुई।

प्रारंभिक नेतृत्व

बोर्ड के प्रथम अध्यक्ष क़ारी मुहम्मद तैयब क़ासमी तथा प्रथम महासचिव सैयद मिन्नतुल्लाह रहमानी निर्वाचित हुए। बाद में बोर्ड का नेतृत्व निम्नलिखित व्यक्तित्वों के हाथ में रहा:

1. **मौलाना क़ारी मुहम्मद तैयब (1972 - 1983)**

बोर्ड के प्रथम अध्यक्ष, जो दारुल उलूम देवबंद के महत्तमिम भी थे।

2. **मौलाना सैयद अबुल हसन अली नदवी (1983 - 1999)**

प्रसिद्ध इस्लामी विचारक, नदवतुल उलमा लखनऊ के नाज़िम, तथा अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक।

3. **क़ाज़ी मुजाहिदुल इस्लाम क़ासमी (1999 - 2002)**

प्रसिद्ध फ़क़ीह तथा विधि-विशेषज्ञ, जिन्होंने आधुनिक विधिक मुद्दों पर गहन शोध किया।

4. मौलाना सैयद राबे हसनी नदवी (2002 - 2023)

नदवतुल उलमा लखनऊ के नाज़िम, जिन्होंने दीर्घकाल तक बोर्ड का नेतृत्व किया।

5. मौलाना ख़ालिद सैफुल्लाह रहमानी (2023 - अद्यतन)

वर्तमान अध्यक्ष, जो इस्लामी फ़िक़्ह, शिक्षा, तथा समकालीन मुद्दों पर गहन दृष्टिकोण रखते हैं।

संवैधानिक स्थिति

अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड की नींव भारतीय संविधान में दी गई धार्मिक स्वतंत्रता तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सिद्धांतों पर आधारित है। भारतीय संविधान के निम्नलिखित प्रावधान बोर्ड की स्थापना तथा इसके उद्देश्यों को सुरक्षा प्रदान करते हैं:

1. **अनुच्छेद 25 (Article 25):** प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म का पालन करने, उसका प्रचार करने, तथा उस पर आचरण करने का पूर्ण अधिकार देता है।

2. **अनुच्छेद 26 (Article 26):** प्रत्येक धार्मिक समूह को अपने धार्मिक मामलों को स्वायत्त रूप से संचालित करने का अधिकार देता है।

3. **अनुच्छेद 29 (Article 29):** अल्पसंख्यकों को अपने धर्म, रीति-रिवाज़, संस्कृति, तथा संस्थाओं को बनाए रखने का पूर्ण अधिकार देता है।

4. **अनुच्छेद 30 (Article 30):** धार्मिक तथा भाषाई अल्पसंख्यकों को अपने शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने तथा उनका प्रबंधन करने का अधिकार प्रदान करता है।

5. **शरीयत अधिनियम 1937 (Shariat Act 1937):** शरीयत अधिनियम 1937 ब्रिटिश काल में मुसलमानों के पारिवारिक कानूनों को इस्लामी शरीयत के अनुरूप क्रियान्वित करने हेतु बनाया गया था। इसका उद्देश्य निकाह, तलाक़, उत्तराधिकार, भरण-पोषण, तथा अन्य व्यक्तिगत मामलों में गैर-इस्लामी रीति-रिवाज़ों के हस्तक्षेप को समाप्त करना था। इस कानून के अंतर्गत न्यायालयों को बाध्य किया गया कि वे मुसलमानों के व्यक्तिगत मामलों में निर्णय इस्लामी सिद्धांतों के अनुरूप करें।

यह कानून आज भी भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ का मूल अंग है, और अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड इसकी सुरक्षा हेतु सक्रिय है। इसे परिवर्तित करने के अनेक बार प्रयास हुए, विशेषतः यूनिफ़ॉर्म सिविल कोड (UCC) के संदर्भ में, परंतु मुसलमानों के प्रतिरोध के कारण यह बना हुआ है।

इन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, भारत में मुसलमानों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने धार्मिक तथा पारिवारिक कानूनों की सुरक्षा हेतु एक संगठन गठित करें, जो अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के रूप में विद्यमान है। यह बोर्ड सरकार के किसी भी ऐसे कदम की निगरानी करता है जो मुस्लिम पर्सनल लॉ के विरुद्ध हो और न्यायालयों में इसकी पैरवी करता है।

उद्देश्य तथा लक्ष्य

मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड का मूल उद्देश्य भारत में मुस्लिम पारिवारिक कानूनों की सुरक्षा तथा शरीयत अधिनियम (1937) के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना था। इस हेतु निम्नलिखित कदमों पर ध्यान दिया गया:

1. मुस्लिम पर्सनल लॉ के विरुद्ध होने वाले प्रत्येक प्रकार के विधि-निर्माण अथवा न्यायिक निर्णयों को समाप्त कराने अथवा मुसलमानों को इनसे मुक्त घोषित कराने हेतु प्रयासरत रहना।

2. मुसलमानों में पारिवारिक कानूनों के बारे में जागरूकता उत्पन्न करना तथा इस संबंध में आवश्यक साहित्य प्रकाशित करना।

3. मुस्लिम पारिवारिक कानूनों के व्यावहारिक क्रियान्वयन हेतु व्यापक योजना तैयार करना।

4. केंद्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा क्रियान्वित कानूनों तथा परिपत्रों का विश्लेषण करना कि वे मुस्लिम पर्सनल लॉ को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं।

5. मुसलमानों के विभिन्न फ़िक़्ही मसलकों तथा वर्गों के मध्य सद्भावना, भाईचारे, तथा एकता-सामंजस्य को बढ़ावा देना।

6. आधुनिक मुद्दों को ध्यान में रखते हुए मुसलमानों के विभिन्न फ़िक़्ही मसलकों के शोधात्मक अध्ययन का आयोजन करना तथा इस्लामी सिद्धांतों पर आधारित व्यावहारिक समाधान खोजना।

7. प्रतिनिधिमंडलों का गठन, संगोष्ठियों, सभाओं, तथा सम्मेलनों का आयोजन करना।

8. आवश्यकतानुसार समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, तथा अन्य संचार माध्यमों के ज़रिए जागरूकता उत्पन्न करना।

महत्वपूर्ण सेवाएँ तथा उपलब्धियाँ

अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने अपनी स्थापना के पश्चात अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर मुसलमानों के अधिकारों की सुरक्षा की और शरीयत के अनुरूप जीवन व्यतीत करने हेतु विभिन्न कदम उठाए। इस बोर्ड की सेवाएँ तथा उपलब्धियाँ निम्नलिखित प्रमुख पहलुओं में अग्रणी हैं:

1. गोद लेने संबंधी विधेयक की वापसी (1978) तथा मुसलमानों को छूट (1980)

1978 में सरकार ने गोद लेने संबंधी विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें गोद लिए पुत्र को सगे पुत्र के समस्त अधिकार देने का प्रस्ताव था। यह विधेयक मुसलमानों के पारिवारिक कानूनों के विरुद्ध था। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने इसके विरुद्ध आंदोलन चलाया, जिसके परिणामस्वरूप 1978 में यह विधेयक वापस ले लिया गया और 1980 में मुसलमानों को इससे छूट दे दी गई।

2. आपातकाल (1975) तथा जबरन नसबंदी के विरुद्ध फ़तवा

1975 में आपातकाल के दौरान जबरन नसबंदी का अभियान आरंभ किया गया था। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने इसके विरुद्ध फ़तवा दिया और मुसलमानों को इस प्रक्रिया से बचने हेतु प्रेरित किया। यह फ़तवा देश भर में महत्व प्राप्त कर गया।

3. धार्मिक स्थलों की भूमि पर सरकारी अधिग्रहण के विरुद्ध सफलता (1978)

1978 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सरकार को धार्मिक स्थलों की भूमि अधिग्रहीत करने की अनुमति दी थी। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के आंदोलन के परिणामस्वरूप यह निर्णय वापस ले लिया गया और मुसलमान अपने धार्मिक स्थलों की सुरक्षा में सफल हुए।

4. शाहबानो मामला (1986) तथा मुस्लिम तलाक़शुदा विधेयक

शाहबानो मामले में उच्चतम न्यायालय के 1985 के निर्णय के पश्चात अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने इस मामले में सक्रिय भूमिका निभाई थी। बोर्ड ने इस निर्णय का प्रबल विरोध किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह मुस्लिम पर्सनल लॉ में हस्तक्षेप था। देश भर में मुस्लिम नेतृत्व ने प्रदर्शन किए, सभाएँ आयोजित कीं, तथा सरकार पर दबाव डाला कि वह इस निर्णय को वापस ले।

इन्हीं प्रयासों का परिणाम था कि 1986 में मुस्लिम महिला (तलाक़ अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम पारित किया गया, जिसने शाहबानो मामले के निर्णय को अप्रभावी कर दिया। इस कानून के माध्यम से यह निर्धारित किया गया कि तलाक़शुदा मुस्लिम महिला को इद्दत के पश्चात पति की ओर से भरण-पोषण नहीं मिलेगा, बल्कि वह अपने परिवार अथवा वक़्फ़ बोर्ड से सहायता लेगी। इस प्रकार मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने उस समय सफलता प्राप्त कर ली थी और मुस्लिम पर्सनल लॉ के अंतर्गत तलाक़ तथा भरण-पोषण की परंपरागत व्यवस्था बनी रही।

परंतु अब, 2024 में उच्चतम न्यायालय ने पुनः वही सिद्धांत बहाल कर दिया है, जो शाहबानो मामले में तय किया गया था। अर्थात, धारा 125 अब समस्त महिलाओं पर लागू होगी, जिसमें तलाक़शुदा मुस्लिम महिलाएँ भी सम्मिलित हैं। अब यह देखना है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड इस मामले में क्या कदम उठाता है। क्या वह इस निर्णय के विरुद्ध कोई विधिक कार्रवाई करता है अथवा कोई नई रणनीति अपनाता है? समय ही बताएगा कि बोर्ड इस निर्णय पर क्या प्रतिक्रिया देता है और किस प्रकार मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों तथा इस्लामी कानूनों के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

5. “मजमूआ क़वानीन-ए-इस्लामी” (इस्लामी विधि-संग्रह) का संकलन

मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने “मजमूआ क़वानीन-ए-इस्लामी” तैयार कराया, जिसमें इस्लामी पारिवारिक कानूनों का व्यापक संग्रह संकलित किया गया। यह संग्रह उपमहाद्वीप में फ़तावा आलमगीरी के पश्चात पारिवारिक कानूनों का एक बड़ा दस्तावेज़ है।

6. मॉडल निकाहनामा (2003)

2003 में उत्तर प्रदेश में एक मॉडल निकाहनामा प्रस्तुत किया गया, जिसमें निम्नलिखित बिंदु सम्मिलित थे:

1) विवाह में फ़िज़ूलख़र्ची तथा दहेज की माँगों पर प्रतिबंध।

2) मेहर का समयबद्ध भुगतान।

3) दंपति द्वारा शरीयत के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा।

4) शरई पंचायत अथवा दारुल क़ज़ा के माध्यम से विवादों के समाधान हेतु प्रोत्साहन।

5) एक ही बैठक में तीन तलाक़ देने पर प्रतिबंध।

7. बाबरी मस्जिद मामले में विधिक संघर्ष

बाबरी मस्जिद की विवादित भूमि के मुद्दे में मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने स्थायी पक्षकार की हैसियत से न्यायालयों में मुकदमा लड़ा। इस संघर्ष में बोर्ड ने भारतीय मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा की और विभिन्न विधिक कार्रवाइयों के माध्यम से इस मुद्दे को सुलझाने का प्रयास किया।

8. शैक्षिक तथा कल्याणकारी सेवाएँ

अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने मुसलमानों में अपने पारिवारिक कानूनों के संबंध में जागरूकता उत्पन्न करने हेतु विभिन्न संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन किया।

बोर्ड ने मुसलमानों के बच्चों हेतु धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा के संबंध में कदम उठाए, ताकि युवा पीढ़ी को इस्लामी पारिवारिक कानूनों के बारे में सही जानकारी प्राप्त हो सके।

9. मुसलमानों की फ़िक़्ही एकता

मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने मुसलमानों के विभिन्न फ़िक़्ही मसलकों तथा वर्गों के मध्य एकता को बढ़ावा देने हेतु अनेक कदम उठाए हैं। इसने विभिन्न विचारधाराओं के उलेमा को एक मंच पर एकत्रित किया ताकि वे मुसलमानों की समस्याओं को मिलकर सुलझा सकें।

10.विभिन्न विधेयकों तथा कानूनों पर प्रभावी राय

बोर्ड ने सरकार की ओर से प्रस्तुत विभिन्न विधेयकों तथा कानूनों पर अपनी प्रभावी राय प्रस्तुत की। इसने न्यायालयों में तथा सार्वजनिक स्तर पर इन विधेयकों के विरुद्ध आंदोलन चलाए और मुसलमानों के अधिकारों की सुरक्षा की।

11.शरीयत की सुरक्षा हेतु प्रभावी आवाज़

अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने मुसलमानों के पारिवारिक कानूनों, जैसे निकाह, तलाक़, उत्तराधिकार, तथा अन्य मुद्दों पर आने वाली विभिन्न चुनौतियों का मुक़ाबला किया और इन कानूनों की सुरक्षा हेतु विभिन्न विधिक कदम उठाए।

अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने अपनी स्थापना के पश्चात मुसलमानों के अधिकारों की प्रभावी पैरवी की है और शरीयत की सुरक्षा हेतु विभिन्न क्षेत्रों में सफल संघर्ष किया है। यह बोर्ड आज भी मुसलमानों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु कार्यरत है और इसकी सेवाएँ भारत में अत्यंत महत्व रखती हैं।

5. वक़्फ़ बोर्ड

परिचय, महत्व तथा स्थापना की आवश्यकता

वक़्फ़ इस्लामी सभ्यता तथा समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण कल्याणकारी संस्था है, जिसका उद्देश्य अल्लाह की प्रसन्नता हेतु अपनी संपत्ति अथवा जायदाद को स्थायी रूप से धार्मिक, सामाजिक तथा कल्याणकारी उद्देश्यों हेतु समर्पित करना है। शब्द "वक़्फ़" का शाब्दिक अर्थ "रोकना" अथवा "स्थिर करना" है, जबकि पारिभाषिक रूप से इससे तात्पर्य ऐसी संपत्ति से है जिसकी मूल संरचना को सुरक्षित रखते हुए इसके लाभों को जन-कल्याण तथा नेक कार्यों हेतु समर्पित कर दिया जाए। वक़्फ़ की विशेषता यह है कि इसे बेचा नहीं जा सकता, न उत्तराधिकार में विभाजित किया जा सकता है और न ही व्यक्तिगत लाभ हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

इस्लाम में वक़्फ़ को सदक़ा-ए-जारिया की हैसियत प्राप्त है और इसकी नींव क़ुरआन तथा सुन्नत की शिक्षाओं पर स्थापित है। पैगंबर मुहम्मद ﷺने वक़्फ़ हेतु प्रेरित किया और सहाबा-ए-किराम ने इस सुन्नत का पालन करते हुए अपनी अनेक संपत्तियाँ वक़्फ़ कीं। हज़रत उमर ने ख़ैबर की भूमि को रसूल अकरम ﷺके परामर्श से वक़्फ़ किया, जिसके बारे में आपने फ़रमाया: "मूल को रोको तथा इसका लाभ दान कर दो।" यही सिद्धांत इस्लामी वक़्फ़ व्यवस्था की नींव माना जाता है।

भारत में वक़्फ़ को विधिक संरक्षण भी प्राप्त है। ब्रिटिश काल में वक़्फ़ वैलिडेटिंग अधिनियम 1913 के माध्यम से इसकी विधिक हैसियत को मान्यता दी गई, जबकि स्वतंत्रता के पश्चात वक़्फ़ अधिनियम 1954 तथा बाद में वक़्फ़ अधिनियम 1995 लागू किया गया। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 26 भी धार्मिक संस्थाओं को अपने मामले स्वयं संचालित करने का अधिकार प्रदान करता है, जिसके अंतर्गत वक़्फ़ संस्थाएँ भी सम्मिलित हैं।

भारत में वक़्फ़ संपत्तियों का महत्व अत्यंत व्यापक है। असंख्य मस्जिदें, मदरसे, ख़ानक़ाहें, दरगाहें, शैक्षणिक संस्थान, अनाथालय, अस्पताल तथा कल्याण केंद्र वक़्फ़ संपत्तियों पर स्थापित हैं। इन संपत्तियों से प्राप्त होने वाली आय धार्मिक, शैक्षिक तथा सामाजिक सेवाओं पर व्यय की जाती है। इसके अतिरिक्त अनेक वाणिज्यिक तथा कृषि वक़्फ़ संपत्तियाँ आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देती हैं तथा हज़ारों व्यक्तियों हेतु रोज़गार के अवसर उत्पन्न करती हैं। ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी वक़्फ़ संपत्तियों का बड़ा महत्व है क्योंकि देश की अनेक ऐतिहासिक मस्जिदें तथा धार्मिक स्मारक वक़्फ़ संपत्तियों में सम्मिलित हैं।

वक़्फ़ संपत्तियों की व्यापक संख्या, उनके महत्व तथा उनके समक्ष आने वाली समस्याओं को देखते हुए एक ऐसी संगठित संस्था की आवश्यकता महसूस की गई जो इन संपत्तियों की सुरक्षा, निगरानी तथा बेहतर प्रबंधन सुनिश्चित कर सके। इसी उद्देश्य हेतु भारत में वक़्फ़ बोर्ड स्थापित किए गए। वक़्फ़ बोर्ड का मूल दायित्व

वक़्फ़ संपत्तियों का अभिलेख सुरक्षित रखना, इन पर अवैध क़ब्ज़ों को रोकना, इनसे प्राप्त होने वाली आय को उचित उद्देश्यों पर व्यय करना तथा वक़्फ़ कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना है।

राज्य वक़्फ़ बोर्ड तथा केंद्रीय वक़्फ़ परिषद वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा तथा उनके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि वक़्फ़ संपत्तियों का प्रभावी तथा पारदर्शी प्रबंधन किया जाए तो यह न केवल मुस्लिम समाज के शैक्षिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं, बल्कि देश के समग्र कल्याण में भी उल्लेखनीय योगदान दे सकती हैं।

वक़्फ़ बोर्ड की संवैधानिक स्थिति तथा मुसलमानों की धार्मिक व कल्याणकारी संस्थाओं की सुरक्षा में इसकी भूमिका

भारत में वक़्फ़ की व्यवस्था सदियों पुरानी इस्लामी परंपरा का अंग है। मुसलमान अपनी संपत्तियों को अल्लाह की राह में वक़्फ़ करके उनके लाभों को धार्मिक, शैक्षिक तथा कल्याणकारी उद्देश्यों हेतु समर्पित करते रहे हैं। तथापि ब्रिटिश काल में वक़्फ़ संपत्तियों के प्रबंधन हेतु कोई प्रभावी विधिक व्यवस्था विद्यमान नहीं थी, जिसके परिणामस्वरूप अनेक वक़्फ़ संपत्तियाँ कुप्रबंधन, अवैध क़ब्ज़ों तथा सरकारी हस्तक्षेप का शिकार हो गईं।

मुग़ल काल तथा उससे पूर्व वक़्फ़ संपत्तियों का प्रबंधन सामान्यतः उलेमा, क़ाज़ियों तथा मुतवल्लियों के माध्यम से संपन्न होता था। इन संपत्तियों की आय मस्जिदों, मदरसों, ख़ानक़ाहों तथा कल्याणकारी संस्थाओं पर व्यय की जाती थी। ब्रिटिश काल में वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा हेतु कोई सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी और अनेक संपत्तियाँ सरकारी अधीनता में चली गईं। इस स्थिति को देखते हुए मुसलमानों ने वक़्फ़ संपत्तियों की विधिक सुरक्षा हेतु निरंतर संघर्ष किया, जिसके परिणामस्वरूप 1913 का वक़्फ़ अधिनियम लागू किया गया। इस कानून ने मुसलमानों के वक़्फ़ अधिकार को मान्यता दी, परंतु प्रशासनिक निगरानी तथा प्रभावी क्रियान्वयन की व्यवस्था प्रदान नहीं कर सका।

स्वतंत्रता के पश्चात वक़्फ़ संपत्तियों की बढ़ती संख्या तथा उनके अप्रभावी प्रबंधन को देखते हुए भारत सरकार ने 1954 में पहला व्यापक वक़्फ़ अधिनियम लागू किया। इस अधिनियम के माध्यम से राज्य वक़्फ़ बोर्डों की स्थापना हुई, वक़्फ़ संपत्तियों के पंजीकरण की व्यवस्था प्रस्तुत हुई तथा अवैध क़ब्ज़ों के विरुद्ध विधिक कार्रवाई का अधिकार दिया गया। तथापि इस कानून में कुछ त्रुटियाँ विद्यमान रहीं, जिन्हें दूर करने हेतु 1995 में नया वक़्फ़ अधिनियम लागू किया गया।

वक़्फ़ अधिनियम 1995 ने वक़्फ़ की विधिक व्यवस्था को और सुदृढ़ बनाया। इसके अंतर्गत केंद्रीय वक़्फ़ परिषद की भूमिका को प्रभावी बनाया गया, वक़्फ़ अधिकरण (Tribunals) स्थापित किए गए, वक़्फ़ संपत्तियों के अभिलेख को आधुनिक आधार पर व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया तथा अवैध क़ब्ज़ों के विरुद्ध कठोर

विधिक कदम प्रस्तुत किए गए। इस कानून ने राज्य वक़्फ़ बोर्डों को अधिक अधिकार तथा स्वायत्तता प्रदान की ताकि वे वक़्फ़ संपत्तियों की निगरानी तथा उनकी सुरक्षा का कार्य बेहतर ढंग से संपन्न कर सकें।

भारतीय संविधान भी वक़्फ़ संस्थाओं को महत्वपूर्ण विधिक तथा संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने, उसका प्रचार करने तथा उसके अनुरूप जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्राप्त है। चूँकि वक़्फ़ एक धार्मिक तथा कल्याणकारी संस्था है, अतः इसकी स्थापना तथा इसकी गतिविधियों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। इसी प्रकार अनुच्छेद 26 प्रत्येक धार्मिक समूह को अपनी धार्मिक संस्थाएँ स्थापित करने, उनका प्रबंधन करने, तथा अपनी संपत्तियों के प्रबंध का अधिकार देता है, जिसके अंतर्गत वक़्फ़ बोर्ड तथा वक़्फ़ संपत्तियाँ भी सम्मिलित हैं।

अनुच्छेद 27 सरकार को किसी विशेष धर्म के संवर्धन हेतु कर अधिरोपित करने से रोकता है, जबकि अनुच्छेद 29 तथा 30 धार्मिक तथा भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति, धार्मिक विरासत तथा शैक्षणिक संस्थाओं की सुरक्षा का अधिकार प्रदान करते हैं। चूँकि अनेक शैक्षणिक तथा कल्याणकारी संस्थाएँ वक़्फ़ संपत्तियों के माध्यम से संचालित होती हैं, अतः ये संवैधानिक प्रावधान वक़्फ़ संस्था की विधिक स्थिति तथा स्वायत्तता को और सुदृढ़ बनाते हैं।

वक़्फ़ बोर्ड मुसलमानों की धार्मिक तथा कल्याणकारी संस्थाओं की सुरक्षा में भी मूल भूमिका निभाता है। मस्जिदें, मदरसे, दरगाहें तथा क़ब्रिस्तान बहुत हद तक वक़्फ़ संपत्तियों पर स्थापित हैं, और इनकी देखभाल, प्रबंधन तथा विधिक सुरक्षा वक़्फ़ बोर्ड का उत्तरदायित्व है। इसी प्रकार वक़्फ़ संपत्तियों की आय से शैक्षणिक संस्थान, अस्पताल, अनाथालय तथा अन्य कल्याणकारी परियोजनाएँ संचालित की जाती हैं, जो मुस्लिम समाज के सामाजिक तथा आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

वक़्फ़ बोर्ड का एक महत्वपूर्ण दायित्व वक़्फ़ संपत्तियों को अवैध क़ब्ज़ों से बचाना तथा उनके विधिक अधिकारों की सुरक्षा करना भी है। इस उद्देश्य हेतु वह न्यायालयों में मुकदमों की पैरवी करता है, राज्य सरकारों से संपर्क रखता है तथा वक़्फ़ कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु कदम उठाता है। इसके अतिरिक्त, वक़्फ़ बोर्ड सरकार की ओर से प्रस्तावित वक़्फ़ कानूनों तथा सुधारों पर अपनी राय प्रस्तुत करता है तथा मुस्लिम समुदाय के धार्मिक तथा कल्याणकारी हितों की सुरक्षा हेतु नीति-निर्माण में भी सहभागिता करता है।

इस प्रकार वक़्फ़ बोर्ड न केवल एक विधिक तथा प्रशासनिक संस्था है बल्कि मुसलमानों की धार्मिक पहचान, शैक्षिक विकास तथा कल्याणकारी गतिविधियों की सुरक्षा तथा संवर्धन का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है।

वक़्फ़ बोर्ड का प्रशासनिक ढाँचा

भारत में वक़्फ़ संपत्तियों के प्रभावी प्रबंधन, सुरक्षा तथा निगरानी हेतु एक संगठित प्रशासनिक ढाँचा स्थापित किया गया है, जिसकी नींव दो महत्वपूर्ण संस्थाओं पर आधारित है: केंद्रीय वक़्फ़ परिषद तथा राज्य वक़्फ़ बोर्ड। ये दोनों संस्थाएँ पारस्परिक सहयोग के माध्यम से वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा, उनके बेहतर प्रयोग तथा उनसे प्राप्त होने वाली आय को धार्मिक, शैक्षिक तथा कल्याणकारी उद्देश्यों हेतु व्यय करना सुनिश्चित करती हैं।

केंद्रीय वक़्फ़ परिषद

केंद्रीय वक़्फ़ परिषद भारत में वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा तथा बेहतर प्रबंधन हेतु एक उच्च परामर्शदायी संस्था है, जो अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत कार्य करती है। इस परिषद की स्थापना वक़्फ़ अधिनियम 1954 के अंतर्गत हुई, जबकि बाद के विधिक संशोधनों, विशेषतः वक़्फ़ अधिनियम 1995 के पश्चात, इसके अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों में और विस्तार किया गया।

केंद्रीय वक़्फ़ परिषद का मूल उद्देश्य देश भर के राज्य वक़्फ़ बोर्डों को मार्गदर्शन प्रदान करना, उनके कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करना, तथा वक़्फ़ संपत्तियों के प्रभावी प्रबंधन हेतु नीति-निर्माण में सरकार की सहायता करना है। यह परिषद वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा, उनके विकास तथा उनके पारदर्शी प्रबंधन हेतु विभिन्न प्रस्ताव तथा योजनाएँ तैयार करती है।

परिषद समय-समय पर राज्य वक़्फ़ बोर्डों के कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन करती है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें प्रशासनिक, वित्तीय तथा विधिक सहायता प्रदान करती है। यदि किसी राज्य वक़्फ़ बोर्ड का कार्यनिष्पादन असंतोषजनक हो अथवा वह वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा में असफल हो तो परिषद सरकार को उचित सिफारिशें भी प्रस्तुत कर सकती है।

वक़्फ़ संपत्तियों पर अवैध क़ब्ज़े भारत में एक गंभीर समस्या है, अतः केंद्रीय वक़्फ़ परिषद राज्य बोर्डों को विधिक मार्गदर्शन तथा तकनीकी सहायता प्रदान करती है ताकि इन संपत्तियों को अवैध अतिक्रमण से सुरक्षित रखा जा सके। इसके अतिरिक्त परिषद वक़्फ़ कानूनों में आवश्यक सुधारों तथा संशोधनों हेतु भी सिफारिशें तैयार करती है और वक़्फ़ संपत्तियों के डिजिटल अभिलेख की तैयारी तथा आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था के संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

राज्य वक़्फ़ बोर्ड

राज्य वक़्फ़ बोर्ड वक़्फ़ संपत्तियों के प्रबंधन तथा व्यवस्था की मूल संस्थाएँ हैं, जो प्रत्येक राज्य में विद्यमान वक़्फ़ संपत्तियों की निगरानी तथा देखभाल हेतु स्थापित किए गए हैं। ये बोर्ड राज्य सरकारों के अधीन कार्य करते हैं, तथापि इनके नीति-निर्माण तथा समग्र निगरानी में केंद्रीय वक़्फ़ परिषद भी सहायक भूमिका निभाती है।

प्रत्येक राज्य वक़्फ़ बोर्ड में एक अध्यक्ष, अनेक सदस्य, तथा एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) सम्मिलित होते हैं, जो वक़्फ़ संपत्तियों के प्रबंधन, विधिक सुरक्षा तथा वित्तीय मामलों की निगरानी करते हैं। इन बोर्डों का मूल दायित्व वक़्फ़ संपत्तियों का पंजीकरण, उनके अभिलेख की सुरक्षा, उनकी आय का प्रबंधन तथा कल्याणकारी उद्देश्यों हेतु उनके प्रभावी प्रयोग को सुनिश्चित करना है।

राज्य वक़्फ़ बोर्ड वक़्फ़ संपत्तियों का विधिवत पंजीकरण तथा सर्वेक्षण संपन्न कराते हैं ताकि समस्त संपत्तियों का सही अभिलेख सुरक्षित रखा जा सके। ये बोर्ड वक़्फ़ संपत्तियों के किरायेदारी संबंधी मामलों, विकासात्मक परियोजनाओं तथा विधिक विवादों का भी समाधान करते हैं। यदि किसी वक़्फ़ संपत्ति पर अवैध क़ब्ज़ा हो जाए तो बोर्ड इसके विरुद्ध विधिक कार्रवाई करने का अधिकार रखता है।

वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित करने हेतु राज्य वक़्फ़ बोर्ड वक़्फ़ संपत्तियों की आय तथा व्यय का लेखा रखते हैं, नियमित अंकेक्षण कराते हैं तथा अपनी वार्षिक रिपोर्ट संबंधित सरकारों को प्रस्तुत करते हैं। कुछ राज्य वक़्फ़ बोर्ड अपनी संपत्तियों का विकास कर शैक्षणिक संस्थान, अस्पताल तथा कल्याण केंद्र स्थापित करने में भी उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं।

भारत में राज्य वक़्फ़ बोर्डों का कार्यक्षेत्र

भारत में वर्तमान में तीस से अधिक राज्य वक़्फ़ बोर्ड कार्यरत हैं, जो अपने-अपने राज्यों में वक़्फ़ संपत्तियों की निगरानी करते हैं। कुछ राज्यों, विशेषतः उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना, बिहार, राजस्थान, पश्चिम बंगाल तथा गुजरात में वक़्फ़ संपत्तियों की संख्या अत्यधिक है, अतः इन राज्यों के वक़्फ़ बोर्डों का कार्यक्षेत्र भी व्यापक तथा जटिल है।

इसके विपरीत कुछ छोटे राज्यों, जैसे सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश तथा मणिपुर में वक़्फ़ संपत्तियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, अतः वहाँ वक़्फ़ बोर्डों का प्रशासनिक क्षेत्र सीमित होता है। तथापि इन समस्त बोर्डों का मूल उद्देश्य एक ही है, अर्थात वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा, उनका पारदर्शी प्रबंधन, तथा उनसे प्राप्त होने वाले संसाधनों का मुसलमानों के धार्मिक, शैक्षिक तथा कल्याणकारी विकास हेतु प्रयोग।

इस प्रकार केंद्रीय वक़्फ़ परिषद तथा राज्य वक़्फ़ बोर्ड मिलकर भारत में वक़्फ़ संस्था के प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण करते हैं तथा वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा तथा प्रभावी प्रयोग सुनिश्चित करने में मूल भूमिका निभाते हैं।

वक़्फ़ बोर्ड की भूमिका तथा उसकी सामाजिक व कल्याणकारी सेवाएँ

वक़्फ़ बोर्ड का मूल उद्देश्य वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा, उनका प्रभावी प्रबंधन, तथा उनसे प्राप्त होने वाली आय को धार्मिक, शैक्षिक तथा कल्याणकारी उद्देश्यों हेतु प्रयोग करना है। चूँकि वक़्फ़ संपत्तियाँ मुसलमानों की सामूहिक अमानत तथा जन-कल्याण का एक महत्वपूर्ण साधन हैं, अतः इनकी सुरक्षा तथा उचित प्रयोग का दायित्व वक़्फ़ बोर्ड पर होता है। इस संबंध में वक़्फ़ बोर्ड अनेक प्रशासनिक, विधिक तथा कल्याणकारी कदम उठाता है।

- **वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा:** वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा वक़्फ़ बोर्ड के मूल दायित्वों में सम्मिलित है। भारत में वक़्फ़ संपत्तियाँ अवैध क़ब्ज़ों, कुप्रबंधन तथा वित्तीय अनियमितताओं जैसी समस्याओं का सामना करती रही हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु वक़्फ़ बोर्ड विधिवत सर्वेक्षण संपन्न कराता है, वक़्फ़ संपत्तियों का अभिलेख तैयार करता है तथा आधुनिक तकनीक के माध्यम से उनका डिजिटल पंजीकरण सुनिश्चित करने का प्रयास करता है, ताकि किसी भी प्रकार की जालसाज़ी अथवा अवैध क़ब्ज़े को रोका जा सके।

कुछ राज्य वक़्फ़ बोर्डों ने अतिक्रमण-निरोधक प्रकोष्ठ (Anti-Encroachment Cell) भी स्थापित किए हैं, जो वक़्फ़ संपत्तियों पर अवैध क़ब्ज़ों के विरुद्ध तत्काल कार्रवाई करते हैं। यदि किसी वक़्फ़ संपत्ति पर अवैध क़ब्ज़ा हो जाए तो वक़्फ़ बोर्ड न्यायालय की शरण लेता है तथा विधिक कार्रवाई के माध्यम से उस संपत्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करता है।

- **वक़्फ़ संपत्तियों का पंजीकरण तथा विधिक सुरक्षा:** वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा हेतु उनका विधिवत पंजीकरण अत्यंत आवश्यक है। वक़्फ़ अधिनियम 1995 के अनुसार प्रत्येक वक़्फ़ संपत्ति का राज्य वक़्फ़ बोर्ड में पंजीकृत होना अनिवार्य है। वक़्फ़ बोर्ड भूमियों, भवनों, दुकानों तथा अन्य संपत्तियों की पूर्ण सूची तैयार करता है और समय-समय पर इसे आधुनिक अपेक्षाओं के अनुरूप अद्यतन भी करता है।

वक़्फ़ संपत्तियों से संबंधित विवादों के समाधान हेतु वक़्फ़ अधिकरण (Tribunals) स्थापित किए गए हैं, जो वक़्फ़ संपत्तियों के मुकदमों की सुनवाई करते हैं। वक़्फ़ अधिनियम के अंतर्गत वक़्फ़ संपत्तियों को बेचने,

हस्तांतरित करने अथवा गैर-वक़्फ़ उद्देश्यों हेतु प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि कोई व्यक्ति अथवा संस्था ऐसा करने का प्रयास करे तो वक़्फ़ बोर्ड विधिक कार्रवाई का अधिकार रखता है।

- **प्रबंधन तथा वित्तीय मामले:** वक़्फ़ संपत्तियों का बेहतर प्रबंधन भी वक़्फ़ बोर्ड का महत्वपूर्ण दायित्व है। वक़्फ़ संपत्तियों की एक बड़ी संख्या किराए पर दी जाती है अथवा पट्टे पर हस्तांतरित की जाती है, ताकि इनसे आय प्राप्त की जा सके और कल्याणकारी परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जा सके।

वक़्फ़ बोर्ड यह सुनिश्चित करता है कि किरायेदारी तथा पट्टे के समस्त मामले वक़्फ़ अधिनियम तथा शरई सिद्धांतों के अनुरूप हों। इसके अतिरिक्त बोर्ड कम किराए, अवैध क़ाबिज़ों तथा अपारदर्शी अनुबंधों जैसी समस्याओं के समाधान हेतु किरायों की पुनर्समीक्षा, अनुबंधों के नवीनीकरण तथा विधिक कार्रवाई जैसे कदम भी उठाता है।

- **वक़्फ़ की आय का प्रयोग:** वक़्फ़ संपत्तियों से प्राप्त होने वाली आय का मूल उद्देश्य मुसलमानों का धार्मिक, शैक्षिक तथा सामाजिक कल्याण है। इस आय का एक बड़ा हिस्सा मस्जिदों, मदरसों, अनाथालयों, शैक्षणिक संस्थानों तथा अन्य कल्याणकारी गतिविधियों पर व्यय किया जाता है।

वक़्फ़ निधियों के माध्यम से निर्धन तथा पात्र छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं, शैक्षणिक संस्थानों को वित्तीय सहायता दी जाती है तथा आवश्यकतामंद व्यक्तियों का भरण-पोषण किया जाता है। इसी प्रकार अस्पतालों, चिकित्सा केंद्रों, आवासीय परियोजनाओं तथा कल्याणकारी संस्थाओं की स्थापना तथा उनके प्रबंधन में भी वक़्फ़ की आय महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

यद्यपि कभी-कभी वक़्फ़ बोर्डों में वित्तीय अनियमितताओं तथा भ्रष्टाचार की घटनाएँ सामने आती हैं, तथापि पारदर्शी अंकेक्षण, कठोर निगरानी तथा प्रभावी जवाबदेही के माध्यम से इन समस्याओं पर नियंत्रण पाने का प्रयास किया जाता है ताकि वक़्फ़ की आय केवल उन्हीं उद्देश्यों पर व्यय हो जिनके लिए इसे वक़्फ़ किया गया है।

- **शरई सिद्धांतों के अनुरूप प्रबंधन:** वक़्फ़ एक विशुद्ध इस्लामी संस्था है, अतः इसका प्रबंधन शरई सिद्धांतों के अनुरूप होना आवश्यक है। इस्लामी फ़िक़्ह के अनुसार वक़्फ़ की संपत्ति किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं रहती बल्कि इसे अल्लाह की राह में स्थायी रूप से समर्पित कर दिया जाता

है। अतः वक़्फ़ संपत्तियों को बेचना, व्यक्तिगत लाभ हेतु प्रयोग करना अथवा उनमें अमानत में ख़यानत करना शरअन नाजायज़ है।

वक़्फ़ के प्रबंधन हेतु मुतवल्ली अथवा प्रबंधक की ईमानदारी तथा अमानतदारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसका कर्तव्य है कि वह वक़्फ़ की शर्तों तथा उद्देश्यों के अनुरूप संपत्तियों का प्रबंधन करे और उनके प्रयोग में किसी प्रकार की अनियमितता अथवा व्यक्तिगत लाभ को हस्तक्षेप न करने दे।

- **सामाजिक तथा कल्याणकारी सेवाएँ:** वक़्फ़ बोर्ड की भूमिका केवल संपत्तियों की सुरक्षा तक सीमित नहीं बल्कि इसकी सामाजिक तथा कल्याणकारी सेवाएँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वक़्फ़ संपत्तियों से प्राप्त होने वाली आय के माध्यम से शैक्षणिक संस्थानों, अस्पतालों, अनाथालयों तथा अन्य कल्याणकारी संस्थाओं का संरक्षण किया जाता है।

वक़्फ़ बोर्ड विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है और पात्र विद्यार्थियों को शैक्षणिक छात्रवृत्तियाँ देता है। इसके अतिरिक्त अस्पतालों, औषधालयों तथा चिकित्सा केंद्रों की सहायता के माध्यम से निर्धन तथा आवश्यकतामंद व्यक्तियों को चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

- **मस्जिदों, मदरसों तथा अनाथालयों का संरक्षण:** वक़्फ़ बोर्ड के अधीन अनेक मस्जिदें, मदरसे तथा अनाथालय कार्यरत हैं। बोर्ड इन संस्थाओं के निर्माण, मरम्मत, देखभाल तथा वित्तीय सहायता की व्यवस्था करता है। मस्जिदों के इमामों, मुअज़्ज़िनों तथा अन्य कर्मचारियों के व्यय भी अनेक स्थानों पर वक़्फ़ निधियों से पूरे किए जाते हैं।

इसी प्रकार दीनी मदरसों को वित्तीय सहायता, शैक्षिक संसाधन तथा मूलभूत सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जबकि अनाथालयों में रहने वाले बच्चों की शिक्षा, आवास, भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं हेतु भी वक़्फ़ निधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

इस प्रकार वक़्फ़ बोर्ड एक बहुआयामी संस्था की हैसियत रखता है जो न केवल वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा तथा प्रबंधन का दायित्व रखता है बल्कि मुसलमानों के धार्मिक, शैक्षिक तथा सामाजिक विकास हेतु भी एक प्रभावी तथा सक्रिय भूमिका निभाता है।

वक़्फ़ बोर्ड के समक्ष चुनौतियाँ तथा उनके संभावित समाधान

यद्यपि वक़्फ़ बोर्ड एक सुदृढ़ विधिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करता है, परंतु इसकी प्रभावी भूमिका के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इनमें अवैध क़ब्ज़े, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, वित्तीय संसाधनों की कमी, विधिक जटिलताएँ तथा प्रशासनिक कमज़ोरियाँ उल्लेखनीय हैं। ये समस्याएँ न केवल वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा को प्रभावित करती हैं बल्कि इनसे प्राप्त होने वाले सामाजिक, शैक्षिक तथा कल्याणकारी लाभों को भी सीमित कर देती हैं।

- **अवैध क़ब्ज़े की समस्या:** वक़्फ़ संपत्तियों पर अवैध क़ब्ज़ा भारत में वक़्फ़ व्यवस्था हेतु सबसे बड़ी चुनौती मानी जाती है। अनेक वक़्फ़ संपत्तियाँ सरकारी व निजी संस्थाओं, प्रभावशाली व्यक्तियों तथा भूमि माफ़िया के अवैध क़ब्ज़ों का शिकार हैं। कभी-कभी विधिक जटिलताओं तथा दीर्घ न्यायिक कार्रवाइयों के कारण इन संपत्तियों को पुनः प्राप्त करना एक कठिन तथा समय-साध्य प्रक्रिया बन जाती है। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्य वक़्फ़ बोर्डों के पास प्रभावी विधिक कार्रवाई तथा निगरानी हेतु आवश्यक संसाधन तथा अधिकार भी सीमित हैं।

इस समस्या के समाधान हेतु आवश्यक है कि समस्त वक़्फ़ संपत्तियों का पूर्ण तथा पारदर्शी डिजिटल पंजीकरण किया जाए, ताकि उनके स्वामित्व का स्पष्ट तथा प्रामाणिक अभिलेख सुरक्षित रहे। इसी प्रकार वक़्फ़ संबंधी मुक़दमों के त्वरित निपटारे हेतु विशेष अधिकरणों को और सक्रिय बनाया जाए तथा सरकार व वक़्फ़ बोर्ड के मध्य प्रभावी सहयोग के माध्यम से अवैध क़ब्ज़ों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई की जाए।

- **कुप्रबंधन तथा भ्रष्टाचार:** वक़्फ़ बोर्ड के समक्ष एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या प्रशासनिक कमज़ोरियाँ तथा भ्रष्टाचार है। कुछ अवसरों पर वक़्फ़ संपत्तियों के पट्टे, किरायेदारी तथा वित्तीय मामलों में पारदर्शिता के अभाव की शिकायतें सामने आती रही हैं। कुछ अधिकारियों तथा कर्मचारियों पर संपत्तियों के दुरुपयोग, अवैध विक्रय अथवा वित्तीय अनियमितताओं के आरोप भी लगाए गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ राज्य वक़्फ़ बोर्डों में प्रशासनिक ढाँचे की कमज़ोरी तथा निर्णय-निर्माण में विलंब भी उनके कार्यनिष्पादन को प्रभावित करता है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु एक सुदृढ़ निगरानी तथा जवाबदेही व्यवस्था स्थापित करना अपरिहार्य है। वक़्फ़ बोर्ड के वित्तीय मामलों का नियमित अंकेक्षण होना चाहिए, समस्त वित्तीय लेन-देन को डिजिटल तथा पारदर्शी बनाया जाना चाहिए तथा भ्रष्टाचार में संलिप्त व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर विधिक कार्रवाई की जानी चाहिए। आधुनिक तकनीक के प्रयोग से न केवल पारदर्शिता में वृद्धि होगी बल्कि जन-विश्वास भी पुनर्स्थापित हो सकेगा।

- **वित्तीय संसाधनों की कमी:** अधिकांश राज्य वक़्फ़ बोर्डों को अपनी संपत्तियों की सुरक्षा, उनके विकास तथा कल्याणकारी परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु वित्तीय संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ता है। अनेक वक़्फ़ संपत्तियाँ अवैध क़ब्ज़ों, अपर्याप्त प्रबंधन अथवा कम किरायेदारी के कारण पर्याप्त आय उत्पन्न नहीं कर पातीं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी प्राप्त होने वाली आय का बड़ा हिस्सा प्रशासनिक व्यय में ही समाप्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप शैक्षिक, सामाजिक तथा कल्याणकारी गतिविधियों हेतु आवश्यक संसाधन उपलब्ध नहीं रह पाते।

इस चुनौती से निपटने हेतु आवश्यक है कि वक़्फ़ संपत्तियों को आधुनिक आर्थिक अपेक्षाओं के अनुरूप विकसित किया जाए और उनके प्रभावी प्रयोग हेतु सार्वजनिक-निजी भागीदारी जैसे मॉडल अपनाए जाएँ। निष्क्रिय तथा अप्रयुक्त वक़्फ़ संपत्तियों को पुनर्जीवित कर आय के नए स्रोत उत्पन्न किए जा सकते हैं। इसी प्रकार किरायेदारी की व्यवस्था को आधुनिक आधार पर स्थापित करना तथा सरकार की ओर से विशेष वित्तीय सहायता तथा विकासात्मक योजनाओं का प्रवर्तन भी वक़्फ़ बोर्ड की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायक सिद्‌ध हो सकता है।

- **विधिक तथा प्रशासनिक जटिलताएँ:** वक़्फ़ संपत्तियों से संबंधित मुकदमे प्रायः दीर्घ न्यायिक कार्रवाइयों तथा जटिल विधिक चरणों का शिकार हो जाते हैं, जिससे वक़्फ़ बोर्ड का कार्यनिष्पादन प्रभावित होता है। कभी-कभी वक़्फ़ कानूनों की व्याख्या, अभिलेख की अनुपलब्धता अथवा विभिन्न सरकारी संस्थाओं के मध्य अधिकारों के निर्धारण में भी कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

इन समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक है कि वक़्फ़ कानूनों को और अधिक स्पष्ट तथा प्रभावी बनाया जाए, वक़्फ़ अधिकरणों की संख्या तथा क्षमता में वृद्‌धि की जाए तथा राज्य सरकारों, न्यायपालिका तथा वक़्फ़ बोर्डों के मध्य बेहतर समन्वय स्थापित किया जाए।

वक़्फ़ बोर्ड के समक्ष विद्‌यमान चुनौतियाँ यद्‌यपि गंभीर प्रकृति की हैं, तथापि प्रभावी विधि-निर्माण, पारदर्शी प्रबंधन, आधुनिक तकनीक के प्रयोग, वित्तीय सुधारों तथा सुदृढ़ जवाबदेही व्यवस्था के माध्यम से इन समस्याओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है। यदि वक़्फ़ संपत्तियों की सुरक्षा तथा उनका प्रभावी प्रबंधन सुनिश्चित किया जाए तो यह संस्था मुसलमानों के धार्मिक, शैक्षिक तथा सामाजिक विकास में और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और वक़्फ़ के वास्तविक कल्याणकारी उद्‌देश्यों को बेहतर ढंग से पूरा किया जा सकता है।

वक़्फ़ संशोधन विधेयक 2025 तथा संवैधानिक आपत्तियाँ

वक़्फ़ संशोधन विधेयक 2025 भारत में वक़्फ़ व्यवस्था से संबंधित हालिया विधिक विमर्श का एक महत्वपूर्ण विषय है। इस विधेयक के कुछ प्रस्तावित बिंदुओं पर विभिन्न मिल्ली, दीनी तथा विधिक संगठनों, विशेषतः अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड तथा अन्य मुस्लिम संस्थाओं की ओर से संवैधानिक तथा शरई आपत्तियाँ व्यक्त की गई हैं। इन संगठनों के अनुसार विधेयक के कुछ प्रावधान भारतीय संविधान में दी गई धार्मिक स्वतंत्रता, अल्पसंख्यक अधिकारों तथा धार्मिक संस्थाओं की स्वायत्तता से टकराव रखते हैं। यद्यपि इस विषय पर विस्तृत पुस्तिकाएँ तथा विधिक विश्लेषण प्रकाशित हो चुके हैं, तथापि यहाँ संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक आपत्तियों का उल्लेख किया जा रहा है।

- **वक़्फ़ बोर्ड में ग़ैर-मुस्लिम सदस्यों की सहभागिता:** विधेयक में वक़्फ़ बोर्ड के अंतर्गत ग़ैर-मुस्लिम सदस्यों की सहभागिता का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है। इस प्रस्ताव पर यह आपत्ति उठाई गई है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 26(b) के अनुसार प्रत्येक धार्मिक समूह को अपने धार्मिक मामले स्वयं व्यवस्थित करने का अधिकार प्राप्त है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मुसलमानों की धार्मिक संस्था में ग़ैर-मुस्लिम सदस्यों की सहभागिता धार्मिक स्वायत्तता तथा धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धांत से टकराव रखती मानी जा सकती है।
- **वक़्फ़ संपत्तियों के प्रबंधन में सरकारी हस्तक्षेप:** विधेयक के कुछ प्रावधानों के अंतर्गत सरकार को वक़्फ़ संपत्तियों के प्रबंधन तथा उनसे संबंधित निर्णयों में अधिक अधिकार दिए जाने की बात कही गई है। आलोचकों के अनुसार अनुच्छेद 26(d) प्रत्येक धार्मिक समूह को अपनी धार्मिक संपत्तियों के प्रबंधन तथा व्यवस्था का अधिकार देता है, अतः सरकारी नियंत्रण में असाधारण वृद्धि धार्मिक संस्थाओं की स्वायत्तता को प्रभावित कर सकती है।
- **वक़्फ़ संपत्तियों का पुनः पंजीकरण:** विधेयक में कुछ वक़्फ़ संपत्तियों के पुनः पंजीकरण तथा अभिलेख के नवीनीकरण की शर्त सम्मिलित किए जाने पर भी आपत्तियाँ व्यक्त की गई हैं। आलोचकों के अनुसार यदि पंजीकरण की अपूर्णता के आधार पर किसी वक़्फ़ संपत्ति की स्थिति को संदिग्ध घोषित किया जाए तो यह अनुच्छेद 300-A में दिए गए संपत्ति के अधिकार तथा अनुच्छेद 25 में दी गई धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित प्रश्न उत्पन्न कर सकता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सदियों से स्थापित शरई वक़्फ़ को केवल प्रशासनिक अथवा काग़ज़ी आधारों पर चुनौती देना उचित नहीं समझा जाता।
- **वक़्फ़ की धार्मिक पहचान पर प्रश्न:** कुछ वर्गों का यह भी मत है कि यदि वक़्फ़ की धार्मिक प्रकृति, उसके अस्तित्व अथवा आवश्यकता को सरकारी स्तर पर चुनौती दी जाए तो यह अनुच्छेद 25 तथा 26 में दी गई धार्मिक स्वतंत्रता के दायरे में हस्तक्षेप के समतुल्य हो सकता है, क्योंकि वक़्फ़ इस्लामी परंपरा में एक धार्मिक तथा कल्याणकारी संस्था की हैसियत रखता है।

- **वक़्फ़ संपत्तियों का सार्वजनिक उद्देश्यों हेतु प्रयोग:** विधेयक के कुछ बिंदुओं के संदर्भ में यह आशंका व्यक्त की गई है कि वक़्फ़ संपत्तियों को सार्वजनिक हित अथवा अन्य उद्देश्यों हेतु प्रयोग करने की गुंजाइश उत्पन्न हो सकती है। आलोचकों के अनुसार वक़्फ़ की संपत्ति एक विशिष्ट धार्मिक अथवा कल्याणकारी उद्देश्य हेतु वक़्फ़ की जाती है, अतः इसके मूल उद्देश्य को परिवर्तित करना शरई तथा संवैधानिक दोनों दृष्टियों से आपत्तिजनक माना जा सकता है, विशेषतः जब इससे धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रभाव पड़ने की आशंका हो।
- **अल्पसंख्यक संस्थाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार का प्रश्न:** कुछ विधिक विशेषज्ञों तथा मुस्लिम संगठनों का मत है कि यदि अन्य धार्मिक संस्थाओं को अधिक स्वायत्तता प्राप्त हो और केवल वक़्फ़ संस्थाओं पर अतिरिक्त प्रतिबंध अधिरोपित किए जाएँ तो यह अनुच्छेद 14 में दिए गए समानता के अधिकार तथा अनुच्छेद 15 में धर्म के आधार पर भेदभाव के निषेध के सिद्धांतों के संदर्भ में विचारणीय मुद्दा बन सकता है।
- **शरई सिद्धांतों से सामंजस्य:** वक़्फ़ एक विशुद्ध इस्लामी संस्था है और इसके मूल सिद्धांत इस्लामी शरीयत से व्युत्पन्न हैं। अतः यदि किसी कानून के कुछ प्रावधान वक़्फ़ की शरई अवधारणाओं तथा पारंपरिक सिद्धांतों से टकराव रखते हों तो कुछ वर्गों की दृष्टि में यह अनुच्छेद 29 तथा 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को प्राप्त धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित प्रश्न उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि ये प्रावधान अल्पसंख्यकों को अपनी धार्मिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं की सुरक्षा का अधिकार प्रदान करते हैं।

वक़्फ़ संशोधन विधेयक 2025 के संबंध में उठाई गई संवैधानिक आपत्तियाँ मूलतः धार्मिक स्वतंत्रता, धार्मिक संस्थाओं की स्वायत्तता, अल्पसंख्यक अधिकारों, समानता के सिद्धांत, तथा वक़्फ़ की शरई पहचान के इर्द-गिर्द केंद्रित हैं। तथापि इन समस्त बिंदुओं की अंतिम संवैधानिक स्थिति का निर्धारण न्यायिक व्याख्या, विधिक विमर्श, तथा संवैधानिक संस्थाओं की राय के प्रकाश में ही संभव होगा। अतः यह विषय न केवल विधिक बल्कि धार्मिक, सामाजिक, तथा संवैधानिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है और इस पर गंभीर तथा संतुलित विमर्श की आवश्यकता है।

(नोट: यह पुस्तक मूलतः वर्ष 2025 में पूर्णता को प्राप्त हुई थी, और वक़्फ़ संशोधन विधेयक से संबंधित ऊपर दर्ज समस्त विवरण तथा संवैधानिक विमर्श उसी समय तक की परिस्थितियों के अनुरूप लिखे गए थे। चूँकि यह एक निरंतर परिवर्तनशील विधिक तथा राजनीतिक विषय था, अतः यहाँ तक के विवरण को यथावत बनाए रखना इस उद्देश्य हेतु अत्यंत आवश्यक था ताकि विधि तथा शरीयत के विद्यार्थियों को यह भलीभाँति अंदाज़ा हो सके कि भारतीय संविधान के संदर्भ में अल्पसंख्यकों के अधिकारों, धार्मिक स्वतंत्रता तथा संस्थाओं की स्वायत्तता को लेकर क्या-क्या ज्ञानात्मक तथा विधिक चुनौतियाँ सामने आती हैं, और हम अपने संवैधानिक अधिकारों की रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं। विगत वर्ष के इन समस्त महत्वपूर्ण विमर्शों तथा मुस्लिम संगठनों (विशेषतः अखिल भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड) की प्रबल आपत्तियों के पश्चात, यह विधेयक संसद

से स्वीकृत होकर विधिवत कानून तो बन गया, परंतु इसके पश्चात देश के मुस्लिम नेतृत्व ने इन्हीं संवैधानिक प्रावधानों को आधार बनाकर इसे माननीय उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले पर गहन विधिक तथा संवैधानिक विमर्श के पश्चात, प्रचलित संवैधानिक सिद्धांतों के अंतर्गत संपूर्ण कानून पर तो पूर्ण रोक (Stay) नहीं लगाई, परंतु मुसलमानों के अधिकारों तथा वक़्फ़ की शरई पहचान की सुरक्षा हेतु विधेयक के कुछ अत्यंत विवादास्पद प्रावधानों पर अंतरिम रोक (Interim Stay) लगा दी है। न्यायालय ने विशेष रूप से नौकरशाही (कलेक्टर) के असाधारण अधिकारों तथा पंजीकरण से जुड़े उन कठोरतम नियमों पर विराम लगाया है जिनसे प्राचीन मस्जिदों, मदरसों तथा क़ब्रिस्तानों की शरई हैसियत संकट में पड़ सकती थी। यह मुक़दमा अब भी न्यायालय के विचाराधीन है। यह संपूर्ण यात्रा इस बात का जीवंत उदाहरण है कि संविधान में दिए गए अधिकार मात्र काग़ज़ी नहीं हैं, बल्कि यदि किसी विद्यार्थी तथा नागरिक को इनका सही बोध हो, तो वह कानून की सीमा में रहकर अपनी धार्मिक तथा कल्याणकारी संस्थाओं की सुरक्षा कर सकता है। आशा है कि यह विश्लेषण शरीयत तथा भारतीय संविधान के पारस्परिक संबंध को समझने में आपके लिए सहायक सिद्ध होगा।)

सनाउल्लाह काज़मी

केवल अल्लाह तबारक व तआला के फ़ज़्ल व करम से यह मोर्चा सर हुआ।